प्रकाशक—
श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड कार्यालय,
अमरावती (बरार).



मुद्रक—
टी. एम्. पाटील,
मैनेजर
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती (बरार).

THE
ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUṢPADANTA AND BHŪTABALI

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. V

ANTARA-BHĀVĀLPABAHUTWĀNUGAMA

Edited

with introduction, translation, notes and indexes

BY

HIRALAL JAIN, M. A., LL. B.,

C. P. Educational Service, King Edward College, Amraoti.

ASSISTED BY

Pandit Hiralal Siddhānta Shāstri, Nyāyatīrtha.

With the cooperation of

Pandit Devakinandana Siddhānta Shāstrī



Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

Published by

Shrimanta Seth Shitabrai Laxmichandra,

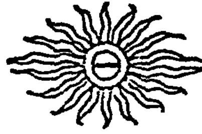
Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya

AMRAOTI [Berar].

1942

Price rupees ten only.

Published by—
Shrimanta Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya,
AMRAOTI [Berar].



Printed by—
T. M. Patil, *Manager,*
Saraswati Printing Press,
AMRAOTI [Berar].

विषय सूची



प्राक् कथन



षट्खंडागमका चौथा भाग इसी वर्ष जनवरीमें प्रकाशित हुआ था। उसके छह माह पश्चात् ही यह पांचवां भाग प्रकाशित हो रहा है। सिद्धान्त ग्रन्थोंके प्रकाशनके विरुद्ध जो आन्दोलन उठाया गया था वह, हर्ष है, अधिकांश जैनपत्र-सम्पादकों, अन्य जैन विद्वानों तथा पूर्व भागकी प्रस्तावनामें प्रकाशित हमारे विवेचनके प्रभावसे बिलकुल ठंडा हो गया और उसकी अब कोई चर्चा नहीं चल रही है।

प्राचीन ग्रन्थोंके सम्पादन, प्रकाशन व प्रचारकी चार मंजिले हैं– (१) मूल पाठका संशोधन (२) मूल पाठका शब्दशः अनुवाद (३) ग्रन्थके अर्थको सुस्पष्ट करनेवाला सुविस्तृत व स्वतंत्र अनुवाद (४) ग्रन्थके विषयको लेकर उसपर स्वतंत्र लेख व पुस्तकें आदि रचनायें। प्रस्तुत सम्पादन-प्रकाशनमें हमने इनमेंसे केवल प्रथम दो मंजिलें तय करनेका निश्चय किया है। तदनुसार ही हम यथाशक्ति मूल पाठके निर्णयका पूरा प्रयत्न करते हैं और फिर उसका हिन्दी अनुवाद यथाशक्य मूल पाठके क्रम, शैली व शब्दावलीके अनुसार ही रखते हैं। विषयको मूल पाठसे अधिक स्वतंत्रतापूर्वक खोलनेका हम साहस नहीं करते। जहां इसकी कोई विशेष ही आवश्यकता प्रतीत हुई वहां मूलानुगामी अनुवादमें विस्तार न करके अलग एक छोटा मोटा विशेषार्थ लिख दिया जाता है। किन्तु इस स्वतंत्रतामें भी हम उत्तरोत्तर कमी करते जाते हैं, क्योंकि, वह यथार्थतः हमारी पूर्वोक्त सीमाओंके बाहरकी बात है। हम अनुवादको मूल पाठके इतने समीप रखनेका प्रयत्न करते हैं कि जिससे वह कुछ अंशमें संस्कृत छायाके अभावकी भी पूर्ति करता जाय, जैसा कि हम पहले ही प्रकट कर चुके हैं। जिन शब्दोंकी मूलमें अनुवृत्ति चली आती है वे यदि समीपवर्ती होनेसे सुज्ञेय हुए तो उन्हें भी बार बार दुहराना हमने ठीक नहीं समझा।

हमारी इस सुस्पष्ट नीति और सीमाको न समझ कर कुछ समालोचक अनुवादमें दोष दिखानेका प्रयत्न करते हैं कि अमुक वाक्य ऐसा नहीं, ऐसा लिखा जाना चाहिये था, या अमुक विषय स्पष्ट नहीं हो पाया, उसे और भी खोलना चाहिये था, इत्यादि। हमें इस बातका हर्ष है कि विद्वान् पाठकोंकी इन ग्रंथोंमें इतनी तीव्र रुचि प्रकट हो रही है। पर यदि वह रुचि सच्ची और स्थायी है तो उसके बलपर उपर्युक्त चार मंजिलोंमेंसे शेष दो मंजिलोंकी भी पूर्तिका अलगसे प्रयत्न होना चाहिये। प्रस्तुत प्रकाशनके सीमाके बाहरकी बात लेकर सम्पादनादिमें दोष दिखानेका प्रयत्न करना अनुचित और अन्याय है। जो समालोचनादि प्रकट हुए हैं उनसे हमें अपने कार्यमें आशातीत सफलता मिली हुई प्रतीत होती

है, क्योंकि, उनमें मूल पाठके निर्णयकी त्रुटियां तो नहीं के बराबर मिलती हैं, और अनुवादके भी मूलानुगामित्वमें कोई दोष नहीं दिखाये जा सके। हां, जहां शब्दोंकी अनुवृत्ति आदि जोड़ी गई है वहां कहीं कुछ प्रमाद हुआ पाया जाता है। पर एक ओर हम जब अपने अल्प ज्ञान, अल्प साधन-सामग्री और अल्प समयका, तथा दूसरी ओर इन महान् ग्रन्थोंके अतिगहन विषय-विवेचनका विचार करते हैं तब हमें आश्चर्य इस बातका बिलकुल नहीं होता किं हमसे ऐसी कुछ भूलें हुई हैं, बल्कि, आश्चर्य इस बातका होता है कि वे भूलें उक्त परिस्थितिमें भी इतनी अल्प हैं। इस प्रकार उक्त छिद्रान्वेषी समालोचकोंके लेखोंसे हमें अपने कार्यमें अधिक दृढ़ता और विश्वास ही उत्पन्न हुआ है और इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं। जो अल्प भी त्रुटि या स्खलन जब भी हमारे दृष्टिगोचर होता है, तभी हम आगामी भागके शुद्धिपत्र व शंका-समाधानमें उसका समावेश कर देते हैं। ऐसे स्खलनादिकी सूचना करनेवाले सज्जनोंके हम सदैव आभारी हैं। जो समालोचक अत्यन्त छोटी मोटी त्रुटियोंसे भी बचनेके लिये बड़ी बड़ी योजनायें सुझाते हैं, उन्हें इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि इस प्रकाशनके लिये उपलब्ध फंड बहुत ही परिमित है और इससे भी अधिक कठिनाई जो हम अनुभव करते हैं, वह है समयकी। दिनों दिन काल बड़ा कराल होता जाता है और इस प्रकारके साहित्यके लिये रुचि उत्तरोत्तर हीन होती जाती है। ऐसी अवस्थामें हमारा तो अब मत यह है कि जितने शीघ्र हो सके इस प्राचीन साहित्यको प्रकाशित कर उसकी प्रतियां सब ओर फैला दी जांय, ताकि उसकी रक्षा तो हो। छोटी मोटी त्रुटियोंके सुधारके लिये यदि इस प्रकाशनको रोका गया तो संभव है उसका फिर उद्धार ही न हो पावे और न जाने कैसा संकट आ उपस्थित हो। योजनाएं सुझाना जितना सरल है, स्वार्थत्याग करके आजकल कुछ कर दिखाना उतना सरल नहीं है। हमारा समय, शक्ति, ज्ञान और साधन सब परिमित हैं। इस कार्यके लिये इससे अधिक साधन-सम्पन्न यदि कोई संस्था या व्यक्ति-विशेष इस कार्य-भारको अधिक योग्यताके साथ सम्हालनेको प्रस्तुत हो तो हम सहर्ष यह कार्य उन्हें सौंप सकते हैं। पर हमारी सीमाओंमें फिर हाल और अधिक विस्तारकी गुंजाइश नहीं है।

प्रस्तुत खंडांशमें जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमेंसे अन्तिम तीन प्ररूपणाएं समाविष्ट हैं--अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। इनमें क्रमशः ३९७, ९३ व ३८२ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः लगभग ४८, ६५ तथा ७६ शंका-समाधान आये हैं। हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करनेके लिये क्रमशः १, २ और ३ विशेषार्थ लिखे गये हैं। तुलनात्मक व पाठभेद संबंधी टिप्पणियोंकी संख्या क्रमशः २९९, ९३ और १४४ है। इस प्रकार इस ग्रंथ-भागमें लगभग १८९ शंका-समाधान, ६ विशेषार्थ और ५३६ टिप्पण पाये जावेंगे।

सम्पादन-व्यवस्था व पाठ-शोधनके लिये प्रतियोंका उपयोग पूर्ववत् चालू रहा। पं. हीरालालजी शास्त्री यह कार्य नियतरूपसे कर रहे हैं। इस भागके मुद्रित फार्म

श्री. पं. देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्रीने विशेषरूपसे गर्मीके विराम-कालमें अवलोकन कर संशोधन भेजनेकी कृपा की है, जिनका उपयोग शुद्धिपत्रमें किया गया है। कन्नडप्रशस्तिका संशोधन पूर्ववत् डा. ए. एन्. उपाध्येजीने करके भेजा है। प्रति-मिलानमें पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका सहयोग रहा है। इस प्रकार सब सहयोगियोंका साहाय्य पूर्ववत् उपलब्ध है, जिसके लिये मैं उन सबका अनुगृहीत हूं।

इस भागकी प्रस्तावनामें पूर्वप्रतिज्ञानुसार डा. अवधेशनारायणजीके गणितसम्बन्धी लेखका अविकल हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। इसका अनुवाद मेरे पुत्र चिरंजीव प्रफुल्ल-कुमार बी. ए. ने किया था। उसे मैंने अपने सहयोगी प्रोफेसर काशीदत्तजी पांडेके साथ मिलाया और फिर डा. अवधेशनारायणजीके पास भेजकर संशोधित करा लिया है। इसके लिये इन सज्जनोंका मुझपर आभार है। चौथे भागके गणितपर भी एक लेख डा. अवधेशनारायणजी लिख रहे हैं। खेद है कि अनेक कौटुंबिक विपत्तियों और चिन्ताओंके कारण वे उस लेखको इस भागमें देनेके लिये तैयार नहीं कर पाये। अतः उसके लिये पाठकोंको अगले भागकी प्रतीक्षा करना चाहिये।

आजकल कागज, जिल्द आदिका सामान व मुद्रणादि सामग्रीके मिलनेमें असाधारण कठिनाईका अनुभव हो रहा है। कीमतें बेहद बढ़ी हुई हैं। तथापि हमारे निरन्तर सहायक और अद्वितीय साहित्यसेवी पं. नाथूरामजी प्रेमीके प्रयत्नसे हमें कोई कठिनाईका अनुभव नहीं हुआ। इस वर्ष उनके ऊपर पुत्रवियोगका जो कठोर वज्रपात हुआ है उससे हम और हमारी संस्थाके समस्त ट्रस्टी व कार्यकर्त्तागण अत्यन्त दुखी हैं। ऐसी अपूर्व कठिनाइयोंके होते हुए भी हम अपनी व्यवस्था और कार्यप्रगति पूर्ववत् कायम रखनेमें सफल हुए हैं, यह हम इस-कार्यके पुण्यका फल ही समझते हैं। आगे जब जैसा हो, कहा नहीं जा सकता।

किंग एडवर्ड कॉलेज
अमरावती
२०-७-४२

हीरालाल जैन

प्रस्तावना

INTRODUCTION

This volume contains the last three prarūpaṇās, namely Antara, Bhāva and Alpa-bahutva, out of the eight prarūpaṇās of which the first five have been dealt with in the previous volumes. The Antara prarūpaṇā contains 397 Sūtras and deals with the minimum and maximum periods of time for which the continuity of a single soul (*eka jīva*) or souls in the aggregate (*nānā jīva*) in any particular spiritual stage (Guṇa-sthāna) or soul-quest (Mārgaṇā-sthāna) might be interrupted. It is, thus, a necessary counterpart of Kāla prarūpaṇā which, as we have already seen, devotes itself to the study of similar periods of time for which continuity in any particular state could uninterruptedly be maintained. The standard periods of time are, therefore, the same as in the previous prarūpaṇā. The first Guṇasthāna is never interrupted from the point of view of souls in the aggregate i. e. there is no time when there might be no souls in this Guṇasthāna-some souls will always be at this spiritual stage. But a single soul might deviate from this stage for a minimum period of less than 48 minutes (Antara-muhūrta) or for a maximum period of slightly less than 132 Sāgaropamas. The second Guṇasthāna may claim no souls for a minimum period of one instant (eka samaya) or for a maximum period of an innumerable fraction of a palyopama, while a single soul might deviate from it in the minimum for an innumerable fraction of a palyopama and at the maximum for slightly less than an Ardha-pudgala-parivartana. And so on with regard to all the rest of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas. The commentator has explained at length how these periods are obtained by changes of attitude and transformations of life of the souls.

The Bhāva prarūpaṇā, in 93 Sūtras, deals with the mental dispositions which characterise each Guṇasthāna and Margaṇāsthāna. There are five such dispositions of which four arise from the Karmas heading for fruition (udaya) or pacification (upaśama) or destruction (kshaya) or partly destruction and partly pacification (kshayopaśama),

while the fifth arises out of the natural potentialities inherent in each soul (pāriṇāmika). Thus, the first Guṇasthāna is *audayika*, the second *pāriṇāmika*, the third, fifth, sixth and seventh *kshāyopaśamika*, the fourth *aupaśamika*, *kshāyika* or *kshāyopaśamika*, eighth, ninth and tenth *aupaśamika* or *kshāyika*, eleventh *Aupaśamika* and the twelfth, thirteenth and fourteenth *kshāyika*. The commentary explains these at great length.

The eighth and last prarūpaṇā is Alpa-bahutva which, as its very name signifies, shows, in 382 Sūtras, the comparative numerical strength of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas. It is here shown that the number of souls in the 8th, 9th and 10th *Aupaśamika* Guṇasthānas as well as in the 11th is the least of all and mutually equal. In the same three *Kshapaka* Guṇasthānas and in the 12th, 13th and 14th, they are several times larger and mutually equal. This is the numerical order from the point of view of entries (praveśa) into the Guṇasthānas. From the point of view of the aggregates (saṃcaya) the souls at the 13th stage are several times larger than the last class, and similarly larger at each successive stage are those at the 7th and the 6th stage respectively. Innumerably larger than the last at each successive stage are those at the 5th and the 2nd stage, and the last is exceeded several times by those at the 3rd stage. At the 4th stage they are innumerably larger and at the 1st infinitely larger successively. The whole discussion shows how the exact sciences like mathematics have been harnessed into the service of the most speculative philosophy.

The results of these prarūpaṇās we have tabulated in charts, as before, and added them to the Hindi introduction.



धवलाका गणितशास्त्र

(पुस्तक ४ में प्रकाशित डा. अवधेश नारायण सिंह, लखनऊ यूनीवर्सिटी, के लेखका अनुवाद)

यह विदित हो चुका है कि भारतवर्षमें गणित- अंकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदिका अध्ययन अति प्राचीन कालमें किया जाता था। इस बातका भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञोंने गणितशास्त्रमें ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी। यथार्थतः अर्वाचीन अंकगणित और बीजगणितके जन्मदाता वे ही थे। हमें यह सोचनेका अभ्यास होगया है कि भारतवर्षकी विशाल जनसंख्यामेंसे केवल हिंदुओंने ही गणितका अध्ययन किया, और उन्हें ही इस विषयमें रुचि थी, और भारतवर्षीय जनसंख्याके अन्य भागों, जैसे कि बौद्ध व जैनोंने, उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। विद्वानोंके इस मतका कारण यह है कि अभी अभी तक बौद्ध वा जैन गणितज्ञोंद्वारा लिखे गये कोई गणितशास्त्रके ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुए थे। किन्तु जैनियोंके आगमग्रन्थोंके अध्ययनसे प्रकट होता है कि गणितशास्त्रका जैनियोंमें भी खूब आदर था। यथार्थतः गणित और ज्योतिष विद्याका ज्ञान जैन मुनियोंकी एक मुख्य साधना समझी जाती थी[१]।

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियोंकी गणितशास्त्रकी एक शाखा दक्षिण भारतमें थी, और इस शाखाका कमसे कम एक ग्रन्थ, महावीराचार्य-कृत गणितसारसंग्रह, उस समयकी अन्य उपलब्ध कृतियोंकी अपेक्षा अनेक बातोंमें श्रेष्ठ है। महावीराचार्यकी रचना सन् ८५० की है। उनका यह ग्रन्थ सामान्य रूपरेखामें ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और अन्य हिन्दू गणितज्ञोंके ग्रन्थोंके समान होते हुए भी विशेष बातोंमें उनसे पूर्णतः भिन्न है। उदाहरणार्थ— गणितसारसंग्रहके प्रश्न (problems) प्रायः सभी दूसरे ग्रन्थोंके प्रश्नोंसे भिन्न हैं।

वर्तमानकालमें उपलब्ध गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यके आधारपरसे हम यह कह सकते हैं कि गणितशास्त्रकी महत्वपूर्ण शाखाएं पाटलिपुत्र (पटना), उज्जैन, मैसूर, मलावार और संभवतः बनारस, तक्षशिला और कुछ अन्य स्थानोंमें उन्नतिशील थीं। जब तक आगे प्रमाण प्राप्त न हों, तब तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन शाखाओंमें परस्पर क्या

१ देखो–भगवती सूत्र, अभयदेव सूरिकी टीका सहित, म्हेसाणाकी आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित, १९१९; सूत्र ९०। जैकोबी कृत उत्तराध्यन सूत्रका अंग्रेजी अनुवाद, ऑक्सफोर्ड १८९५, अध्याय ७, ८, ३८.

संबंध था। फिर भी हमें पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंसे आये हुए ग्रन्थोंकी सामान्य रूपरेखा तो एकसी है, किन्तु विस्तारसंबंधी विशेष बातोंमें उनमें विभिन्नता है। इससे पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंमें आदान-प्रदानका संबंध था, छात्रगण और विद्वान एक शाखासे दूसरी शाखामें गमन करते थे, और एक स्थानमें किये गये आविष्कार शीघ्र ही भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विज्ञापित कर दिये जाते थे।

प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्मके प्रचारने विविध विज्ञानों और कलाओंके अध्ययनको उत्तेजना दी। सामान्यतः सभी भारतवर्षीय धार्मिक साहित्य, और मुख्यतया बौद्ध व जैनसाहित्य, बड़ी बड़ी संख्याओंके उल्लेखोंसे परिपूर्ण है। बड़ी संख्याओंके प्रयोगने उन संख्याओंको लिखनेके लिये सरल संकेतोंकी आवश्यकता उत्पन्न की, और उसीसे दाशमिक क्रम (The place-value system of notation) का आविष्कार हुआ। अब यह बात निस्संशयरूपसे सिद्ध हो चुकी है कि दाशमिक क्रमका आविष्कार भारतमें ईसवी सन्‌के प्रारंभ कालके लगभग हुआ था, जब कि बौद्धधर्म और जैनधर्म अपनी चरमोन्नति पर थे। यह नया अंक-क्रम बड़ा शक्तिशाली सिद्ध हुआ, और इसीने गणितशास्त्रको गतिप्रदान कर सुल्वसूत्रोंमें प्राप्त वेदकालीन प्रारंभिक गणितको विकासकी ओर बढ़ाया, और वराहमिहिरके ग्रंथोंमें प्राप्त पांचवी शताब्दीके सुसम्पन्न गणितशास्त्रमें परिवर्तित कर दिया।

एक बड़ी महत्वपूर्ण बात, जो गणितके इतिहासकारोंकी दृष्टिमें नहीं आई, यह है कि यद्यपि हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियोंका सामान्य साहित्य ईसासे पूर्व तीसरी व चौथी शताब्दीसे लगाकर मध्यकालीन समय तक अविच्छिन्न है, क्योंकि प्रत्येक शताब्दीके ग्रंथ उपलब्ध हैं, तथापि गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यमें विच्छेद है। यथार्थतः सन् ४९९ में रचित आर्यभटीयसे पूर्वकी गणितशास्त्रसंबंधी रचना कदाचित् ही कोई हो। अपवादमें बख्शालि प्रति (Bakhsali-Manuscript) नामक वह अपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ ही है जो संभवतः दूसरी या तीसरी शताब्दीकी रचना है। किन्तु इसकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिसे हमें उस कालके गणितज्ञानकी स्थितिके विषयमें कोई विस्तृत वृत्तान्त नहीं मिलता, क्योंकि यथार्थमें वह आर्यभट, ब्रह्मगुप्त अथवा श्रीधर आदिके ग्रंथोंके सदृश गणितशास्त्रकी पुस्तक नहीं है। वह कुछ चुने हुए गणितसंबंधी प्रश्नोंकी व्याख्या अथवा टिप्पणीसी है। इस हस्तलिखित प्रतिसे हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि दाशमिकक्रम और तत्संबंधी अंकगणितकी मूल प्रक्रियायें उस समय अच्छी तरह विदित थीं, और पीछेके गणितज्ञोंद्वारा उल्लिखित कुछ प्रकारके गणित प्रश्न (problems) भी ज्ञात थे।

यह पूर्व ही बताया जा चुका है कि आर्यभटीयमें प्राप्त गणितशास्त्र विशेष उन्नत है, क्योंकि उसमें हमको निम्न लिखित विषयोंका उल्लेख मिलता है— वर्तमानकालीन प्राथमिक

अंकगणितके सब भाग जिनमें अनुपात, विनिमय और व्याजके नियम भी सम्मिलित हैं, तथा सरल और वर्ग समीकरण, और सरल कुट्टक (indeterminate equations) की प्रक्रिया तकका बीजगणित भी है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या आर्यभटने अपना गणितज्ञान विदेशसे ग्रहण किया, अथवा जो भी कुछ सामग्री आर्यभटीयमें अन्तर्हित हैं वह सब भारतवर्षकी ही मौलिक सम्पत्ति है ? आर्यभट लिखते हैं " ब्रह्म, पृथ्वी, चंद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रोंको नमस्कार करके आर्यभट उस ज्ञानका वर्णन करता है जिसका कि यहां कुसुमपुरमें आदर है[१]।" इससे पता चलता है कि उसने विदेशसे कुछ ग्रहण नहीं किया। दूसरे देशोंके गणितशास्त्रके इतिहासके अध्ययनसे भी यही अनुमान होता है, क्योंकि आर्यभटीय गणित संसारके किसी भी देशके तत्कालीन गणितसे बहुत आगे बढ़ा हुआ था। विदेशसे ग्रहण करनेकी संभावनाको इस प्रकार दूर कर देने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि आर्यभटसे पूर्वकालीन गणितशास्त्रसंबंधी कोई ग्रंथ उपलब्ध क्यों नहीं है ? इस शंकाका निवारण सरल है। दाशमिकक्रमका आविष्कार ईसवी सन्के प्रारंभ कालके लगभग किसी समय हुआ था। इसे सामान्य प्रचारमें आनेके लिये चार पांच शताब्दियां लग गई होंगी। दाशमिकक्रमका प्रयोग करनेवाला आर्यभटका ग्रंथ ही सर्वप्रथम अच्छा ग्रंथ प्रतीत होता हैं। आर्यभटके ग्रंथसे पूर्वके ग्रंथोंमें या तो पुरानी संख्यापद्धतिका प्रयोग था, अथवा, वे समयकी कसौटी पर ठीक उतरने लायक अच्छे नहीं थे। गणितकी दृष्टिसे आर्यभटकी विस्तृत ख्यातिका कारण, मेरे मतानुसार, बहुतायतसे यही था कि उन्होंने ही सर्वप्रथम एक अच्छा ग्रन्थ रचा, जिसमें दाशमिकक्रमका प्रयोग किया गया था। आर्यभटके ही कारण पुरानी पुस्तकें अप्रचलित और विलीन हो गईं। इससे साफ पता चल जाता है कि सन् ४९९ के पश्चात् लिखी हुई तो हमें इतनी पुस्तकें मिलती हैं, किन्तु उसके पूर्वके कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

इस प्रकार सन् ५०० ईसवीसे पूर्वके भारतीय गणितशास्त्रके विकास और उन्नतिका चित्रण करनेके लिये वास्तवमें कोई साधन हमारे पास नहीं है। ऐसी अवस्थामें आर्यभटसे पूर्वके भारतीय गणितज्ञानका बोध करानेवाले ग्रंथोंकी खोज करना एक विशेष महत्वपूर्ण कार्य हो जाता है। गणितशास्त्रसंबंधी ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेके कारण सन् ५०० के पूर्वकालीन भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासका पुनः निर्माण करनेके लिये हमें हिंदुओं, बौद्धों और

१ ब्रम्हकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य ।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥ आर्यभटीय. २, १.

ब्रह्मभूमिनक्षत्रगणान्नमस्कृत्य कुसुमपुरे कुसुमपुराख्येऽस्मिन्देशे अभ्यर्चितं ज्ञानं कुसुमपुरवासिभिः पूजितं ग्रहगतिज्ञानसाधनभूतं तन्त्रमार्यभटो निगदति। (परमेश्वराचार्यकृत टीका)

जैनियोंके साहित्यकी, और विशेषतः धार्मिक साहित्यकी, छानबीन करना पड़ती है। अनेक पुराणोंमें हमें ऐसे भी खंड मिलते हैं जिनमें गणितशास्त्र और ज्योतिषविद्याका वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार जैनियोंके अधिकांश आगमग्रन्थोंमें भी गणितशास्त्र या ज्योतिषविद्याकी कुछ न कुछ सामग्री मिलती है। यही सामग्री भारतीय परम्परागत गणितकी द्योतक है, और वह उस ग्रन्थसे जिसमें वह अन्तर्भूत है, प्रायः तीन चार शताब्दियां पुरानी होती है। अतः यदि हम सन् ४०० से ८०० तककी किसी धार्मिक या दार्शनिक कृतिकी परीक्षा करें तो उसका गणितशास्त्रीय विवरण ईसवीके प्रारंभसे सन् ४०० तकका माना जा सकता है।

उपर्युक्त निरूपणके प्रकाशमें ही हम इस नौवीं शताब्दीके प्रारंभकी रचना षट्खंडागमकी टीका धवलाकी खोजको अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हैं। श्रीयुत हीरालाल जैनने इस ग्रन्थका सम्पादन और प्रकाशन करके विद्वानोंको स्थायीरूपसे कृतज्ञताका ऋणी बना लिया है।

गणितशास्त्रकी जैनशाखा

सन् १९१२ में रंगाचार्यद्वारा गणितसारसंग्रहकी खोज और प्रकाशनके समयसे विद्वानोंको[१] आभास होने लगा है कि गणितशास्त्रकी ऐसी भी एक शाखा रही है जो कि पूर्णतः जैन विद्वानोंद्वारा चलाई जाती थी। हालहीमें जैन आगमके कुछ ग्रन्थोंके अध्ययनसे जैन गणितज्ञ और गणितग्रन्थोंसंबंधी उल्लेखोंका पता चला है[२]। जैनियोंका धार्मिक साहित्य चार भागोंमें विभाजित है जो अनुयोग, (जैनधर्मके) तत्वोंका स्पष्टीकरण, कहलाते हैं। उनमेंसे एकका नाम करणानुयोग या गणितानुयोग, अर्थात् गणितशास्त्रसंबंधी तत्वोंका स्पष्टीकरण, है। इसीसे पता चलता है कि जैनधर्म और जैनदर्शनमें गणितशास्त्रको कितना उच्च पद दिया गया है।

यद्यपि अनेक जैन गणितज्ञोंके नाम ज्ञात हैं, परंतु उनकी कृतियां लुप्त हो गई हैं। उनमें सबसे प्राचीन भद्रबाहु हैं जो कि ईसासे २७८ वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधारे। वे ज्योतिष विद्याके दो ग्रन्थोंके लेखक माने जाते हैं (१) सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीका; और (२) भद्रबाहवी संहिता नामक एक मौलिक ग्रंथ। मलयगिरि (लगभग ११५० ई.) ने अपनी सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीकामें इनका उल्लेख किया है, और भट्टोत्पल[३] (९६६) ने उनके ग्रन्थावतरण दिये हैं। सिद्धसेन नामक एक दूसरे ज्योतिषीके ग्रन्थावतरण वराहमिहिर (५०५) और भट्टोत्पल द्वारा दिये गये

---

१ देखो– रंगाचार्य द्वारा सम्पादित गणितसारसंग्रहकी प्रस्तावना, डी. ई. स्मिथद्वारा लिखित, मद्रास, १९१२.

२ बी. दत्त: गणितशास्त्रीय जैन शाखा, बुलेटिन कलकत्ता गणितसोसायटी, जिल्द २१ (१९२९), पृष्ठ ११५ से १४५.

३ बृहत्संहिता, एस. द्विवेदीद्वारा सम्पादित, बनारस, १८९५, पृ. २२६.

हैं। अर्धमागधी और प्राकृत भाषामें लिखे हुए गणितसम्बन्धी उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। धवलामें इसप्रकारके बहुसंख्यक अवतरण विद्यमान हैं। इन अवतरणोंपर यथास्थान विचार किया जायगा। किन्तु यहां यह बात उल्लेखनीय है कि वे अवतरण निःसंशयरूपसे सिद्ध करते हैं कि जैन विद्वानोंद्वारा लिखे गये गणितग्रंथ थे जो कि अब लुप्त हो गये हैं[1]। क्षेत्रसमास और करणभावनाके नामसे जैन विद्वानोंद्वारा लिखित ग्रंथ गणितशास्त्रसम्बन्धी ही थे। पर अब हमें ऐसे कोई ग्रंथ प्राप्य नहीं हैं। हमारा जैन गणितशास्त्रसम्बन्धी अत्यन्त खंडित ज्ञान स्थानांग सूत्र, उमास्वातिकृत तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, सूर्यप्रज्ञप्ति, अनुयोगद्वारसूत्र, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार आदि गणितेतर ग्रन्थोंसे संकलित है। अब इन ग्रन्थोंमें धवलाका नाम भी जोड़ा जा सकता है।

धवलाका महत्व

धवला नौवीं सदीके प्रारंभमें वीरसेन द्वारा लिखी गई थी। वीरसेन तत्वज्ञानी और धार्मिक दिव्यपुरुष थे। वे वस्तुतः गणितज्ञ नहीं थे। अतः जो गणितशास्त्रीयसामग्री धवलाके अन्तर्गत है, वह उनसे पूर्ववर्ती लेखकोंकी कृति कही जा सकती है, और मुख्यतया पूर्वगत टीकाकारोंकी, जिनमेंसे पांचका इन्द्रनन्दीने अपने श्रुतावतारमें उल्लेख किया है। ये टीकाकार **कुंदकुंद, शामकुंद, तुंबुलूर, समन्तभद्र और बप्पदेव** थे, जिनमेंसे प्रथम लगभग सन् २०० के और अन्तिम सन् ६०० के लगभग हुए। अतः धवलाकी अधिकांश गणितशास्त्रीयसामग्री सन् २०० से ६०० तकके बीचके समयकी मानी जा सकती है। इस प्रकार भारतवर्षीय गणितशास्त्रके इतिहासकारोंके लिये धवला प्रथम श्रेणीका महत्वपूर्ण ग्रंथ हो जाता है, क्योंकि उसमें हमें भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासके सबसे अधिक अंधकारपूर्ण समय, अर्थात् पांचवी शताब्दीसे पूर्वकी बातें मिलती हैं। विशेष अध्ययनसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि धवलाकी गणितशास्त्रीय सामग्री सन् ५०० से पूर्वकी है। उदाहरणार्थ— धवलामें वर्णित अनेक प्रक्रियायें किसी भी अन्य ज्ञात ग्रंथमें नहीं पाई जातीं, तथा इसमें कुछ ऐसी स्थूलताका आभास भी है जिसकी झलक पश्चात्के भारतीय गणितशास्त्रसे परिचित विद्वानोंको सरलतासे मिल सकती है। धवलाके गणितभागमें वह परिपूर्णता और परिष्कार नहीं है जो आर्यभटीय और उसके पश्चात्के ग्रंथोंमें है।

धवलान्तर्गत गणितशास्त्र

संख्याएं और संकेत—धवलाकार दाशमिकक्रमसे पूर्णतः परिचित हैं। इसके प्रमाण

---

१ शीलांकने सूत्रकृतांगसूत्र, समयाध्ययन अनुयोगद्वार, श्लोक २८, पर अपनी टीकामें भंगसंबंधी (regarding permutations and combinations) तीन नियम उद्धृत किये हैं। ये नियम किसी जैन गणित ग्रंथमेंसे लिये गये जान पड़ते हैं।

सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। हम यहां धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंसे ली गई संख्याओंको व्यक्त करनेकी कुछ पद्धतियोंको उपस्थित करते हैं—

(१) ७९९९९९९८ को ऐसी संख्या कहा है कि जिसके आदिमें ७, अन्तमें ८ और मध्यमें छह वार ९ की पुनरावृत्ति है[१]।

(२) ४६६६६६६४ व्यक्त किया गया है– चौसठ, छह सौ, छयासठ हजार, छयासठ लाख, और चार करोड़[२]।

(३) २२७९९४९८ व्यक्त किया गया है— दो करोड़, सत्ताइस, निन्यान्वे हजार, चारसौ और अन्ठान्वे[३]।

इनमेंसे (१) में जिस पद्धतिका उपयोग किया है वह जैन साहित्यमें अन्य स्थानोंमें भी पायी जाती है, और गणितसारसंग्रहमें[४] भी कुछ स्थानोंमें है। उससे दाशमिकक्रमका सुपरिचय सिद्ध होता है। (२) में छोटी संख्याएं पहले व्यक्त की गई हैं। यह संस्कृत साहित्यमें प्रचलित साधारण रीतिके अनुसार नहीं है। उसी प्रकार यहां संकेत-क्रम सौ है, न कि दश जो कि साधारणतः संस्कृत साहित्यमें पाया जाता है[५]। किन्तु पाली और प्राकृतमें सौ का क्रम ही प्रायः उपयोगमें लाया गया है। (३) में सबसे बड़ी संख्या पहले व्यक्त की गई है। अवतरण (२) और (३) स्पष्टतः भिन्न स्थानोंसे लिये गये हैं।

बड़ी संख्यायें— यह सुविदित है कि जैन साहित्यमें बड़ी संख्यायें बहुतायतसे उपयोगमें आई हैं। धवलामें भी अनेक तरहकी जीवराशियों (द्रव्यप्रमाण) आदि पर तर्क वितर्क हैं। निश्चितरूपसे लिखी गई सबसे बड़ी संख्या पर्याप्त मनुष्योंकी है। यह संख्या धवलामें[६] दो के छठे वर्ग और दो के सातवें वर्गके बीचकी, अथवा और भी निश्चित, कोटि-कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटिके बीचकी कही गई है। याने—

2^{2^6} और 2^{2^7} के बीचकी। अथवा, और अधिक नियत- $(१,००,००,०००)^३$ और $(१,००,००,०००)^४$ के बीचकी। अथवा, सर्वथा निश्चित- $2^{2^5} \times 2^{2^6}$। इन जीवोंकी संख्या अन्य मतानुसार[७] ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ हैं।

---

१. ध. भाग ३, पृष्ठ ९८, गाथा ५१। देखो गोम्मटसार, जीवकांड, पृष्ठ ६३३.
२. ध. भाग ३, पृ. ९९, गाथा ५२.
३ ध. भाग ३, पृ. १००, गाथा ५३.
४ देखो– गणितसारसंग्रह १, २७. और भी देखो– दत्त और सिंहका हिन्दूगणितशास्त्रका इतिहास, जिल्द १, लाहौर १९३५, पृ १६.
५ दत्त और सिंह, पूर्ववत्, पृ. १४.
६ ध. भाग ३, पृ. २५३.
७ गोम्मटसार, जीवकांड, (से. बु. जै. सीरीज) पृ. १०४.

यह संख्या उन्तीस अंक ग्रहण करती है। इसमें भी उतने ही स्थान हैं जितने कि $(\cdot १,००,००,०००)^{४}$ में, परन्तु है वह उससे बड़ी संख्या। यह बात धवलाकारको ज्ञात है, और उन्होंने मनुष्यक्षेत्रका क्षेत्रफल निकालकर यह सिद्ध किया है कि उक्त संख्याके मनुष्य मनुष्यक्षेत्रमें नहीं समा सकते, और इसलिये उस संख्यावाला मत ठीक नहीं है।

मौलिक प्रक्रियायें

धवलामें जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्गमूल और घनमूल निकालना, तथा संख्याओंका घात निकालना (The raising of numbers to given powers) आदि मौलिक प्रक्रियाओंका कथन उपलब्ध है। ये क्रियाएं पूर्णांक और भिन्न, दोनोंके संबंधमें कही गई हैं। धवलामें वर्णित घातांकका सिद्धान्त (Theory of indices) दूसरे गणित ग्रंथोंसे कुछ कुछ भिन्न है। निश्चयतः यह सिद्धान्त प्राथमिक है, और सन् ५०० से पूर्वका है। इस सिद्धान्तसंबंधी मौलिक विचार निम्नलिखित प्रक्रियाओंके आधारपर प्रतीत होते हैं:—(१) वर्ग, (२) घन, (३) उत्तरोत्तर वर्ग, (४) उत्तरोत्तर घन, (५) किसी संख्याका संख्यातुल्य घात निकालना (The raising of numbers to their own power), (६) वर्गमूल, (७) घनमूल, (८) उत्तरोत्तर वर्गमूल, (९) उत्तरोत्तर घनमूल, आदि। अन्य सब घातांक इन्हीं रूपोंमें प्रगट किये गये हैं।

उदाहरणार्थ—$\text{अ}^{\frac{3}{2}}$ को अ के घनका प्रथम वर्गमूल कहा है। अ^{9} को अ का घनका घन कहा है। अ^{6} को अ के घनका वर्ग, या वर्गका घन कहा है, इत्यादि[1]। उत्तरोत्तर वर्ग और घनमूल नीचे लिखे अनुसार हैं—

अ का प्रथम वर्ग याने $(\text{अ})^{2} = \text{अ}^{2}$

„ द्वितीय वर्ग „ $(\text{अ}^{2})^{2} = \text{अ}^{4} = \text{अ}^{2^{2}}$

„ तृतीय वर्ग „ $\text{अ}^{2^{3}}$

„ न वर्ग „ $\text{अ}^{2^{\text{न}}}$

उसी प्रकार— अ का प्रथम वर्गमूल याने $\text{अ}^{\frac{1}{2}}$

„ द्वितीय „ „ $\text{अ}^{(\frac{1}{2})^{2}}$

„ तृतीय „ „ $\text{अ}^{(\frac{1}{2})^{3}}$

„ न „ „ $\text{अ}^{(\frac{1}{2})^{\text{न}}}$

---

१ धवला, भाग ३ पृष्ठ, ५३.

वर्गित-संवर्गित

परिभाषिक शब्द वर्गित-संवर्गितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

उदाहरणार्थ—$न^{न}$ न का वर्गितसंवर्गितरूप है।

इस सम्बन्धमें धवलामें विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रियाका उल्लेख आया है। किसी संख्याका '**विरलन**' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एकएकमें अलग करना है। जैसे, न के विरलनका अर्थ है—

१ १ १ १ १ ....न वार

'**देय**' का अर्थ है उपर्युक्त अंकोंमें प्रत्येक स्थान पर एककी जगह न (विवक्षित संख्या) को रख देना। फिर उस विरलन-देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है। जैसे, न का प्रथम वर्गित-संवर्गित $न^{न}$।

विरलन-देयकी एकवार पुनः प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् $न^{न}$ को लेकर वही विधान फिर करनेसे, द्वितीय वर्गित-संवर्गित $(न^{न})^{न^{न}}$ प्राप्त होता है। इसी विधानको पुनः एकवार करनेसे न का तृतीय वर्गित-संवर्गित $\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}^{\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}}$ प्राप्त होता है।

धवलामें उक्त प्रक्रियाका प्रयोग तीन वारसे अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है। किन्तु, तृतीय वर्गितसंवर्गितका उल्लेख अनेकवार[1] बड़ी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके संबंधमें किया गया है। इस प्रक्रियासे कितनी बड़ी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्गितसंवर्गित रूप $२५६^{२५६}$ हो जाता है।

घातांक सिद्धान्त

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि धवलाकार घातांक सिद्धान्तसे पूर्णतः परिचित थे। जैसे—

(१) $अ^{म} . अ^{न} = अ^{म+न}$

(२) $अ^{म} / अ^{न} = अ^{म-न}$

(३) $(अ^{म})^{न} = अ^{मन}$

---

१ धवला, भाग ३, पृ. २० आदि.

उक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसंबंधी उदाहरण धवलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रकारका है[1]— कहा गया है कि २ के ७ वें वर्गमें २ के छठवें वर्गका भाग देनेसे २ का छठवां वर्ग लब्ध आता है। अर्थात्—

$$२^{२^७}/२^{२^६} = २^{२^६}$$

जब दाशमिकक्रमका ज्ञान नहीं हो पाया था तब द्विगुणक्रम और अर्धक्रमकी प्रक्रियाएं (The operations of duplation and mediation) महत्वपूर्ण समझी जाती थीं। भारतीय गणितशास्त्रके ग्रंथोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिह्न नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको मिश्र और यूनानके निवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अंकगणितसंबंधी ग्रंथोंमें वे तदनुसार स्वीकार की जाती थीं। धवलामें इन प्रक्रियाओंके चिह्न मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके उत्तरोत्तर वर्गीकरणका विचार निश्चयतः द्विगुणक्रमकी प्रक्रियासे ही परिस्फुटित हुआ होगा, और यह द्विगुणक्रमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचारसे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। उसी प्रकार अर्धक्रम पद्धतिका भी पता चलता है। धवलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधार-वाले लघुरिक्थ सिद्धान्तमें साधारणीकृत पाते हैं।

लघुरिक्थ (Logarithm)

धवलामें निम्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षण पाये जाते हैं[2]—

(१) **अर्धच्छेद**— जितनी वार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी आधी की जा सकती है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते हैं। जैसे— $२^{म}$ के अर्धच्छेद = म

अर्धच्छेदका संकेत अछे मान कर हम इसे आधुनिक पद्धतिमें इस प्रकार रख सकते हैं—

क का अछे (या अछे क) = लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(२) **वर्गशलाका**— किसी संख्याके अर्द्धच्छेदोंके अर्द्धच्छेद उस संख्याकी वर्ग-शलाका होती है। जैसे— क की वर्गशलाका = वश क = अछे अछे क = लरि लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(३) **त्रिकच्छेद**[3]— जितने वार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जाती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते हैं। जैसे— क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = लरि ३क। यहां लघुरिक्थका आधार ३ है।

---

१ धवला भाग ३, पृ. २५३ आदि. २ धवला भाग ३, पृ. २१ आदि.

३ धवला भाग ३, पृ. ५६.

(४) चतुर्थच्छेद[1]—जितने वार एक संख्या उत्तरोत्तर ४ से विभाजित की जा सकती है, उतने उस संख्याके चतुर्थच्छेद होते हैं। जैसे– क के चतुर्थच्छेद = चछे क = लरि ४ क। यहां लघुरिक्थका आधार ४ है।

धवलामें लघुरिक्थसंबंधी निम्न परिणामोंका उपयोग किया गया है—

(१)[2] लरि (म/न) = लरि म – लरि न

(२) लरि (म. न) = लरि म + लरि न

(३)[3] २ लरि म = म। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(४)[4] लरि$(क^{क})^{२}$ = २ क लरि क

(५)[5] लरि लरि $(क^{क})^{२}$ = लरि क + १ + लरि लरि क,

(वाईं ओर) = लरि (२ क लरि क)

= लरि क + लरि २ + लरि लरि क

= लरि क + १ + लरि लरि क।

चूंकि लरि २ = १, जब कि आधार २ है।

(६)[6] लरि $(क^{क})^{क^{क}}$ = $क^{क}$ लरि $क^{क}$

(७) मानलो अ एक संख्या है, तो—

अ का प्रथम वर्गित-संवर्गित = $अ^{अ}$ = ब (मानलो)

„ द्वितीय „ = $ब^{ब}$ = भ „

„ तृतीय „ = $भ^{भ}$ = म „

धवलामें निम्न परिणाम दिये गये हैं[7]—

(क) लरि ब = अ लरि अ

(ख) लरि लरि ब = लरि अ + लरि लरि अ

(ग) लरि भ = ब लरि ब

---

१ धवला, भाग ३, पृ. ५६. २ धवला, भाग ३, पृ. ६०. ३ धवला, भाग ३, पृ. ५५.
४ धवला, भाग ३, पृ. २१ आदि. ५ पूर्ववत्.
६ पूर्ववत्। यहां यह वात उल्लेखनीय है कि ग्रंथमें ये लघुरिक्थ पूर्णांकों तक ही परिमित नहीं हैं। संख्या क कोई भी संख्या हो सकती है। $क^{क}$ प्रथम वर्गितसंवर्गित राशि और $(क^{क})^{क^{क}}$ द्वितीय वर्गित-संवर्गित राशि है। ७ धवला, भाग ३, पृ. २१–२४.

(घ) लरि लरि भ = लरि ब + लरि लरि ब

= लरि अ + लरि लरि अ + अ लरि अ

(ङ) लरि म = भ लरि भ

(च) लरि लरि म = लरि भ + लरि लरि भ । इत्यादि

(८)[1] लरि लरि म < ब^2

इस असाम्यतासे निम्न असाम्यता आती है—

ब लरि ब + लरि ब + लरि लरि ब < ब^2

भिन्न— अंकगणितमें भिन्नोंकी मौलिक प्रक्रियाओं, जिनका ज्ञान धवलामें ग्रहण कर लिया गया है, के अतिरिक्त यहां हम भिन्नसंबंधी अनेक ऐसे रोचक सूत्र पाते हैं जो अन्य किसी गणितसंबंधी ज्ञात ग्रन्थमें नहीं मिलते । इनमें निम्न लिखित उल्लेखनीय हैं—

(१)[2] $$\frac{\text{न}^2}{\text{न} \pm (\text{न} / \text{प})} = \text{न} \mp \frac{\text{न}}{\text{प} \pm \text{१}}$$

(२)[3] मान लो कि किसी एक संख्या म में द, द' ऐसे दो भाजकों का भाग दिया गया और उनसे क्रमशः क और क' ये दो लब्ध (या भिन्न) उत्पन्न हुए। निम्न लिखित सूत्रमें म के द ± द' से भाग देने का परिणाम दिया गया है—

$$\frac{\text{म}}{\text{द} \pm \text{द}'} = \frac{\text{क}'}{(\text{क}'/\text{क}) \pm \text{१}}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{क}}{\text{१} \pm (\text{क}/\text{क}')}$$

(३)[4] यदि $\frac{\text{म}}{\text{द}} = \text{क}$, और $\frac{\text{म}'}{\text{द}} = \text{क}'$, तो— द (क−क') + म' = म

(४)[5] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, तो— $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \frac{\text{ब}}{\text{न}}} = \text{क} - \frac{\text{क}}{\text{न} + \text{१}}$;

१ धवला, भाग ३, पृ. २४.
२ धवला, भाग ३, पृ. ४६.
३ धवला, भाग ३, पृ. ४६.
४ धवला, भाग ३, पृ. ४७, गाथा २७.
५ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४.

और $$\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \frac{\text{ब}}{\text{न}}} = \text{क} + \frac{\text{क}}{\text{न} - १}$$

(५)[1] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, तो— $$\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{स}} = \text{क} - \frac{\text{क}}{\frac{\text{ब}}{\text{स}} + १};$$

और $$\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \text{स}} = \text{क} + \frac{\text{क}}{\frac{\text{ब}}{\text{स}} - १}$$

(६)[2] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क} + \text{स}$, तो—

$$\text{ब}' = \text{ब} - \frac{\text{ब}}{\frac{\text{क}}{\text{स}} + १};$$

और यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क} - \text{स}$, तो— $\text{ब}' = \text{ब} + \frac{\text{ब}}{\frac{\text{क}}{\text{स}} - १}$

(७)[3] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} - \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'}$ दूसरा भिन्न है, तो—

$$\frac{\text{अ}}{\text{ब}} - \frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क}\left(\frac{\text{ब}' - \text{ब}}{\text{ब}'}\right)$$

(८)[4] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{ख}} = \text{क} - \text{स}$, तो— $\text{ख} = \frac{\text{ब स}}{\text{क} - \text{स}}$

(९)[5] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \text{ख}} = \text{क} + \text{स}$, तो— $\text{ख} = \frac{\text{ब स}}{\text{क} + \text{स}}$

(१०)[6] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{स}} = \text{क}'$, तो— $\text{क}' = \text{क} - \frac{\text{क स}}{\text{ब} + \text{स}}$

---

१ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४.
२ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २५.
३ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २८.
४ भाग ३, पृ. ४८, गाथा २९.
५ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३०.
६ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३१.

(११)[1] यदि $\frac{अ}{ब}$ = क, और $\frac{अ}{ब - स}$ = क', तो- क' = क + $\frac{क स}{ब - स}$

ये सब परिणाम धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंमें पाये जाते हैं। वे किसी भी गणित-संबंधी ज्ञात ग्रंथमें नहीं मिलते। ये अवतरण अर्धमागधी अथवा प्राकृत ग्रंथोंके हैं। अनुमान यही होता है कि वे सब किन्हीं गणितसंबंधी जैन ग्रन्थोंसे, अथवा पूर्ववर्ती टीकाओंसे लिये गये हैं। वे अंकगणितकी किसी सारभूत प्रक्रियाका निरूपण नहीं करते। वे उस कालके स्मारकावशेष हैं जब कि भाग एक कठिन और श्रमसाध्य विधान समझा जाता था। ये नियम निश्चयतः उस काल के हैं जब कि दाशमिक-क्रमका अंकगणितकी प्रक्रियाओंमें उपयोग सुप्रचलित नहीं हुआ था।

त्रैराशिक— त्रैराशिक क्रियाका धवलामें अनेक स्थानों पर उल्लेख और उपयोग किया गया है[2]। इस प्रक्रियासंबंधी पारिभाषिक शब्द हैं— फल, इच्छा और प्रमाण— ठीक वही जो ज्ञात ग्रंथोंमें मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि त्रैराशिक क्रियाका ज्ञान और व्यवहार भारतवर्षमें दाशमिक क्रमके आविष्कारसे पूर्व भी वर्तमान था।

अनन्त

बड़ी संख्याओंका प्रयोग—'अनन्त' शब्दका विविध अर्थोंमें प्रयोग सभी प्राचीन जातियोंके साहित्यमें पाया जाता है। किन्तु उसकी ठीक परिभाषा और समझदारी बहुत पीछे आई। यह स्वाभाविक ही है कि अनन्तकी ठीक परिभाषा उन्हीं लोगोंद्वारा विकसित हुई जो बड़ी संख्याओंका प्रयोग करते थे, या अपने दर्शनशास्त्रमें ऐसी संख्याओंके अभ्यस्त थे। निम्न विवेचनसे यह प्रकट हो जायगा कि भारतवर्षमें जैन दार्शनिक अनन्तसे संबंध रखनेवाली विविध भावनाओंको श्रेणीबद्ध करने तथा गणनासंबंधी अनन्तकी ठीक परिभाषा निकालनेमें सफल हुए।

बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये उचित संकेतोंका तथा अनन्तकी कल्पनाका विकास तभी होता है जब निगूढ़ तर्क और विचार एक विशेष उच्च श्रेणीपर पहुंच जाते हैं। यूरोपमें आर्किमिडीज़ने समुद्र-तटकी रेतके कणोंके प्रमाणके अंदाज लगानेका प्रयत्न किया था और यूनानके दार्शनिकोंने अनन्त एवं सीमा (limit) के विषयमें विचार किया था। किन्तु उनके पास बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेके योग्य संकेत नहीं थे। भारतवर्षमें हिन्दू, जैन और बौद्ध दार्शनिकोंने बहुत बड़ी संख्याओंका प्रयोग किया और उस कार्यके लिये उन्होंने उचित संकेतोंका

---

१ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३२.

२ धवला भाग ३, पृ. ६९ और १०० आदि.

भी आविष्कार किया। विशेषतः जैनियोंने लोकभरके समस्त जीवों, काल-प्रदेशों और क्षेत्र अथवा आकाश-प्रदेशों आदिके प्रमाणका निरूपण करनेका प्रयत्न किया है।

बड़ी संख्यायें व्यक्त करनेके तीन प्रकार उपयोगमें लाये गये—

(१) **दाशमिक-क्रम** (Place-value notation)— जिसमें दशमानका उपयोग किया गया। इस संबंधमें यह बात उल्लेखनीय है कि दशमानके[१] आधारपर $१०^{१४०}$ जैसी बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेवाले नाम कल्पित किये गये।

(२) **घातांक नियम** (Law of indices वर्ग-संवर्ग) का उपयोग बड़ी संख्याओंको सूक्ष्मतासे व्यक्त करनेके लिये किया गया। जैसे—

(अ) $२^{२} = ४$

(ब) $\left(२^{२}\right)^{२^{२}} = ४^{४} = २५६$

(स) $\left\{\left(२^{२}\right)^{२^{२}}\right\}^{\left\{\left(२^{२}\right)^{२^{२}}\right\}} = २५६^{२५६}$

जिसको २ का तृतीय वर्गित-संवर्गित कहा है। यह संख्या समस्त विश्व (universe) के विद्युत्कणों (protons and electrons) की संख्यासे बड़ी है।

(३) **लघुरिक्थ** (अर्धच्छेद) अथवा लघुरिक्थके लघुरिक्थ (अर्धच्छेदशलाका) का उपयोग बड़ी संख्याओंके विचारको छोटी संख्याओंके विचारमें उतारनेके लिये किया गया। जैसे—

(अ) $लरि_{२}\ २^{२} = २$

(ब) $लरि_{२}\ लरि_{२}\ ४^{४} = ३$

(स) $लरि_{२}\ लरि_{२}\ २५६^{२५६} = ११$

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज भी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये हम उपर्युक्त तीन प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारका उपयोग करते हैं। दाशमिकक्रम समस्त देशोंकी साधारण सम्पत्ति बन गई है। जहां बड़ी संख्याओंका गणित करना पड़ता है, वहां लघुरिक्थोंका उपयोग किया जाता है। आधुनिक पदार्थविज्ञानमें परिमाणों (magnitudes) को व्यक्त करनेके

---

१ बड़ी संख्याओं तथा संख्या-नामोंके संबंधमें विशेष जाननेके लिये देखिये दत्त और सिंह कृत हिन्दू गणितशास्त्रका इतिहास (History of Hindu Mathematics), मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, द्वारा प्रकाशित, भाग १, पृ. ११ आदि.

लिये घातांक नियमोंका उपयोग सर्वसाधारण है। उदाहरणार्थ– विश्वभरके विद्युत्कणोंकी गणना[१] करके उसकी व्यक्ति इस प्रकार की गई है— $१३६\cdot२^{२५६}$ तथा, रूढ संख्याओंके विकलन (distribution of primes) को सूचित करनेवाली स्क्यूज संख्या (Skewes' number) निम्न प्रकारसे व्यक्त की जाती है–

$$१०^{१०^{१०^{३४}}}$$

संख्याओंको व्यक्त करनेवाले उपर्युक्त समस्त प्रकारोंका उपयोग धवलामें किया गया है। इससे स्पष्ट है कि भारतवर्षमें उन प्रकारोंका ज्ञान सातवीं शताब्दिसे पूर्व ही सर्व-साधारण हो गया था।

अनन्तका वर्गीकरण

धवलामें अनन्तका वर्गीकरण पाया जाता है। साहित्यमें अनन्त शब्दका उपयोग अनेक अर्थोंमें हुआ है। जैन वर्गीकरणमें उन सबका ध्यान रखा गया है। जैन वर्गीकरणके अनुसार अनन्तके ग्यारह प्रकार हैं। जैसे–

(१) नामानन्त[२]— नामका अनन्त। किसी भी वस्तु-समुदायके यथार्थतः अनन्त होने या न होनेका विचार किये विना ही केवल उसका बहुत्व प्रगट करनेके लिये साधारण बोलचालमें अथवा अबोध मनुष्यों द्वारा या उनके लिये, अथवा साहित्यमें, उसे अनन्त कह दिया जाता है। ऐसी अवस्थामें 'अनन्त' शब्दका अर्थ नाममात्रका अनन्त है। इसे ही नामानन्त कहते हैं।

---

१ संख्या $१३६\cdot२^{२५६}$ को दाशमिक-क्रमसे व्यक्त करने पर जो रूप प्रकट होता है वह इस प्रकार है— १५,७४७,७२४,१३६,२७५,००२,५७७,६०५,६५३,९६१,१८१,५५५,४६८,०४४,७१७,९१४,५७२, ११६,७०९,३६६,२३१,४२५,०७६,१८५,६३१,०३१,२९६,

इससे देखा जा सकता है कि २ का तृतीय वर्गित-संवर्गित अर्थात् $२५६^{२५६}$ विश्वभरके समस्त विद्युत्-कणोंकी संख्यासे अधिक होता है। यदि हम समस्त विश्वको एक शतरंजका फलक मान लें और विद्युत्कणोंको उसकी गोटियां, और दो विद्युत्कणोंकी किसी भी परिवृत्तिको इस विश्वके खेलकी एक 'चाल' मान लें, तो समस्त संभव 'चालों' की संख्या—

$$१०^{१०^{१०^{३४}}}$$ होगी।

यह संख्या रूढ संख्याओं (primes) के विभाग (distribution) से भी संबंध रखती है।

२ जीवाजीवमिस्सदव्वस्स कारणणिरवेक्खा सण्णा अणंता। धवला ३, पृ. ११.

(२) **स्थापनानन्त**[1]— आरोपित या आनुषंगिक, या स्थापित अनन्त । यह भी यथार्थ अनन्त नहीं है । जहां किसी वस्तुमें अनन्तका आरोपण कर लिया जाता है वहां इस शब्दका प्रयोग किया जाता है ।

(३) **द्रव्यानन्त**[2]— तत्काल उपयोगमें न आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त । इस संज्ञाका उपयोग उन पुरुषोंके लिये किया जाता है जिन्हें अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है, जिसका वर्तमानमें उपयोग नहीं है ।

(४) **गणनानन्त**— संख्यात्मक अनन्त । यह संज्ञा गणितशास्त्रमें प्रयुक्त वास्तविक अनन्तके अर्थमें आई है ।

(५) **अप्रदेशिकानन्त**— परिमाणहीन अर्थात् अत्यन्त अल्प परमाणुरूप ।

(६) **एकानन्त**— एकदिशात्मक अनन्त । यह वह अनन्त है जो एक दिशामें सीधी एक रेखारूपसे देखनेमें प्रतीत होता है ।

(७) **विस्तारानन्त**— द्विविस्तारात्मक अथवा पृष्ठदेशीय अनन्त । इसका अर्थ है प्रतरात्मक अनन्ताकाश ।

(८) **उभयानन्त**—द्विदिशात्मक अनन्त । इसका उदाहरण है एक सीधी रेखा जो दोनों दिशाओंमें अनन्त तक जाती है ।

(९) **सर्वानन्त**—आकाशात्मक अनन्त । इसका अर्थ है त्रिधा-विस्तृत अनन्त, अर्थात् घनाकार अनन्ताकाश ।

(१०) **भावानन्त**—तत्काल उपयोगमें आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त । इस संज्ञाका उपयोग उस पुरुषके लिये किया जाता है जिसे अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है और जिसका उस ओर उपयोग है ।

(११) **शाश्वतानन्त**— नित्यस्थायी या अविनाशी अनन्त ।

पूर्वोक्त वर्गीकरण खूब व्यापक है जिसमें उन सब अर्थोंका समावेश हो गया है जिन अर्थोंमें कि ‘ अनन्त ’ संज्ञाका प्रयोग जैन साहित्यमें हुआ है ।

---

१ जं तं ठवणाणंतं णाम तं कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा……………अक्खो वा वराडयो वा जे च अण्णे ठवणाए ठविदा अणंतमिदि तं सव्वं ठवणाणंतं णाम । ध. ३, पृ. ११ से १२.

२ जं तं दव्वाणंतं तं दुविहं आगमदो णोआगमदो य । ध. ३, पृ. १२.

गणनानन्त (Numerical infinite)

धवलामें यह स्पष्टरूपसे कह दिया गया है कि प्रकृतमें अनन्त संज्ञाका प्रयोग[1] गणनानन्तके अर्थमें ही किया गया है, अन्य अनन्तोंके अर्थमें नहीं, 'क्योंकि उन अन्य अनन्तोंके द्वारा प्रमाणका प्ररूपण नहीं पाया जाता'[2]। यह भी कहा गया है कि 'गणनानन्त बहुवर्णनीय और सुगम है'[3]। इस कथनका अर्थ संभवतः यह है कि जैन-साहित्यमें अनन्त अर्थात् गणनानन्तकी परिभाषा अधिक विशदरूपसे भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा कर दी गई थी, तथा उसका प्रयोग और ज्ञान भी सुप्रचलित हो गया था। किन्तु धवलामें अनन्तकी परिभाषा नहीं दी गई। तो भी अनन्तसंबंधी प्रक्रियाएं संख्यात और असंख्यात नामक प्रमाणोंके साथ साथ बहुत वार उल्लिखित हुई हैं।

संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रमाणोंका उपयोग जैन साहित्यमें प्राचीनतम ज्ञातकालसे किया गया है। किन्तु प्रतीत होता है कि उनका अभिप्राय सदैव एकसा नहीं रहा। प्राचीनतर ग्रंथोंमें अनन्त सचमुच अनन्तके उसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ था जिस अर्थमें हम अब उसकी परिभाषा करते हैं। किन्तु पीछेके ग्रंथोंमें उसका स्थान अनन्तानन्तने ले लिया। उदाहरणार्थ– नेमिचंद्र द्वारा दशवीं शताब्दिमें लिखित ग्रंथ त्रिलोकसारके अनुसार परीतानन्त, युक्तानन्त एवं जघन्य अनन्तानन्त एक बड़ी भारी संख्या है, किन्तु है वह सान्त। उस ग्रंथके अनुसार संख्याओंके तीन मुख्य भेद किये जा सकते हैं—

(१) संख्यात—जिसका संकेत हम स मान लेते हैं।

(२) असंख्यात—जिसका संकेत हम अ मान लेते हैं।

(३) अनन्त—जिसका संकेत हम न मान लेते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकारके संख्या-प्रमाणोंके पुनः तीन तीन प्रभेद किये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं–

(१) संख्यात— (गणनीय) संख्याओंके तीन भेद हैं—

(अ) जघन्य-संख्यात (अल्पतम संख्या) जिसका संकेत हम स ज मान लेते हैं।

(ब) मध्यम-संख्यात (बीचकी संख्या) जिसका संकेत हम स म मान लेते हैं।

---

१ धवला ३, पृ. १६.

२ 'ण च सेसअणंताणि पमाणपरूवणाणि, तत्थ तधादंसणादो'। ध. ३, पृ. १७.

३ 'जं तं गणणाणंतं तं बहुवण्णणीयं सुगमं च'। ध. ३, पृ. १६.

(स) उत्कृष्ट-संख्यात (सबसे बड़ी संख्या) जिसका संकेत हम स उ मान लेते हैं।

(२) असंख्यात (अगणनीय) के भी तीन भेद हैं—

(अ) परीत-असंख्यात (प्रथम श्रेणीका असंख्य) जिसका संकेत हम अ प मान लेते हैं।

(ब) युक्त-असंख्यात (बीचका असंख्य) जिसका संकेत हम अ यु मान लेते हैं।

(स) असंख्यातासंख्यात (असंख्य-असंख्य) जिसका संकेत हम अ अ मान लेते हैं।

पूर्वोक्त इन तीनों भेदोंमेंसे प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं। जैसे, जघन्य (सबसे छोटा), मध्यम (बीचका) और उत्कृष्ट (सबसे बड़ा)। इस प्रकार असंख्यातके भीतर निम्न संख्याएं प्रविष्ट हो जाती हैं—

१	जघन्य-परीत-असंख्यात	....	अ प ज
२	मध्यम-परीत-असंख्यात	....	अ प म
३	उत्कृष्ट-परीत-असंख्यात	....	अ प उ
१	जघन्य-युक्त-असंख्यात	....	अ यु ज
२	मध्यम-युक्त-असंख्यात	....	अ यु म
३	उत्कृष्ट-युक्त-असंख्यात	....	अ यु उ
१	जघन्य-असंख्यातासंख्यात	....	अ अ ज
२	मध्यम-असंख्यातासंख्यात	....	अ अ म
३	उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात	....	अ अ उ

(३) अनन्त— जिसका संकेत हम न मान चुके हैं। उसके तीन भेद हैं—

(अ) परीत-अनन्त (प्रथम श्रेणीका अनन्त) जिसका संकेत हम न प मान लेते हैं।

(ब) युक्त-अनन्त (बीचका अनन्त) जिसका संकेत हम न यु मान लेते हैं।

(स) अनन्तानन्त (निःसीम अनन्त) जिसका संकेत हम न न मान लेते हैं।

असंख्यातके समान इन तीनों भेदोंके भी प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। अतः अनन्तके भेदोंमें हमें निम्न संख्याएं प्राप्त होती हैं—

१	जघन्य-परीतानन्त	....	न प ज
२	मध्यम-परीतानन्त	....	न प म
३	उत्कृष्ट-परीतानन्त	....	न प उ

१	जघन्य युक्तानन्त	....	न यु ज
२	मध्यम-युक्तानन्त	....	न यु म
३	उत्कृष्ट-युक्तानन्त	....	न यु उ
१	जघन्य-अनन्तानन्त	....	न न ज
२	मध्यम-अनन्तानन्त	....	न न म
३	उत्कृष्ट-अनन्तानन्त	....	न न उ

संख्यातका संख्यात्मक परिमाण— सभी जैन ग्रंथोंके अनुसार जघन्य संख्यात २ है, क्योंकि, उन ग्रंथोंके मतसे भिन्नताकी बोधक यही सबसे छोटी संख्या है। एकत्वको संख्यातमें सम्मिलित नहीं किया। मध्यम संख्यातमें २ और उत्कृष्ट संख्यातके बीचकी समस्त गणना आ जाती है, तथा उत्कृष्ट-संख्यात जघन्य-परीतासंख्यातसे पूर्ववर्ती अर्थात् एक कम गणनाका नाम है। अर्थात् स उ = अ प ज − १। अ प ज को त्रिलोकसारमें निम्न प्रकारसे समझाया है[1] —

जैन भूगोलानुसार यह विश्व, अर्थात् मध्यलोक, भूमि और जलके क्रमवार वलयोंसे बना हुआ है। उनकी सीमाएं उत्तरोत्तर बढ़ती हुई त्रिज्याओंवाले समकेन्द्रीय वृत्तरूप हैं। किसी भी भूमि या जलमय एक वलयका विस्तार उससे पूर्ववर्ती वलयके विस्तारसे दुगुना है। केन्द्रवर्ती वृत्त (सबसे प्रथम बीचका वृत्त) एक लाख (१००,०००) योजन व्यासवाला है, और जम्बूद्वीप कहलाता है।

अब बेलनके आकारके चार ऐसे गड्ढोंकी कल्पना कीजिये जो प्रत्येक एक लाख योजन व्यासवाले और एक हजार योजन गहरे हों। इन्हें $अ_{१}$, $ब_{१}$, $स_{१}$ और $ड_{१}$ कहिये। अब कल्पना कीजिये कि $अ_{१}$ सरसोंके बीजोंसे पूरा भर दिया गया और फिर भी उस पर और सरसों डाले गये जब तक कि उसकी शिखा शंकुके आकारकी हो जाय, जिसमें सबसे ऊपर एक सरसोंका बीज रहे। इस प्रक्रियाके लिये जितने सरसोंके बीजोंकी आवश्यकता होगी उनकी संख्या इस प्रकार है—

बेलनाकार गड्ढेके लिये—$१९७९१२०९२९९९६८·१०^{३१}$। ऊपर शंकाकार शिखाके लिये— १७९९२००८४५४५१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ । संपूर्ण सरसोंका प्रमाण— १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६-३६३६३६३६३६३६.

---

१ देखो त्रिलोकसार, गाथा ३५.

इस पूर्वोक्त प्रक्रियाको हम वेलनाकार गड्ढका सरसोंके बीजोंसे 'शिखायुक्त-पूरण' कहेंगे। अब उपर्युक्त शिखायुक्त पूरित गड्ढेमेंसे उन बीजोंको निकालिये और जम्बूद्वीपसे प्रारंभ करके प्रत्येक द्वीप और समुद्रके वलयोंमें एक एक बीज डालिये। चूंकि बीजोंकी संख्या सम है, इसलिये अन्तिम बीज समुद्रवलय पर पड़ेगा। अब एक बीज $व_१$ नामक गड्ढेमें डाल दीजिये, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया एक बार होगई।

अब एक ऐसे वेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उस समुद्रकी सीमापर्यन्त व्यासके बराबर हो जिसमें वह अन्तिम सरसोंका बीज डाला है। इस वेलनको $अ_२$ कहिये। अब इस $अ_२$ को भी पूर्वोक्त प्रकार सरसोंसे शिखायुक्त भर देनेकी कल्पना कीजिये। फिर इन बीजोंको भी पूर्व प्राप्त अन्तिम समुद्रवलयसे आगेके द्वीप-समुद्ररूप वलयोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमशः एक एक बीज डालिये। इस द्वितीय वार विरलनमें भी अन्तिम सरसप किसी समुद्रवलय पर ही पड़ेगा। अब $व_१$ में एक और सरसप डाल दो, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया द्वितीय वार हो चुकी।

अब फिर एक ऐसे वेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उसी अन्तिम प्राप्त समुद्र-वलयके व्यासके बराबर हो तथा जो एक हजार योजन गहरा हो। इस वेलनको $अ_३$ कहिये। $अ_३$ को भी सरसपोंसे शिखायुक्त भर देना चाहिये और फिर उन बीजोंको आगेके द्वीपसमुद्रोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे एक एक डालना चाहिये। अन्तमें एक और सरसप $व_१$ में डाल देना चाहिये।

कल्पना कीजिये कि यही प्रक्रिया तब तक चालू रखी गई जब तक कि $व_१$ शिखायुक्त न भर जाय। इस प्रक्रियामें हमें उत्तरोत्तर बढ़ते हुए आकारके वेलन लेना पड़ेंगे—

$$अ_१, अ_२, \ldots\ldots\ldots अ_र, \ldots\ldots$$

मान लीजिये कि $व_१$ के शिखायुक्त भरने पर अन्तिम वेलन $अ'$ प्राप्त हुआ।

अब $अ'$ को प्रथम शिखायुक्त भरा गड्ढा मान कर उस जलवलयके बादसे जिसमें पिछली क्रियाके अनुसार अन्तिम बीज डाला गया था, प्रारम्भ करके प्रत्येक जल और स्थलके वलयमें एक एक बीज छोड़ने की क्रियाको आगे बढ़ाइये। तब $स_१$ में एक बीज छोड़िये। इस प्रक्रियाको तब तक चालू रखिये जब तक कि $स_१$ शिखायुक्त न भर जाय। मान लीजिये कि इस प्रक्रियासे हमें अन्तिम वेलन $अ''$ प्राप्त हुआ। तब फिर इस $अ''$ से वही प्रक्रिया प्रारम्भ कर दीजिये और उसे $ड_१$ के शिखायुक्त भर जाने तक चालू रखिये। मान लीजिये कि इस प्रक्रियाके अन्तमें हमें $अ'''$ प्राप्त हुआ। अतएव जघन्यपरीतासंख्यात

अ प ज का प्रमाण अ''' में समानेवाले सरसप बीजोंकी संख्याके बराबर होगा और उत्कृष्ट-संख्यात = स उ = अ प ज − १.

पर्यालोचन— संख्याओंको तीन भेदोंमें विभक्त करनेका मुख्य अभिप्राय यह प्रतीत होता है– संख्यात अर्थात् गणना कहां तक की जा सकती है यह भाषामें संख्या-नामोंकी उपलब्धि अथवा संख्याव्यक्तिके अन्य उपायोंकी प्राप्ति पर अवलम्बित है। अतएव भाषामें गणनाका क्षेत्र बढ़ानेके लिये भारतवर्षमें प्रधानतः दश-मानके आधारपर संख्या-नामोंकी एक लम्बी श्रेणी बनाई गई। हिन्दू $१०^{१७}$ तककी गणनाको भाषामें व्यक्त कर सकनेवाले अठारह नामोंसे संतुष्ट होगये। $१०^{१७}$ से ऊपरकी संख्याएं उन्हीं नामोंकी पुनरावृत्ति द्वारा व्यक्त की जा सकती थीं, जैसा कि अब हम दश दश-लाख (million million) आदि कह कर करते हैं। किन्तु इस बातका अनुभव होगया कि यह पुनरावृत्ति भारभूत (cumbersome) है। बौद्धों और जैनियोंको अपने दर्शन और विश्वरचना संबंधी विचारोंके लिये $१०^{१७}$ से बहुत बड़ी संख्याओंकी आवश्यकता पड़ी। अतएव उन्होंने और बड़ी बड़ी संख्याओंके नाम कल्पित कर लिये। जैनियोंके संख्यानामोंका तो अब हमें पता नहीं हैं[१], किन्तु बौद्धोंद्वारा कल्पित संख्या-

---

१ जैनियोंके प्राचीन साहित्यमें दीर्घ काल-प्रमाणोंके सूचक नामोंकी तालिका पाई जाती है जो एक वर्ष प्रमाणसे प्रारम्भ होती है ; यह नामावली इस प्रकार है—

१ वर्ष			१७ अटटांग	=	८४ त्रुटित
२ युग	=	५ वर्ष	१८ अटट	=	,, लाख अटटांग
३ पूर्वांग	=	८४ लाख वर्ष	१९ अममांग	=	,, अटट
४ पूर्व	=	,, लाख पूर्वांग	२० अमम	=	,, लाख अममांग
५ नयुतांग	=	,, पूर्व	२१ हाहांग	=	,, अमम
६ नयुत	=	,, लाख नयुतांग	२२ हाहा	=	,, लाख हाहांग
७ कुमुदांग	=	,, नयुत	२३ हूहांग	=	,, हाहा
८ कुमुद	=	,, लाख कुमुदांग	२४ हूहू	=	,, लाख हूहांग
९ पद्मांग	=	,, कुमुद	२५ लतांग	=	,, हूहू
१० पद्म	=	,, लाख पद्मांग	२६ लता	=	,, लाख लतांग
११ नलिनांग	=	,, पद्म	२७ महालतांग	=	,, लता
१२ नलिन	=	,, लाख नलिनांग	२८ महालता	=	,, लाख महालतांग
१३ कमलांग	=	,, नलिन	२९ श्रीकल्प	=	,, लाख महालता
१४ कमल	=	,, लाख कमलांग	३० हस्तप्रहेलित	=	,, लाख श्रीकल्प
१५ त्रुटितांग	=	,, कमल	३१ अचलप्र	=	,, लाख हस्तप्रहेलित
१६ त्रुटित	=	,, लाख त्रुटितांग			

यह नामावली त्रिलोकप्रज्ञप्ति (४–६ वीं शताब्दि) हरिवंशपुराण (८ वीं शताब्दि) और राजवार्तिक (८ वीं शताब्दि) में कुछ नामभेदोंके साथ पाई जाती है। त्रिलोकप्रज्ञप्तिके एक उल्लेखानुसार अचलप्रका प्रमाण ८४ को ३१ वार परस्पर गुणा करनेसे प्राप्त होता है– अचलप्र = $८४^{३१}$ तथा यह संख्या ९० अंक प्रमाण होगी। किन्तु लघुरिक्थ तालिका (Logarithmic tables) के अनुसार $८४^{३१}$ संख्या ६० अंक प्रमाण ही प्राप्त होती है। देखिये धवला, भाग ३, प्रस्तावना व फुट नोट, पृ ३४.—**सम्पादक.**

नामोंकी निम्न श्रेणिका चित्ताकर्षक है—

१ एक	= १
२ दस	= १०
३ सत	= १००
४ सहस्स	= १,०००
५ दससहस्स	= १०,०००
६ सतसहस्स	= १००,०००
७ दससतसहस्स	= १,०००,०००
८ कोटि	= १०,०००,०००
९ पकोटि	$= (१०,०००,०००)^{२}$
१० कोटिप्पकोटि	$= (१०,०००,०००)^{३}$
११ नहुत	$= (१०,०००,०००)^{४}$
१२ निन्नहुत	$- (१०,०००,०००)^{५}$
१३ अखोभिनी	$= (१०,०००,०००)^{६}$
१४ बिन्दु	$= (१०,०००,०००)^{७}$
१५ अब्बुद	$= (१०,०००,०००)^{८}$
१६ निरब्बुद	$= (१०,०००,०००)^{९}$
१७ अहह	$= (१०,०००,०००)^{१०}$
१८ अबब	$= (१०,०००,०००)^{११}$
१९ अटट	$= (१०,०००,०००)^{१२}$
२० सोगन्धिक	$= (१०,०००,०००)^{१३}$
२१ उप्पल	$= (१०,०००,०००)^{१४}$
२२ कुमुद	$= (१०,०००,०००)^{१५}$
२३ पुंडरीक	$= (१०,०००,०००)^{१६}$
२४ पदुम	$= (१०,०००,०००)^{१७}$
२५ कथान	$= (१०,०००,०००)^{१८}$
२६ महाकथान	$= (१०,०००,०००)^{१९}$
२७ असंख्येय	$= (१०,०००,०००)^{२०}$

यहां देखा जाता है कि श्रेणिकामें अन्तिम नाम असंख्येय है। इसका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि असंख्येयके ऊपरकी संख्याएं गणनातीत हैं।

असंख्येयका परिमाण समय समय पर अवश्य बदलता रहा होगा। नेमिचंद्रका असंख्यात उपर्युक्त असंख्येयसे, जिसका प्रमाण $१०^{१४०}$ होता है, निश्चयतः भिन्न है।

असंख्यात— ऊपर कहा ही जा चुका है कि असंख्यातके तीन मुख्य भेद हैं और उनमेंसे भी प्रत्येकके तीन तीन भेद हैं। ऊपर निर्दिष्ट संकेतोंके प्रयोग करनेसे हमें नेमिचंद्रके अनुसार निम्न प्रमाण प्राप्त होते हैं—

जघन्य-परीत-असंख्यात (अ प ज) = स उ + १

मध्यम-परीत-असंख्यात (अ प म) है > अ प ज, किन्तु < अ प उ.

उत्कृष्ट-परीत असंख्यात (अ प उ) = अ यु ज − १

जहां—

जघन्य-युक्त-असंख्यात (अ यु ज) = $(अ प ज)^{अ प ज}$

मध्यम-युक्त-असंख्यात (अ यु म) है > अ यु ज, किन्तु < अ यु उ.

उत्कृष्ट-युक्त-असंख्यात (अ यु उ = अ अ ज − १.

जहां—

जघन्य-असंख्यातासंख्यात (अ अ ज) = $(\text{अ यु ज})^2$

मध्यम-असंख्यातासंख्यात (अ अ म) है > अ अ ज, किन्तु < अ अ उ.

उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात (अ अ उ) = अ प ज − १.

जहां—

न प ज जघन्य-परीत-अनन्तका बोधक है।

अनन्त— अनन्त श्रेणीकी संख्याएं निम्न प्रकार हैं—

जघन्य-परीत-अनन्त(न प ज) निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$\text{क} = \left[\left\{(\text{अअज})^{(\text{अअज})}\right\}^{\left\{(\text{अअज})^{(\text{अअज})}\right\}}\right]^{\left[\left\{(\text{अअज})^{(\text{अअज})}\right\}^{\left\{(\text{अअज})^{(\text{अअज})}\right\}}\right]}$$

मानलो ख = क + छह द्रव्य[1]

मानलो ग = $\left\{(\text{ख}^{\text{ख}})^{\text{ख}^{\text{ख}}}\right\}^{\left\{(\text{ख}^{\text{ख}})^{\text{ख}^{\text{ख}}}\right\}}$ + ४ राशियां[2]

तब—

जघन्य-परीत-अनन्त (न प ज) = $\left\{(\text{ग}^{\text{ग}})^{\text{ग}^{\text{ग}}}\right\}^{\left\{(\text{ग}^{\text{ग}})^{\text{ग}^{\text{ग}}}\right\}}$

मध्यम-परीत-अनन्त (न प म) है > न प ज, किंतु < न प उ

उत्कृष्ट-परीत-अनन्त (न प उ) = न यु ज − १,

---

१ छह द्रव्य ये हैं- (१) धर्म, (२) अधर्म, (३) एक जीव, (४) लोकाकाश, (५) अप्रतिष्ठित (वनस्पति जीव), और (६) प्रतिष्ठित (वनस्पति जीव).

२ चार समुदाय ये हैं- (१) एक कल्पकालके समय, (२) लोकाकाशके प्रदेश, (३) अनुभागबंध-अध्यवसायस्थान, और (४) योगके अविभाग-प्रतिच्छेद.

जहां—

जघन्य युक्त-अनन्त (न यु ज) = $(\text{अ प ज})^{(\text{अ प ज})}$

मध्यम-युक्त-अनन्त (न यु म) है > न यु ज, किंतु < न यु उ

उत्कृष्ट-युक्त-अनन्त (न यु उ) = न न ज − १

जहां—

जघन्य-अनन्तानन्त (न न ज) = $(\text{न यु ज})^2$

मध्यम-अनन्तानन्त (न न म) > है न न ज, किंतु < न न उ

जहां—

न न उ उत्कृष्ट अनन्तानन्तके लिये प्रयुक्त है, जो कि नेमिचंद्रके अनुसार निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$\text{क्ष} = \left[\left\{ (\text{ननज})^{\text{ननज}} \right\}^{\left\{ (\text{ननज})^{\text{ननज}} \right\}} \right]^{\left[\left\{ (\text{ननज})^{\text{ननज}} \right\}^{\left\{ (\text{ननज})^{\text{ननज}} \right\}} \right]} + \text{छह राशियां}$$[1]

$$\text{त्र} = \left\{ (\text{क्ष}^{\text{क्ष}})^{\text{क्ष}^{\text{क्ष}}} \right\}^{\left\{ (\text{क्ष}^{\text{क्ष}})^{\text{क्ष}^{\text{क्ष}}} \right\}} + \text{दो राशियां}$$[2]

$$\text{ज्ञ} = \left\{ (\text{त्र}^{\text{त्र}})^{\text{त्र}^{\text{त्र}}} \right\}^{\left\{ (\text{त्र}^{\text{त्र}})^{\text{त्र}^{\text{त्र}}} \right\}}$$

अब, केवलज्ञान राशि ज्ञ से भी बड़ी है और—

न न उ = केवलज्ञान − ज्ञ + ज्ञ = केवलज्ञान.

पर्यालोचन— उपर्युक्त विवरणका यह निष्कर्ष निकलता है—

(१) जघन्य-परीत-अनन्त (न प ज) अनन्त नहीं होता जबतक उसमें प्रक्षिप्त किये गये छह द्रव्यों या चार राशियोंमेंसे एक या अधिक अनन्त न मान लिये जायं।

---

१ छह राशियां ये हैं– [१) सिद्ध, (२) साधारण वनस्पति निगोद, (३) वनस्पति, (४) पुद्गल, (५) व्यवहारकाल और (६) अलोकाकाश.

२ ये दो राशियां हैं– (१) धर्मद्रव्य, (२) अधर्मद्रव्य, (इन दोनोंके अगुरुलघु गुणके अविभाग-प्रतिच्छेद)

(२) उत्कृष्ट-अनन्त-अनन्त (न न उ) केवलज्ञानराशिके समप्रमाण है। उपर्युक्त विवरणसे यह अभिप्राय निकलता है कि उत्कृष्ट अनन्तानन्त अंकगणितकी किसी प्रक्रियाद्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, चाहे वह प्रक्रिया कितनी ही दूर क्यों न ले जाई जाय। यथार्थतः वह अंकगणितद्वारा प्राप्त ज्ञ की किसी भी संख्यासे अधिक ही रहेगा। अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केवलज्ञान अनन्त है, और इसीलिये उत्कृष्ट-अनन्तानन्त भी अनन्त है।

इस प्रकार त्रिलोकसारान्तर्गत विवरण हमें कुछ संशयमें ही छोड़ देता है कि परीतानन्त और युक्तानन्तके तीन तीन प्रकार तथा जघन्य अनन्तानन्त सचमुच अनन्त है या नहीं, क्योंकि ये सब असंख्यातके ही गुणनफल कहे गये हैं, और जो राशियां उनमें जोड़ी गई हैं वे भी असंख्यातमात्र ही हैं। किन्तु धवलाका अनन्त सचमुच अनन्त ही है, क्योंकि यहां यह स्पष्टतः कह दिया गया है कि 'व्यय होनेसे जो राशि नष्ट हो वह अनन्त नहीं कही जा सकती'[1]। धवलामें यह भी कह दिया गया है कि अनन्तानन्तसे सर्वत्र तात्पर्य मध्यम-अनन्तानन्तसे है। अतः धवलानुसार मध्यम-अनन्तानन्त अनन्त ही है। धवलामें उल्लिखित दो राशियोंके मिलानकी निम्न रीति बड़ी रोचक है[2]—

एक ओर गतकालकी समस्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी अर्थात् कल्पकालके समयोंको (time-instants) स्थापित करो। (इनमें अनादि-सातत्य होनेसे अनन्तत्व है ही।) दूसरी ओर मिथ्यादृष्टि जीवराशि रक्खो। अब दोनों राशियोंमेंसे एक एक रूप बराबर उठा-उठा कर फेकते जाओ। इस प्रकार करते जानेसे कालराशि नष्ट हो जाती है, किन्तु जीवराशिका अपहार नहीं होता[3]। धवलामें इस प्रकारसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मिथ्यादृष्टि राशि अतीत कल्पोंके समयोंसे अधिक है।

यह उपर्युक्त रीति और कुछ नहीं केवल एकसे-एककी संगति (one-to-one correspondence) का प्रकार है जो आधुनिक अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinals) का मूलाधार है। यह कहा सकता है कि वह रीति परिमित गणनांकोंके मिलानमें भी उपयुक्त होती है, और इसीलिये उसका आलम्बन दो बड़ी परिमित राशियोंके मिलानके लिये लिया गया था— इतनी बड़ी राशियां जिनके अंगों (elements)

---

१ 'संते वए णट्ठंतस्स अणंतत्तविरोहादो'। ध. ३, पृ. २५.

२ धवला ३, पृ. २८.

३ 'अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण'। ध. ३, पृ. २८ सूत्र ३. देखो टीका, पृ. २८. 'कधं कालेण मिणिज्जंते मिच्छाइट्ठी जीवा'? आदि।

की गणना किसी संख्यात्मक संज्ञा द्वारा नहीं की जा सकी। यह दृष्टिकोण इस बातसे और भी पुष्ट होता है कि जैन-ग्रंथोंमें समयके अध्वानका भी निश्चय कर दिया गया है, और इसलिये एक कल्प (अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी) के कालप्रदेश परिमित ही होना चाहिये, क्योंकि, कल्प स्वयं कोई अनन्त कालमान नहीं है। इस अन्तिम मतके अनुसार जघन्य-परीत-अनन्त, जो कि परिभाषानुसार कल्पके कालप्रदेशोंकी राशिसे अधिक है, परिमित ही है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एकसे-एककी संगतिकी रीति अनन्त गणनांकोंके अध्ययनके लिये सबसे प्रबल साधन सिद्ध हुई है, और उस सिद्धान्तके अन्वेषण तथा सर्व-प्रथम प्रयोगका श्रेय जैनियोंको ही है।

संख्याओंके उपर्युक्त वर्गीकरणमें मुझे अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्तको विकसित करनेका प्राथमिक प्रयत्न दिखाई देता है। किन्तु इस सिद्धान्तमें कुछ गंभीर दोष हैं। ये दोष विरोध उत्पन्न करेंगे। इनमेंसे एक स – १ की संख्याकी कल्पनाका है, जहां स अनन्त है और एक वर्गकी सीमाका नियामक है। इसके विपरीत जैनियोंका यह सिद्धान्त कि एक संख्या स का वर्गित-संवर्गित रूप अर्थात् $स^{स}$ एक नवीन संख्या उत्पन्न कर देता है, युक्तपूर्ण है। यदि यह सच हो कि प्राचीन जैन साहित्यका उत्कृष्ट-असंख्यात अनन्तसे मेल खाता है, तो अनन्तकी संख्याओंकी उत्पत्तिमें आधुनिक अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinals) का कुछ सीमा तक पूर्वनिरूपण हो गया है। गणितशास्त्रीय विकासके उतने प्राचीन काल और उस प्रारम्भिक स्थितिमें इस प्रकारके किसी भी प्रयत्नकी असफलता अवश्यंभावी थी। आश्चर्य तो यह है कि ऐसा प्रयत्न किया गया था।

अनन्तके अनेक प्रकारोंकी सत्ताको जार्ज केन्टरने उन्नीसवीं शताब्दिके मध्यकालके लगभग प्रयोग-सिद्ध करके दिखाया था। उन्होंने सीमातीत (transfinite) संख्याओंका सिद्धांत स्थापित किया। अनन्त राशियोंके क्षेत्र (domain) के विषयमें कैन्टरके अन्वेषणोंसे गणितशास्त्रके लिये एक पुष्ट आधार, खोजके लिये एक प्रबल साधन और गणितसंबंधी अत्यन्त गूढ विचारोंको ठीक रूपसे व्यक्त करनेके लिये एक भाषा मिल गई है। तो भी यह सीमातीत संख्याओंका सिद्धांत अभी अपनी प्राथमिक अवस्थामें ही है। अभी तक इन संख्याओंका कलन (Calculus) प्राप्त नहीं हो पाया है, और इसलिये हम उन्हें अभी तक प्रबलतासे गणितशास्त्रीय विश्लेषणमें नहीं उतार सके हैं।

शब्द-सूची



'धवलाका गणितशास्त्र' शीर्षक लेखमें जो गणितसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष हिन्दी शब्दोंका उपयोग किया गया है उनके समरूप अंग्रेजी शब्द निम्न प्रकार हैं—

अनन्त–Infinite.

अनन्त गणनांक सिद्धान्त–Theory of infinite cardinals.

अनुताप–Proportion.

अर्धक्रम–Operation of mediation.

अर्धच्छेद–Number of times a number is halved; mediation; logarithm.

असंख्यात–Innumerable.

असाम्यता–Inequality.

अंक–Notational place.

अंकगणित–Arithmetic.

अंग–Element.

आधार–Base (of logarithm).

आविष्कार–Discovery; invention.

उत्तरोत्तर–Successive.

एकदिशात्मक–One directional.

एकसे-एककी संगति–One-to-one correspondence.

कला–Art.

कालप्रदेश–Time-instant.

कुट्टक–Indeterminte equation.

केन्द्रवर्ती वृत्त–Initial circle; central core.

क्रिया–Operation.

क्षेत्रप्रदेश–Locations; points or places.

क्षेत्रमिति–Mensuration.

गणित, °शास्त्र–Mathematics.

गणितज्ञ–Mathematician.

गुणा–Multiplication.

घनमूल–Cube root.

घात निकालना, °करना–Raising of numbers to given powers.

घातांक–Powers.

घातांक सिद्धान्त–Theory of indices.

चतुर्थच्छेद–Number of times that a number can be divided by 4.

चिह्न–Trace.

जोड़–Addition.

ज्योतिषविद्या–Astronomy.

टिप्पणी–Notes.

त्रिकच्छेद–Number of times th... ...ber can be divided by 3.

त्रिज्या–Radius.

त्रैराशिक–Rule of three.

दशमान–Scale of ten.

दाशमिकक्रम–Decimal place-value notation.

द्विगुणक्रम–Operation of duplation.

द्विविस्तारात्मक–Two-dimensional; superficial.

निगूढतर्क–Abstract reasoning.

नियम–Rule.

पद्धति–Method.

परिणाम–Result.

परिमाण–Magnitude.

परिमाणहीन–Dimensionless.

परिमित गणनांक–Finite cardinals.

पूर्णांक–Integer.
प्रक्रिया–Process; operation.
प्रतरात्मक अनन्त आकाश–Infinite plane area.
प्रश्न–Problem.
प्राथमिक–Elementary; primitive.
बाकी–Subtraction.
बीजगणित–Algebra.
बेलनाकार–Cylindrical.
भाग–Division.
भाजक–Divisor.
भिन्न–Fraction.
मूल, °मौलिक प्रक्रिया–Fundamental operation.
राशि–Aggregate.
रूढ संख्या–Prime.
रूपरेखा–General outline.
लघुरिक्थ–Logarithm.
लब्ध–Quotient.
वर्ग–Square.
वर्गमूल–Square root.
वर्गशलाका–Logarithm of logarithm.
वर्गसमीकरण–Quadratic equation.
वर्गित-संवर्गित–Raising a number to its own power (संख्यातुल्य घात).
वलय–Ring
विकलन–Distribution.
विज्ञान–Science.
विद्युत्कण–Protons and electrons.
विनिमय–Barter and exchange.
विरलन–Distribution; spreading.
विरलन-देय–Spread and give.
विश्लेषण–Analysis
विस्तार–Details.
वृत्त–Circle.
व्याज–Interest.
व्यास–Diameter.
शंकाकार शिखा–Super-incumbent cone.
शाखा–School.
श्रेणीबद्ध करना–Classify.
समकेन्द्रीय–Concentric.
सरल समीकरण–Simple equation.
संकेत–Symbol, notation.
संकेतक्रम–Scale of notation.
संख्या–Number.
संख्यात–Numberable.
संख्यातुल्य घात–Raising of a number to its own power.
सातत्य–Continuum.
साधारणीकृत–Generalised.
सीमा–Boundary.
सीमातीत संख्या–Transfinite number.
सूत्र–Formula.

२ कन्नड प्रशस्ति

अन्तर-प्ररूपणाके पश्चात् और भाव-प्ररूपणासे पूर्व प्रतियोंमें दो कन्नड पद्योंकी प्रशस्ति पाई जाती है जो इस प्रकार है—

पोडवियोळु मल्लिदेवन
पडेदर्थवदर्थिजनकवाश्रितजनकं ।
पडेदोडमेयादुदिन्नी
पडेवळनौदार्यदोलवने बण्णिपुदो ॥

कडुचोद्यवन्नदानं
बेडंगुवडेदेसेव जिनगृहगळुवं ता ।
नेडेवरियदे माडिसुवं
पडेवळनी मल्लिदेवनेंब विधात्रं ॥

ये दोनों पद्य कन्नड भाषाके कंदवृत्तमें हैं । इनका अनुवाद इस प्रकार है—

" इस संसारमें मल्लिदेव द्वारा उपार्जित धन अर्थी और आश्रित जनोंकी सम्पत्ति हो गया। अब सेनापतिकी उदारताका यथार्थ वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है?"

" उनका अन्नदान बड़ा आश्चर्यजनक है । ये सेनापति मल्लिदेव नामके विधाता विना किसी स्थानके भेदभावके सुन्दर और महान् जिनगृह निर्माण करा रहे हैं । "

इन पद्योंमें मल्लिदेव नामके एक सेनापतिके दान-धर्मकी प्रशंसा की गई है । उनके विषयमें यहां केवल इतना ही कहा गया है कि वे बड़े दानशील और अनेक जैन मन्दिरोंके निर्माता थे । तेरहवीं शताब्दिके प्रारंभमें मल्लिदेव नामके एक सिन्द-नरेश हुए हैं । उनके एचण नामके मंत्री थे जो जैनधर्म पालते थे और उन्होंने अनेक जैन मन्दिरोंका निर्माण भी कराया था । उनकी पत्नीका नाम सोविलदेवी था । (ए. क. ७, लेख नं. ३१७, ३२० और ३२१).

कर्नाटकके लेखोंमें तेरहवीं शताब्दिके एक मल्लिदेवका भी उल्लेख मिलता है जो होय्सलनरेश नरसिंह तृतीयके सेनापति थे । किन्तु इनके विषयमें यह निश्चय नहीं है कि वे जैनधर्मावलम्बी थे या नहीं । श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं. १३० (३३५) में भी एक मल्लिदेवका उल्लेख आया है जो होय्सलनरेश वीरबल्लालके पट्टणस्वामी व सचिव नागदेव और उनकी भार्या चन्दव्वे (मल्लिसेट्टिकी पुत्री) के पुत्र थे । नागदेव जैनधर्मावलम्बी थे

इसमें कोई संदेह नहीं, क्योंकि, उक्त लेखमें वे नयकीर्ति सिद्धान्तचक्रवर्तीके पदभक्त शिष्य कहे गये हैं और उन्होंने नगराजिनालय तथा कमठपार्श्वदेव बस्तिके सन्मुख शिलाकुट्टम और रंगशाला निर्माण कराई थी तथा नगर जिनालयको कुछ भूमिका दान भी किया था। मल्लिदेवकी प्रशंसामें इस लेखमें जो एक पद्य आया है वह इस प्रकार है—

परमानन्ददिनेन्तु नाकपतिगं पौलोमिगं पुट्टिदों
वरसौन्दर्य्यजयन्तनन्ते तुहिन-क्षीरोद-कल्लोल भा-
सुरकीर्त्तिप्रियनागदेवविभुगं चन्दव्वेगं पुट्टिदों
स्थिरनीपट्टणसामिविश्वविनुतं श्रीमल्लिदेवाह्वयं ॥ १० ॥

अर्थात् ‘जिस प्रकार इन्द्र और पौलोमी (इन्द्राणी) के परमानन्द पूर्वक सुंदर जयन्तकी उत्पत्ति हुई थी, उसी प्रकार तुहिन (बर्फ) तथा क्षीरोदधिकी कल्लोलोंके समान भास्वर कीर्तिके प्रेमी नागदेव विभु और चन्दव्वेसे इन स्थिरबुद्धि विश्वविनुत पट्टणस्वामी मल्लिदेवकी उत्पत्ति हुई।” इससे आगेके पद्यमें कहा गया है कि वे नागदेव क्षितितलपर शोभायमान हैं जिनके बम्मदेव और जोगव्वे माता-पिता तथा पट्टणस्वामी मल्लिदेव पुत्र हैं। यह लेख शक सं. १११८ (ईस्वी ११९६) का है, अतः यही काल पट्टणस्वामी मल्लिदेवका पड़ता है। अभी निश्चयतः तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु संभव है कि यही मल्लिदेव हों जिनकी प्रशंसा धवला प्रतिके उपर्युक्त दो पद्योंमें की गई है।

३ शंका-समाधान

पुस्तक ४, पृष्ठ ३८

१ शंका—पृष्ठ ३८ पर लिखा है– ‘मिच्छाइट्ठिस्स सेस-तिण्णि विसेसणाणि ण संभवंति, तक्कारणसंजमादिगुणाणमभावादो’ यानी तैजससमुद्घात प्रमत्तगुणस्थान पर ही होता है, सो इसमें कुछ शंका होती है। क्या अशुभ तैजस भी इसी गुणस्थान पर होता है? प्रमत्तगुणस्थान पर ऐसी तीव्र कषाय होना कि सर्वस्व भस्म कर दे और स्वयं भी उससे भस्म हो जाय और नरक तक चला जाय, ऐसा कुछ समझमें नहीं आता?

समाधान— मिथ्यादृष्टिके शेष तीन विशेषण अर्थात् आहारकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और केवलिसमुद्घात संभव नहीं हैं, क्योंकि, इनके कारणभूत संयमादि गुणोंका मिथ्यादृष्टिके अभाव है। इस पंक्तिका अर्थ स्पष्ट है कि जिन संयमादि विशिष्ट गुणोंके निमित्तसे आहारकऋद्धि

आदिकी प्राप्ति होती हैं, वे गुण मिथ्यादृष्टि जीवके संभव नहीं हैं। शंकाकारके द्वारा उठाई गई आपत्तिका परिहार यह है कि तैजसशक्तिकी प्राप्तिके लिये भी उस संयम-विशेषकी आवश्यकता है जो कि मिथ्यादृष्टि जीवके हो नहीं सकता। किन्तु अशुभतैजसका उपयोग प्रमत्तसंयत साधु नहीं करते। जो करते हैं, उन्हें उस समय भावलिंगी साधु नहीं, किन्तु द्रव्यलिंगी समझना चाहिए।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४५

२ **शंका**— विदेहमें संयतराशिका उत्सेध ५०० धनुष लिखा है, सो क्या यह विशेषताकी अपेक्षासे कथन है, या सर्वथा नियम ही है? (नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान— विदेहमें संयतराशिका ही उत्सेध नहीं, किन्तु वहां उत्पन्न होनेवाले मनुष्यमात्रका उत्सेध पांचसौ धनुष होता है, ऐसा सर्वथा नियम ही है जैसा कि उसी चतुर्थ भागके पृ. ४५ पर आई हुई " एदाओ दो वि ओगाहणाओ भरह-इरावएसु चेव होंति ण विदेहेसु, तत्थ पंचधणुस्सदुस्सेधणियमा " इस तीसरी पंक्तिसे स्पष्ट है। उसी पंक्ति पर तिलोयपण्णत्तीसे दी गई टिप्पणीसे भी उक्त नियमकी पुष्टि होती है। विशेषके लिए देखो तिलोयपण्णत्ती, अधिकार ४, गाथा २२५५ आदि।

पुस्तक ४, पृष्ठ ७६

३ **शंका**— पृष्ठ ७६ में मूलमें 'मारणंतिय' के पहलेका 'मुक्क' शब्द अभी विचारणीय प्रतीत होता है? (जैनसन्देश, ता. २३-४-४२)

समाधान—मूलमें 'मुक्कमारणंतियरासी' पाठ आया है, जिसका अर्थ— " किया है मारणान्तिकसमुद्घात जिन्होंने " ऐसा किया है। प्रकरणको देखते हुए यही अर्थ समुचित प्रतीत होता है, जिसकी कि पुष्टि गो. जी. गा. ५४४ (पृ. ९५२) की टीकामें आए हुए 'क्रियमाण-मारणान्तिकदंडस्य'; 'तिर्यग्जीवमुक्तोपपाददंडस्य', तथा, ५४७ वीं गाथाकी टीकामें (पृ. ५६७) आये हुए 'अष्टमपृथ्वीसंबंधिबादरपर्याप्तपृथ्वीकायेषु उप्पत्तुं मुक्ततत्समुद्घातदंडानां' आदि पाठोंसे भी होती है। ध्यान देनेकी बात यह है कि द्वितीय व तृतीय उद्धरणमें जिस अर्थमें 'मुक्त' शब्दका प्रयोग हुआ है, प्रथम अवतरणमें उसी अर्थमें 'क्रियमाण' शब्दका उपयोग हुआ है और यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि प्राकृत 'मुक्क' शब्दकी संस्कृतच्छाया 'मुक्त' ही होती है। पंडित टोडरमलजीने भी उक्त स्थलपर 'मुक्त' शब्दका यही अर्थ किया है। इस प्रकार 'मुक्क' शब्दके किये गये अर्थमें कोई शंका नहीं रह जाती है।

पुस्तक ४, पृष्ठ १००

४ शंका— पृ १०० पर मूल पाठमें कुछ पाठ छूटा हुआ प्रतीत होता है ?

(जैनसन्देश ३०-४-४२)

समाधान—शंकाकारने यद्यपि पृष्ठका नाममात्र ही दिया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि उक्त पेजपर २४ वें सूत्रकी व्याख्यामें पाठ छूटा हुआ उन्हें प्रतीत हुआ या २५ वें सूत्रकी व्याख्यामें। जहां तक हमारा अनुमान जाता है २४ वें सूत्रकी व्याख्यामें 'बादरवाउ-अपज्जत्तेसु अंतब्भावादो' के पूर्व कुछ पाठ उन्हें स्खलित जान पड़ा है। पर न तो उक्त स्थलपर काममें ली जानेवाली तीनों प्रतियोंमें ही तदतिरिक्त कोई नवीन पाठ हैं, और न मूडबिद्रीसे ही कोई संशोधन आया है। फिर मौजूदा पंक्तिका अर्थ भी वहां बैठ जाता है।

पुस्तक ४, पृ. १३५

५ शंका—उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त अन्य उपशम-सम्यग्दृष्टि जीवोंके मरणका निषेध है, इससे यह ध्वनित होता है कि उपशमश्रेणीमें चढ़नेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं होता। परन्तु पृष्ठ ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर स्पष्टतासे चढ़ते हुए भी मरण लिखा है, सो क्या कारण है ?

(नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान—उक्त पृष्ठपर दी गई शंका–समाधानके अभिप्राय समझनेमें भ्रम हुआ है। यह शंका–समाधान केवल चतुर्थ गुणस्थानवर्ती उन उपशमसम्यग्दृष्टियोंके लिये है, जो कि उपशमश्रेणीसे उतरकर आये हैं। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि सर्वसाधारण उपशमसम्य-ग्दृष्टि असंयतोंका मरण नहीं होता है। अपवादरूप जिन उपशमसम्यग्दृष्टि असंयतोंका मरण होता है उन्हें श्रेणीसे उतरे हुए ही समझना चाहिए। आगे पृ. ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर जो श्रेणीपर चढ़ते या उतरते हुए मरण लिखा है, वह उपशामक-गुणस्थानोंकी अपेक्षा लिखा है, न कि असंयतगुणस्थानकी अपेक्षा।

पुस्तक ४, पृष्ठ १७४

६ शंका— पृष्ठ १७४ में 'एक्कम्हि इंदए सेढीबद्ध-पइण्णए च संट्ठिदगामागारबहुविधबिल-' का अर्थ— 'एक ही इन्द्रक, श्रेणीबद्ध या प्रकीर्णक नरकमें विद्यमान ग्राम, घर और बहुत प्रकारके बिलोंमें' किया है। क्या नरकमें भी ग्राम घर होते हैं ? बिले तो जरूर होते हैं। असलमें 'गामागार' का अर्थ 'ग्रामके आकारवाले अर्थात् गांवके समान बहुत प्रकारके बिलोंमें' ऐसा होना चाहिए ?

(जैनसन्देश, ता. २३-४-४२)

समाधान—सुझाया गया अर्थ भी माना जा सकता है, पर किया गया अर्थ गलत नहीं है, क्योंकि, घरोंके समुदायको ग्राम कहते हैं। समालोचकके कथनानुसार 'ग्रामके आकार-वाले अर्थात् गांवके समान' ऐसा भी 'गामागार' पदका अर्थ मान लिया जाय तो भी उन्हींके द्वारा उठाई गई शंका तो ज्यों की त्यों ही खड़ी रहती है, क्योंकि, ग्रामके आकारवालोंको ग्राम कहनेमें कोई असंगति नहीं है। इसलिए इस सुझाए गए अर्थमें कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

पुस्तक ४, पृ. १८०

७ **शंका**—पृ. १८० में मूलमें एक पंक्तिमें 'व' और 'ण' ये दो शब्द जोड़े गये हैं। किन्तु ऐसा माल्रम होता है कि 'घणरज्जु' में जो 'घण' शब्द है वह अधिक है और लेख-कोंकी करामातसे 'व ण' का 'घण' हो गया है? (जैनसन्देश ता. २३-४-४२)

समाधान—प्रस्तुत पाठके संशोधन करते समय हमें उपलब्ध पाठमें अर्थकी दृष्टिसे 'व ण' पाठका स्खलन प्रतीत हुआ। अतएव हमने उपलब्ध पाठकी रक्षा करते हुए हमारे नियमानुसार 'व' और 'ण' को यथास्थान कोष्ठकके अन्दर रख दिया। शंकाकारकी दृष्टि इसी संशोधनके आधारसे उक्त पाठपर अटकी और उन्होंने 'व ण' पाठकी वहां आवश्यकता अनुभव की। इससे हमारी कल्पनाकी पूरी पुष्टि होगई। अब यदि 'व ण' पाठ की पूर्ति उपलब्ध पाठके 'घण' को 'व ण' बनाकर कर ली जाय तो भी अर्थका निर्वाह हो जाता है और किये गये अर्थमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। बात इतनी है कि ऐसा पाठ उपलब्ध प्रतियोंमें नहीं मिलता और न मूडबिद्रीसे कोई सुधार प्राप्त हुआ।

पुस्तक ४, पृ. २४०

८ **शंका**—पृ. २४० में ५७ वें सूत्रके अर्थमें एकेन्द्रियपर्याप्त एकेन्द्रियअपर्याप्त भेद गलत किये हैं, ये नहीं होना चाहिए; क्योंकि, इस सूत्रकी व्याख्यामें इनका उल्लेख नहीं है? (जैनसन्देश, ता. ३०-४-४२)

समाधान—यद्यपि यहां व्याख्यामें उक्त भेदोंका कोई उल्लेख नहीं है, तथापि द्रव्य-प्रमाणानुगम (भाग ३, पृ. ३०५) में इन्हीं शब्दोंसे रचित सूत्र नं. ७४ की टीकामें धवला-कारने उन भेदोंका स्पष्ट उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है— "एइंदिया बादरेइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता च एदे णव वि रासीओ......"। धवलाकारके इसी स्पष्टीकरणको ध्यानमें रखकर प्रस्तुत स्थल पर भी नौ भेद गिनाये गये हैं। तथा उन भेदोंके यहां ग्रहण करने पर कोई दोष भी नहीं दिखता। अतएव जो अर्थ किया गया है वह सप्रमाण और शुद्ध है।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३१३

९ शंका— पृ. ३१३ में– 'स-परप्पयासमयपमाणपडिवादीण-' पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है, इसके स्थानमें यदि 'सपरप्पयासयमणिपमाणपईवादीण-' पाठ हो तो अर्थकी संगति ठीक बैठ जाती है ? (जैनसन्देश, ३०-४-४२)

समाधान— प्रस्तुत स्थलपर उपलब्ध तीनों प्रतियोंमें जो विभिन्न पाठ प्राप्त हुए और मूडबिद्रीसे जो पाठ प्राप्त हुआ उन सबका उल्लेख वहीं टिप्पणीमें दे दिया गया है। उनमें अधिक हेर-फेर करना हमने उचित नहीं समझा और यथाशक्ति उपलब्ध पाठोंपरसे ही अर्थकी संगति बैठा दी। यदि पाठ बदलकर और अधिक सुसंगत अर्थ निकालना ही अभीष्ट हो तो उक्त पाठको इस प्रकार रखना अधिक सुसंगत होगा– स-परप्पयासयपमाण-पईवादीणमुवलंभा। इस पाठके अनुसार अर्थ इस प्रकार होगा– "क्योंकि स्व-परप्रकाशक प्रमाण व प्रदीपादिक पाये पाये जाते हैं (इसलिये शब्दके भी स्वप्रतिपादकता बन जाती है)"।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५०

१० शंका—धवलराज खंड ४, पृष्ठ ३५०, ३६६ पर सम्मूर्च्छन जीवके सम्यग्दर्शन होना लिखा है। परन्तु लब्धिसार गाथा २ में सम्यग्दर्शनकी योग्यता गर्भजके लिखी है, सो इसमें विरोधसा प्रतीत होता है, खुलासा करिए। (नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र १६-३-४२)

समाधान—लब्धिसार गाथा दूसरीमें जो गर्भजका उल्लेख है, वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिकी अपेक्षासे है। किन्तु यहां उपर्युक्त पृष्ठोंमें जो सम्मूर्च्छिम जीवके संयमासंयम पानेका निरूपण है, उसमें प्रथमोशमसम्यक्त्वका उल्लेख नहीं है, जिससे ज्ञात होता है कि यहां वह कथन वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षासे किया गया है। अतएव दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं समझना चाहिए।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५३

११ शंका—आपने अपूर्वकरण उपशामकको मरण करके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होना लिखा है, जब कि मूलमें 'उत्तमो देवो' पाठ है। क्या उपशमश्रेणीमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तरमें ही जाते हैं ? क्या प्रमत्त और अप्रमत्तवाले भी सर्वार्थसिद्धिमें जा सकते हैं ?

(नानकचंद्र जैन खतौली, पत्र ता. १–४–३२)

समाधान—इस शंकामें तीन शंकायें गर्भित हैं जिनका समाधान क्रमशः इस प्रकार है–

(१) मूलमें 'उत्तमा देवो' पाठ नहीं, किन्तु 'लवसत्तमो देवो' पाठ है। लवसत्तमका अर्थ अनुत्तर विमानवासी देव होता है। यथा—लवसत्तम-लवसत्तम—पुं०। पंचानुत्तरविमानस्थ-

देवेसु । सूत्र० १ श्रु. ६ अ. । सम्प्रति लवसत्तमदेवस्वरूपमाह—

सत्त लवा जइ आउं पहुं पमाणं ततो उ सिज्झंतो ।
तत्तियमेत्तं न हु तं तो ते लवसत्तमा जाया ॥ १३२ ॥
सव्वट्ठसिद्धिनामे उक्कोसठिई य विजयमादीसु ।
एगावसेसगब्भा भवंति लवसत्तमा देवा ॥ १३३ ॥ व्य. ५ उ.

अभिधानराजेन्द्र, लवसत्तमशब्द.

(२) उपशमश्रेणीमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तर विमानोंमें ही जाते हैं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी निम्न गाथासे ऐसा अवश्य ज्ञात होता है कि चतुर्दशपूर्वधारी जीव लान्तव-कापिष्ठ कल्पसे लगाकर सर्वार्थसिद्धिपर्यंत उत्पन्न होते हैं । चूंकि 'शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः' के नियमानुसार उपशमश्रेणीवाले भी जीव पूर्ववित् हो जाते हैं, अतएव उनकी लान्तवकल्पसे ऊपर ही उत्पत्ति होती है नीचे नहीं, ऐसा अवश्य कहा जा सकता है । वह गाथा इस प्रकार है—

दसपुव्वधरा सोहम्मप्पहुदि सव्वट्ठसिद्धिपरियंतं
चोद्दसपुव्वधरा तह लंतवकप्पादि वच्चंते ॥ ति. प. पत्र २३७, १६.

(३) उपशमश्रेणीपर नहीं चढ़नेवाले, पमत्त अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें ही परिवर्तन-सहस्रोंको करनेवाले साधु सर्वार्थसिद्धिमें नहीं जा सकते हैं, ऐसा स्पष्ट उल्लेख देखनेमें नहीं आया । प्रत्युत इसके त्रिलोकसार गाथा नं. ५४६ के 'सव्वट्ठो त्ति सुदिट्ठी महव्वई' पदसे द्रव्य-भावरूपसे महाव्रती संयतोंका सर्वार्थसिद्धि तक जानेका स्पष्ट विधान मिलता है ।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४११

१२ शंका—योग-परिवर्तन और व्याघात-परिवर्तनमें क्या अन्तर है ?

(नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान—विवक्षित योगका अन्य किसी व्याघातके विना काल-क्षय हो जाने पर अन्य योगके परिणमनको योग-परिवर्तन कहते हैं । किन्तु विवक्षित योगका कालक्षय होनेके पूर्व ही क्रोधादि निमित्तसे योग-परिवर्तनको व्याघात कहते हैं । जैसे— कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान है । जब अन्तर्मुहूर्तप्रमाण मनोयोगका काल पूरा हो गया तब वह वचनयोगी या काययोगी हो गया । यह योग-परिवर्तन है । इसी जीवके मनोयोगका काल पूरा होनेके पूर्व ही कषाय, उपद्रव, उपसर्ग आदिके निमित्तसे मन चंचल हो उठा और वह वचनयोगी या काययोगी हो गया, तो यह योगका परिवर्तन व्याघातकी अपेक्षासे हुआ । योग-परिवर्तनमें काल प्रधान है, जब कि व्याघात-परिवर्तनमें कषाय आदिका आघात प्रधान है । यही दोनोंमें अन्तर है ।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४५६

१३ शंका— पृष्ठ ४५६ में 'अण्णलेस्सागमणासंभवा' का अर्थ 'अन्य लेश्याका आगमन असंभव है' किया है, होना चाहिए— अन्य लेश्यामें गमन असंभव है ?

(जैनसन्देश, ता. ३०-४-४२)

समाधान— किये गये अर्थमें और सुझाये गये अर्थमें कोई भेद नहीं है। 'अन्य लेश्याका आगमन' और 'अन्य लेश्यामें गमन' कहनेसे अर्थमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। मूलमें भी दोनों प्रकारके प्रयोग पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ— प्रस्तुत पाठके ऊपर ही वाक्य है— 'हीयमाण-वड्ढमाणकिण्हलेस्साए काउलेस्साए वा अच्छिदस्स णीललेस्सा आगदा' अर्थात् हीयमान कृष्ण-लेश्यामें अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीललेश्या आ गई, इत्यादि।

---

४ विषय-परिचय



जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमेंसे प्रथम पांच प्ररूपणाओंका वर्णन पूर्व-प्रकाशित चार भागोंमें किया गया है। अब प्रस्तुत भागमें अवशिष्ट तीन प्ररूपणाएं प्रकाशित की जा रही हैं— अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम।

१ अन्तरानुगम

विवक्षित गुणस्थानवर्ती जीवका उस गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें चले जाने पर पुनः उसी गुणस्थानकी प्राप्तिके पूर्व तकके कालको अन्तर, व्युच्छेद या विरहकाल कहते हैं। सबसे छोटे विरहकालको जघन्य अन्तर और सबसे बड़े विरहकालको उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं। गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें इन दोनों प्रकारोंके अन्तरोंके प्रतिपादन करनेवाले अनुयोगद्वारको अन्तरानुगम कहते हैं।

पूर्व प्ररूपणाओंके समान इस अन्तरप्ररूपणामें भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा अन्तरका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणा-स्थानसे कमसे कम कितने काल तक के लिए और अधिकसे अधिक कितने काल तक के लिए अन्तरको प्राप्त होता है।

उदाहरणार्थ—ओघकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें बताया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।

इसका अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्वपर्यायसे परिणत जीवोंका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाव नहीं है, अर्थात् इस संसारमें मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल पाये जाते हैं। किन्तु एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण है। यह जघन्य अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंकी विशुद्धिके निमित्तसे सम्यक्त्वको प्राप्तकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती हुआ। वह चतुर्थ गुणस्थानमें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रहकर संक्लेश आदि के निमित्तसे गिरा और मिथ्यात्वको प्राप्त होगया, अर्थात् पुनः मिथ्यादृष्टि होगया। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर पुनः उसी गुणस्थानमें आनेके पूर्व तक जो अन्तर्मुहूर्तकाल मिथ्यात्वपर्यायसे विरहित रहा, यही उस एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य अन्तर माना जायगा।

इसी एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ अर्थात् एक सौ बत्तीस (१३२) सागरोपम काल है। यह उत्कृष्ट अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि तिर्यंच अथवा मनुष्य चौदह सागरोपम आयुस्थितिवाले लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां वह एक सागरोपम कालके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तेरह सागरोपम काल वहां सम्यक्त्वके साथ रहकर च्युत हो मनुष्य होगया। उस मनुष्यभवमें संयमको, अथवा संयमासंयमको पालन कर बाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ। इस मनुष्यभवमें संयम धारण कर मरा और इकतीस सागरोपमकी आयुवाले उपरिम ग्रैवेयकके अहमिन्द्रोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो मनुष्य हुआ, और संयम धारण कर पुनः उक्त प्रकारसे वीस, बाईस और चौवीस सागरोपमकी आयुवाले देवों और अहमिन्द्रोंमें क्रमशः उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वह पूरे एक सौ बत्तीस (१३२) सागरोंतक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस तरह मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध होगया। उक्त विवेचनमें यह बात ध्यान रखनेकी है कि वह जीव जितने बार मनुष्य हुआ, उतने बार मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे कम ही देवायुको प्राप्त हुआ है, अन्यथा बतलाए गए कालसे अधिक अन्तर हो जायगा। कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम कहनेका अभिप्राय यह है कि वह जीव दो छ्यासठ सागरोपम कालके प्रारंभमें ही मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्त्वी बना और उसी दो छ्यासठ सागरोपमकालके अन्तमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इसलिए उतना काल उनमेंसे घटा दिया गया।

यहां ध्यान रखनेकी खास बात यह है कि काल-प्ररूपणामें जिन-जिन गुणस्थानोंका काल नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल बतलाया गया है, उन-उन गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है। किन्तु उनके सिवाय शेष सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी

तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर होता है । इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा कभी भी विरहको नहीं प्राप्त होनेवाले छह गुणस्थान हैं– १ मिथ्यादृष्टि, २ असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, ४ प्रमत्त-संयत, ५ अप्रमत्तसंयत और ६ सयोगिकेवली । इन गुणस्थानोंमें केवल एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाया गया है, जिसे ग्रन्थ-अध्ययनसे पाठक भली भांति जान सकेंगे ।

जिस प्रकार ओघसे अन्तरका निरूपण किया गया है, उसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी उन-उन मार्गणाओंमें संभव गुणस्थानोंका अन्तर जानना चाहिए । मार्गणाओंमें आठ सान्तरमार्गणाएं होती हैं, अर्थात् जिनका अन्तर होता है । जैसे– १ उपशमसम्यक्त्वमार्गणा, २ सूक्ष्मसाम्परायसंयममार्गणा, ३ आहारककाययोगमार्गणा, ४ आहारकमिश्रकाययोगमार्गणा, ५ वैक्रियिकमिश्रकाययोगमार्गणा, ६ लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यगतिमार्गणा, ७ सासादनसम्यक्त्वमार्गणा और सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणा । इन आठोंका उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमशः १ सात दिन, २ छह मास, ३ वर्षपृथक्त्व, ४ वर्षपृथक्त्व, ५ बारह मुहूर्त, और अन्तिम तीन सान्तर मार्गणाओंका अन्तरकाल पृथक् पृथक् पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । इन सब सान्तर मार्गणाओंका जघन्य अन्तरकाल एक समयप्रमाण ही है । इन सान्तर मार्गणाओंके अतिरिक्त शेष सब मार्गणाएं नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर-रहित हैं, यह ग्रन्थके स्वाध्यायसे सरलतापूर्वक हृदयंगम किया जा सकेगा ।

२ भावानुगम

कर्मोंके उपशम, क्षय आदिके निमित्तसे जीवके जो परिणामविशेष होते हैं, उन्हें भाव कहते हैं । वे भाव पांच प्रकारके होते हैं– १ औदयिकभाव, २ औपशमिकभाव, ३ क्षायिक-भाव, ४ क्षायोपशमिकभाव और पारिणामिकभाव । कर्मोंके उदयसे होनेवाले भावोंको औद-यिक भाव कहते हैं । इसके इक्कीस भेद हैं– चार गतियां (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति), तीन लिंग (स्त्री, पुरुष, और नपुंसकलिंग), चार कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ), मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, छह लेश्याएं (कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्लेश्या), तथा असंयम । मोहनीयकर्मके उपशमसे (क्योंकि, शेष सात कर्मोंका उपशम नहीं होता है) उत्पन्न होनेवाले भावोंको औपशमिक भाव कहते हैं । इसके दो भेद हैं– १ औपश-मिकसम्यक्त्व और २ औपशमिकचारित्र । कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावोंको क्षायिकभाव कहते हैं । इसके नौ भेद हैं — १ क्षायिकसम्यक्त्व, २ क्षायिकचारित्र, ३ क्षायिकज्ञान, ४ क्षायिकदर्शन, ५ क्षायिकदान, ६ क्षायिकलाभ, ७ क्षायिकभोग, ८ क्षायिकउपभोग और ९ क्षायिकवीर्य । कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाले भावोंको क्षायोपशमिकभाव कहते हैं । इसके अट्ठारह भेद हैं– चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान), तीन अज्ञान

(कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि), तीन दर्शन (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन), पांच लब्धियां (क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य), क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र और संयमासंयम। इन पूर्वोक्त चारों भावोंसे विभिन्न, कर्मोंके उदय, उपशम आदिकी अपेक्षा न रखते हुए स्वतः उत्पन्न भावोंको परिणामिकभाव कहते हैं। इसके तीन भेद हैं– १ जीवत्व, २ भव्यत्व और ३ अभव्यत्व।

इन उपर्युक्त भावोंके अनुगमको भावानुगम कहते हैं। इस अनुयोगद्वारमें भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा भावोंका विवेचन किया गया हैं। ओघनिर्देशकी अपेक्षा प्रश्न किया गया है कि 'मिथ्यादृष्टि' यह कौनसा भाव है? इसके उत्तरमें कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, क्योंकि, जीवोंके मिथ्या दृष्टि मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होती है। यहां यह शंका उठाई गई है कि, जब मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्वभावके अतिरिक्त ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कषाय भव्यत्व आदि और भी भाव होते हैं, तब यहां केवल एक औदयिकभावको ही बतानेका क्या कारण है? इस शंकाके उत्तरमें कहा गया है कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके औदयिकभावके अतिरिक्त अन्य भाव भी होते हैं, किन्तु वे मिथ्यादृष्टित्वके कारण नहीं हैं, एक मिथ्यात्वकर्मका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टिको औदयिकभाव कहा गया है।

सासादनगुणस्थानमें पारिणामिकभाव बताया गया है, और इसका कारण यह कहा गया हैं कि जिस प्रकार जीवत्व आदि पारिणामिक भावोंके लिए कर्मोंका उदय आदि कारण नहीं है, उसी प्रकार सासादनसम्यक्त्वके लिए दर्शनमोहनीयकर्मका उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम, ये कोई भी कारण नहीं हैं, इसलिए इसे यहां पारिणामिकभाव ही मानना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभाव होता है। यहां शंका उठाई गई है कि प्रतिबंधीकर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके स्वाभाविक गुणका अंश पाया जाता है, वह क्षायोपशमिक कहलाता है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय रहते हुए तो सम्यक्त्वगुणकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं रहती है, अन्यथा सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वघातीपना नहीं बन सकता है। अतएव सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक सिद्ध नहीं होता है? इसके उत्तरमें कहा गया है कि सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक एक मिश्रभाव उत्पन्न होता है। उसमें जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वगुणका अंश है। उसे सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उदय नष्ट नहीं करता है, अतएव सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक है।

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक, ये तीन भाव पाये जाते हैं, क्योंकि, यहांपर दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम, क्षय और क्षयोपशम, ये तीनों होते हैं।

यहां यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि चौथे गुणस्थान तक भावोंका प्ररूपण दर्शनमोहनीय कर्मकी अपेक्षा किया गया है। इसका कारण यह है कि गुणस्थानोंका तारतम्य या विकाश-क्रम मोह और योगके आश्रित है। मोहकर्मके दो भेद हैं– एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। आत्माके सम्यक्त्वगुणको घातनेवाला दर्शनमोहनीय है जिसके निमित्तसे आत्मा वस्तुस्वभावको या अपने हित-अहितको देखता और जानता हुआ भी श्रद्धान नहीं कर सकता है। चारित्रगुणको घातनेवाला चारित्रमोहनीयकर्म है। यह वह कर्म है जिसके निमित्तसे वस्तुस्वरूपका यथार्थ श्रद्धान करते हुए भी, सन्मार्गको जानते हुए भी, जीव उसपर चल नहीं पाता है। मन, वचन और कायकी चंचलताको योग कहते हैं। इसके निमित्तसे आत्मा सर्वत्र परिस्पन्दनयुक्त रहता है, और कर्माश्रवका कारण भी यही है। प्रारम्भके चार गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षयोपशम आदिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए उन गुणस्थानोंमें दर्शनमोहकी अपेक्षासे (अन्य भावोंके होते हुए भी) भावोंका निरूपण किया गया है। तथापि चौथे गुणस्थान तक रहनेवाला असंयमभाव चारित्रमोहनीयकर्मके उदयकी अपेक्षासे है, अतः उसे औदयिकभाव ही जानना चाहिए। पांचवेंसे लेकर बारहवें तक आठ गुणस्थानोंका आधार चारित्रमोहनीयकर्म है अर्थात् ये आठों गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्मके क्रमशः, क्षयोपशम, उपशम और क्षयसे होते हैं, अर्थात् पांचवें, छठे और सातवें गुणस्थानमें क्षायोपशमिकभाव; आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें, इन चारों उपशामक गुणस्थानोंमें औपशमिकभाव; तथा क्षपकश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें क्षायिकभाव कहा गया है। तेरहवें गुणस्थानमें मोहका अभाव हो जानेसे केवल योगकी ही प्रधानता है और इसीलिए इस गुणस्थानका नाम सयोगिकेवली रखा गया है। चौदहवें गुणस्थानमें योगके अभावकी प्रधानता है, अतएव अयोगिकेवली ऐसा नाम सार्थक है। इस प्रकार थोड़ेमें यह फलितार्थ जानना चाहिए कि विवक्षित गुणस्थानमें संभव अन्य भाव पाये जाते हैं, किन्तु यहां भावप्ररूपणामें केवल उन्हीं भावोंको बताया गया है, जो कि उन गुणस्थानोंके मुख्य आधार हैं।

आदेशकी अपेक्षा भी इसी प्रकारसे भावोंका प्रतिपादन किया गया है, जो कि ग्रंथावलोकनसे व प्रस्तावनामें दिये गये नकशोंके सिंहावलोकनसे सहजमें ही जाने जा सकते हैं।

३ अल्पबहुत्वानुगम

द्रव्यप्रमाणानुगममें बतलाये गये संख्या-प्रमाणके आधार पर गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें संभव पारस्परिक संख्याकृत हीनता और अधिकताका निर्णय करनेवाला अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वार है। यद्यपि व्युत्पन्न पाठक द्रव्यप्रमाणानुगम अनुयोगद्वारके द्वारा ही उक्त अल्पबहुत्वका निर्णय कर सकते हैं, पर आचार्यने विस्ताररुचि शिष्योंके लाभार्थ इस नामका

एक पृथक् ही अनुयोगद्वार बनाया, क्योंकि, संक्षेपरुचि शिष्योंकी जिज्ञासाको तृप्त करना ही शास्त्र-प्रणयनका फल बतलाया गया है।

अन्य प्ररूपणाओंके समान यहां भी ओघनिर्देश और आदेशनिर्देशकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका निर्णय किया गया है। ओघनिर्देशसे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा शेष सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं, क्योंकि, इन तीनों ही गुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् रूपसे प्रवेश करनेवाले जीव एक दो को आदि लेकर अधिकसे अधिक चौपन तक ही पाये जाते हैं। इतने कम जीव इन तीनों उपशामक गुणस्थानोंको छोड़कर और किसी गुणस्थानमें नहीं पाये जाते हैं। उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव भी पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त उपशामक जीव ही प्रवेश करते हुए इस ग्यारहवें गुणस्थानमें आते हैं। उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, उपशामकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चौपन जीवोंकी अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एक सौ आठ जीवोंके दूने प्रमाणस्वरूप संख्यातगुणितता पाई जाती है। क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त क्षपक जीव ही इस बारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं। सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही परस्पर तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण अर्थात् एक सौ आठ हैं। किन्तु सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा प्रविश्यमान जीवोंसे संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, पांचसौ अट्ठानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ लाख अट्ठानवे हजार पांचसौ दो (८९८५०२) संख्याप्रमाण जीवोंके संख्यातगुणितता पाई जाती है। दूसरी बात यह है कि इस तेरहवें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षसे कम पूर्वकोटीवर्ष माना गया है। सयोगिकेवली जिनोंसे उपशम और क्षपकश्रेणीपर नहीं चढ़नेवाले अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दो करोड़ छयानवे लाख निन्यानवे हजार एकसौ तीन (२९६९९१०३) है। अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, उनसे इनका प्रमाण दूना अर्थात् पांच करोड़ तेरानवे लाख अट्ठानवे हजार दोसौ छह (५९३९८२०६) है। प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित है, क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, संयमासंयमकी अपेक्षा सासादनसम्यक्त्वका पाना बहुत सुलभ है। यहांपर गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग जानना चाहिए, अर्थात् आवलीके असंख्यातवें भागमें जितने समय होते हैं, उनके द्वारा संयतासंयत जीवोंकी राशिको गुणित करने पर जो प्रमाण आता है, उतने सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि,

दूसरे गुणस्थानकी अपेक्षा तीसरे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, तीसरे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिकी अपेक्षा चौथे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असंख्यातवें भागगुणित है। असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त होते हैं। इस प्रकार यह चौदहों गुणस्थानोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है, जिसका मूल आधार द्रव्यप्रमाण है। यह अल्पबहुत्व गुणस्थानोंमें दो दृष्टियोंसे बताया गया है प्रवेशकी अपेक्षा और संचयकालकी अपेक्षा। जिन गुणस्थानोंमें अन्तरका अभाव है अर्थात् जो गुणस्थान सर्वकाल संभव हैं, उनका अल्पबहुत्व संचयकालकी ही अपेक्षासे कहा गया है। ऐसे गुणस्थान, जैसा कि अन्तरप्ररूपणामें बताया जा चुका है, मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार और सयोगिकेवली, ये छह हैं। जिन गुणस्थानोंमें अन्तर पड़ता है, उनमें अल्पबहुत्व प्रवेश और संचयकाल, इन दोनोंकी अपेक्षा बताया गया है। जैसे– अन्तरकाल समाप्त होनेके पश्चात् उपशामक और क्षपक गुणस्थानोंमें क्रमसे कम एक दो तीनसे लगाकर अधिकसे अधिक ५४ और १०८ तक जीव एक समयमें प्रवेश कर सकते हैं, और निरन्तर आठ समयोंमें प्रवेश करने पर उनके संचयका प्रमाण क्रमशः ३०४ और ६०८ तक एक एक गुणस्थानमें हो जाता है। दूसरे और तीसरे गुणस्थानका प्रवेश और संचय ग्रन्थानुसार जानना चाहिए। ऐसे गुणस्थान चारों उपशामक, चारों क्षपक, अयोगिकेवली सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि हैं।

इसके अतिरिक्त इस अनुयोगद्वारमें मूलसूत्रकारने एक ही गुणस्थानमें सम्यक्त्वकी अपेक्षासे भी अल्पबहुत्व बताया है। जैसे— असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उमशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। इस हीनाधिकताका कारण उत्तरोत्तर संचयकालकी अधिकता है। संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि, देशसंयमको धारण करनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका होना अत्यन्त दुर्लभ है। दूसरी बात यह है कि तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ देशसंयम नहीं पाया जाता है। इसका कारण यह है कि तिर्यंचोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणा नहीं होती है। इसी संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं और उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं। प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं। इस अल्पबहुत्वका कारण संचयकालकी हीनाधिकता

ही है। इसी प्रकारका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें जानना चाहिए। यहां ध्यान रखनेकी बात यह है कि इन गुणस्थानोंमें उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व, ये दो ही सम्यक्त्व होते हैं। यहां वेदकसम्यक्त्व नहीं पाया जाता, क्योंकि, वेदकसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीके आरोहणका अभाव है। अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशमसम्यक्त्वी जीव सबसे कम हैं, उनसे उन्हीं गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यक्त्वी जीव संख्यातगुणित हैं। आगेके गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, वहां सभी जीवोंके एकमात्र क्षायिकसम्यक्त्व ही पाया जाता है। इसी प्रकार प्रारंभके तीन गुणस्थानोंमें भी यह अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, उनमें सम्यग्दर्शन होता ही नहीं है।

जिस प्रकार यह ओघकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी मार्गणास्थानोंमें अल्पबहुत्व जानना चाहिए। भिन्न भिन्न मार्गणाओंमें जो खास विशेषता है, वह ग्रन्थके स्वाध्यायसे ही हृदयंगम की जा सकेगी। किन्तु स्थूलरीतिका अल्पबहुत्व द्रव्यप्रमाणानुगम (भाग ३) पृष्ठ ३८ से ४२ तक अंकसंदृष्टिके साथ बताया गया है, जो कि वहांसे जाना जा सकता है। भेद केवल इतना ही है कि वहां वह क्रम बहुत्वसे अल्पकी ओर रक्खा गया है।

इन प्ररूपणाओंका मथितार्थ साथमें लगाये गये नकशोंसे सुस्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार अल्पबहुत्वप्ररूपणाकी समाप्तिके साथ **जीवस्थाननामक प्रथम खंडकी** आठों प्ररूपणाएं समाप्त हो जाती हैं।

---

५ विषय-सूची

(अन्तरानुगम)

अल्पबहुत्वानुगम

१

२

ओघसे अल्पबहुत्वानुगमनिर्देश २४३-२६१

३

आदेशसे अल्पबहुत्वानुगमनिर्देश २६१-३५०

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	दर्शनी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व	३३१
	१० लेश्यामार्गणा	**३३२-३३९**
७८	आदिके चार गुणस्थानवर्ती कृष्ण, नील और कापोत-लेश्यावाले जीवोंका अल्पबहुत्व	३३२
७९	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उक्त जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व	३३२-३३३
८०	आदिके सात गुणस्थानवर्ती तेज और पद्मलेश्यावाले जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व	३३४-३३५
८१	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें उक्त जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व	३३५
८२	मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावाले जीवोंका अल्पबहुत्व	३३६-३३८
८३	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर दसवें गुणस्थान तक शुक्ललेश्यावाले जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व	३३८-३३९
	११ भव्यमार्गणा	**३३९-३४०**
८४	सर्वगुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अल्पबहुत्व	३३९
८५	अभव्य जीवोंका अल्पबहुत्व	३४०
	१२ सम्यक्त्वमार्गणा	**३४०-३४५**
८६	सामान्य सम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व	३४०
८७	चौथे गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तक क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व	३४०-३४२
८८	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें एक ही पद होनेके कारण सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, इस बातका स्पष्टीकरण	३४२
८९	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व	३४२-३४३
९०	उक्त जीवोंके सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वके अभावका निरूपण	३४३
९१	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशांतकषाय गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व	३४४
९२	उक्त जीवोंके सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्वके अभावका स्पष्टीकरण	३४५
९३	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके अल्पबहुत्वका अभाव-प्रदर्शन	”
	१३ संज्ञिमार्गणा	**३४५-३४६**
९४	आदिके बारह गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीवोंका अल्पबहुत्व	३४५
९५	असंज्ञी जीवोंके अल्पबहुत्वका अभाव-निरूपण	३४६
	१४ आहारमार्गणा	**३४६-३५०**
९६	आदिके तेरह गुस्थानवर्ती आहारक जीवोंका अल्पबहुत्व	३४६-३४७
९७	चौथेसे दसवें गुणस्थान तक आहारक जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व	३४८
९८	अनाहारक जीवोंका अल्पबहुत्व	३४८-३४९
९९	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें अनाहारक जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व	३४९-३५०

शुद्धिपत्र

(पुस्तक ४)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	५	णामपत्तिड्ढीणं	णाम पत्तिड्ढीणं
,,	२०	जिनको ऋद्धि प्राप्त नहीं हुई है,	जिनको ऋद्धि प्राप्त हुई है,
४१	२९	विष्कंभ और आयामसे........ तिर्यग्लोक है,	घनलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें विष्कंभ और आयामसे एक राजुप्रमाण ही तिर्यग्लोक है,
७०	२८	तिर्यंच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि	तिर्यंच मिथ्यादृष्टि
७२	१२	तिर्यंच पर्याप्त जीव	तिर्यंच जीव
,,	१३	,,	,,
७४	१३	मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनिमती मिथ्यादृष्टि मनुष्य	मिथ्यादृष्टि मनुष्य
,,	२२	,,	,,
८५	२२	खंडित करके उसका....उतनी राशि	खंडित करके जो लब्ध आवे उसके असंख्यातवें अथवा संख्यातवें भाग राशि
१२१	१३	देखा जाता है, (न कि यथार्थतः).... किन्तु क्षीणमोही	देखा जाता है। इस प्रकारका स्वस्थानपद अयोगिकेवलीमें नहीं पाया जाता, क्योंकि, क्षीणमोही
१४२	२	उसहो अजीवो	उसहो अजिओ
,,	१३	यह अजीव है,	यह अजित है,
१४७	६	प्रमाणमेंसे	प्रमाणसे
१६३	१६	किन्तु वे उस गुणस्थानमें	किन्तु वे एकेन्द्रियोंमें
,,	१७	न कि वे........सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्पन्न	न कि वे अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८२	२३	चाहिए।	चाहिए। (किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मरण नहीं होता है।)
१९१	१०	और अधस्तन चार पृथिवियों-सम्बन्धी चार	और सातवीं पृथिवीसम्बन्धी अधस्तन चार
२६२	७	मारणंतिय (-उववाद-) परिणदेहि	मारणंतियपरिणदेहि
"	२२	मारणान्तिकसमुद्घात और उप-पादपदपरिणत	मारणान्तिकसमुद्घात-पदपरिणत
२६९	१३	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका	असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका
२७३	२१	नारकियोंसे...........सासादन-सम्यग्दृष्टि	नारकियोंमेंसे तिर्यंचों और मनुष्योंमें मार-णान्तिकसमुद्घात करनेवाले स्त्री और पुरुष-वेदी सासादनसम्यग्दृष्टि
३६९	१५	लब्ध्यपर्याप्तकोंमें	अपर्याप्तकोंमें
"	१६	लब्ध्यपर्याप्त	अपर्याप्त
४१०	१७	अर्थात् उनमें पुनः वापिस आनेसे,	अर्थात् अपने विवक्षित गुणस्थानको छोड़कर नवीन गुणस्थानमें जानेसे,
४१७	३	-परियट्टेसुप्पण्णेसु	-परियट्टेसु पुण्णेसु
"	१५	शेष रहने पर	पूर्ण होने पर
४२२	२२	उदयमें आये हैं	उपार्जित किये हैं
४४५	५	-णिरयगदीएण	-णिरयगदीए ण
"	६	मणुसगदीएण	मणुसगदीए ण
"	७	तिरिक्खगईएण	तिरिक्खगईए ण
"	८	देवगदीएण	देवगदीए ण
"	१९, २०, २२, २४	उत्पन्न	नहीं उत्पन्न
४६४	२४	अन्तर्मुहूर्तसे........काल	अन्तर्मुहूर्तसे अधिक अढ़ाई सागरोपम काल
"	२५	अढ़ाई सागरोपमकालके आदि	विवक्षित पर्यायके आदि
४६८	१२	वर्धमान	शंका—वर्धमान
"	१७	शंका—तेज	तेज
४७७	१७	सादि-सान्त	सादि

(पुस्तक ५)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१६	अन्तररूप........आगमको	अन्तरके प्रतिपादक द्रव्यरूप आगमको
"	२८	वर्तमानमें इस समय	वर्तमानमें अन्य पदार्थके
७	९	सासाण-	सासण-
१०	१४	कालमें........रहने पर	कालके स्थानमें अन्तर्मुहूर्तके द्वारा
१२	८	गमिदसम्मत्त	गहिदसम्मत्त
१४	१७	असंयतादि	प्रमत्तादि
१८	४	वासपुधते	वासपुधत्ते
१९	१०	वेदगसम्मत्तमुवणमिय	वेदगसम्मत्तमुवसामिय
"	२७	प्राप्त कर	उपशामित कर अर्थात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर
५६	२२	यह तो राशियोंका	यह तो इस राशिका
५९	२१,२२	उत्कृष्ट अन्तर	जघन्य अन्तर
७१	१९	आयुके	उसके
७७	२६	गतिकी	इन्द्रियकी
९७	७	देवेसु	देवीसु
"	२२	देवोंमें	देवियोंमें
१०६	२१	अन्तरसे अधिक अन्तरका	अन्तरका
१९८	९	उक्स्कसेण	उक्कस्सेण
११७	१९	तीनों ज्ञानवाले	मति-श्रुतज्ञानवाले
१२१	१	अंतरब्भंतरादो	अंतरब्भंतरा दो
"	१५	अप्रमत्तसंयतका काल	अप्रमत्तसंयतके दो काल
"	२४	तीनों ज्ञानवाले	मति-श्रुतज्ञानवाले
१५७	५	-पमत्तसंजदाण-	-पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजदाण-
"	१८	और प्रमत्तसंयत	प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत
१५८	१६	(श्रेण्यारोहण करता हुआ) सिद्ध	सिद्ध
"	२२	(गुणस्थान और आयुके) कालक्षयसे	आयुके कालक्षयसे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७०	२१	जाना जाता है कि........ अन्तर रहित है।	जाना जाता है कि उपशमश्रेणीके समारोहण योग्य कालसे शेष उपशमसम्यक्त्वका काल अल्प है।
१८६	२	धम्मभावो।	धम्मभावो य।
१९८	२८-२९	अवयवीरूप.... अंश	अवयवीरूप सम्यक्त्वगुणका तो निराकरण रहता है, किन्तु सम्यक्त्वगुणका अवयव-रूप अंश
२०४	१०	संखेज्जाणंत-	असंखेज्जाणंत-
२२४	१९	दयाधर्मसे.... हुए	दयाधर्मको जाननेवाले ज्ञानियोंमें वर्तमान
,,	२१	क्योंकि, आप्त.... यथार्थ	क्योंकि, दयाधर्मके ज्ञाताओंमें भी आप्त, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके यथार्थ
२२५	९	सजोगिकेवली	सजोगिकेवली (अजोगिकेवली)
२२६	२८	पारिणामिकभावकी	भव्यत्वभावकी
२३८	१६	कार्मणकाययोगियोंमें	कार्मणकाययोगियोंसे
,,	१७	कार्मणकाययोगी	अनाहारक
२४६	८	पुधसत्तारंभो	पुधसुत्तारंभो
३६४	५	-मेतो-	-मेत्तो-
२५५	१६	प्रमाणराशिसे.... भाजित	फलराशिसे इच्छाराशिको गुणित करके प्रमाणराशिसे भाजित
२७५	२८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव........ संख्यातगुणित	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव संयतासंयत मनुष्य-नियोंसे संख्यातगुणित
२८६	२९	असंख्यातवें	संख्यातवें

अंतरापुगामी



सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

अंतराणुगमो

अंताइमज्झहीणं दसद्धसयचावदीहिरं पढमजिणं ।
वोच्छं णमिऊणंतरमणंतरुत्तुंगसण्हमइदुग्गेज्झं ॥

अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[1] ॥ १ ॥

णाम-ट्ठवणा-दव्व-खेत्त-काल-भावभेदेण छव्विहमंतरं । तत्थ णामंतरसद्दो बज्झत्थे

आदि, मध्य और अन्तसे रहित अतएव अनन्तर, अर्थात् अनन्तज्ञानस्वरूप, और दशशतके आधे अर्थात् पांच सौ धनुष उंचाईवाले अतएव उत्तुंग, तथापि ज्ञान की अपेक्षा सूक्ष्म, अतएव अतिदुर्ग्राह्य, ऐसे प्रथम जिन श्री वृषभनाथको नमस्कार करके अन्तरानुयोगद्वारको कहता हूं, जिसमें अनन्तर अर्थात् अन्तर रहित गुणस्थानों व मार्गणास्थानोंका भी वर्णन है, तथा जिसमें उत्तुंग अर्थात् दीर्घकालात्मक व सूक्ष्म अर्थात् अत्यल्पकालात्मक अन्तरोंका भी कथन है, अतएव जो मतिज्ञान द्वारा दुर्ग्राह्य है।

अन्तरानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे अन्तर छह प्रकारका होता है। उनमें वाह्य अर्थोंको छोड़कर अपने आपमें अर्थात् स्ववाचकतामें प्रवृत्त होनेवाला 'अन्तर'

१ विवक्षितस्य गुणस्य गुणान्तरसंक्रमे सति पुनस्तत्प्राप्तेः प्राङ्मध्यमन्तरम् । तत् द्विविधम्, सामान्येन विशेषेण च । स. सि. १, ८.

मोत्तूण अप्पाणम्हि पयट्टो । ट्ठवणंतरं दुविहं सब्भावासब्भावभेएण । भरह-बाहुवलीणमंतर-मुव्वेल्लंतो णदो सब्भावट्ठवणंतरं । अंतरमिदि बुद्धीए संकप्पिय दंड-कंड-कोदंडादओ असब्भावट्ठवणंतरं । दव्वंतरं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अंतरपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो अंतरदव्वागमो वा आगमदव्वंतरं । णोआगमदव्वंतरं जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण तिविहं । आधारे आधेयोवयारेण लद्धंतरसण्णं जाणुगसरीरं भविय-वट्टमाण-समुज्झाद-भेएण तिविहं । कधं भवियस्स अणाहारदाए ट्ठिदस्स अंतरववएसो ? ण एस दोसो, कूरपज्जयाणाहारेसु वि तंदुलेसु एत्थ कूरववएसुवलंभा । कधं भूदे एसो ववहारो ? ण, रज्जपज्जायअणाहारे वि पुरिसे राओ आगच्छदि त्ति ववहारुवलंभा । भवियणोआगम-दव्वंतरं भविस्सकाले अंतरपाहुडजाणओ संपहि संते वि उवजोए अंतरपाहुडअवगम-

---

यह शब्द नाम-अन्तरनिक्षेप है। स्थापना अन्तर सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है। भरत और बाहुबलिके बीच उमड़ता हुआ नद सद्भावस्थापना अन्तर है। अन्तर इस प्रकारकी बुद्धिसे संकल्प करके दंड, बाण, धनुष आदिक असद्भावस्थापना अन्तर हैं, अर्थात् दंड, बाणादिके न होते हुए भी तत्प्रमाण क्षेत्रवर्ती अन्तरकी; यह अंतर इतने धनुष है ऐसी जो कल्पना कर लेते हैं, उसे असद्भावस्थापना अन्तर कहते हैं।

द्रव्यान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। अन्तर विषयक प्राभृतके ज्ञायक तथा वर्तमानमें अनुपयुक्त पुरुषको आगमद्रव्यान्तर कहते हैं। अथवा, अन्तररूप-द्रव्यके प्रतिपादक आगमको आगमद्रव्यान्तर कहते हैं। नोआगमद्रव्यान्तर ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। आधारमें आधेयके उपचारसे प्राप्त हुई है अन्तरसंज्ञा जिसको ऐसा ज्ञायकशरीर भव्य, वर्तमान और समुत्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है।

शंका—अनाधारतासे स्थित, अर्थात् वर्तमानमें जो अन्तरागमका आधार नहीं हैं ऐसे, भावी शरीरके 'अन्तर' इस संज्ञाका व्यवहार कैसे हो सकता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कूर (भात) रूप पर्यायके आधार न होने पर भी तंदुलोंमें यहां, अर्थात् व्यवहारमें, कूर संज्ञा पाई जाती है।

शंका—भूत ज्ञायकशरीरके यह अन्तरका व्यवहार कैसे बनेगा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, राज्यपर्यायके नहीं धारण करनेवाले पुरुषमें भी 'राजा आता है' इस प्रकारका व्यवहार पाया जाता है।

भविष्यकालमें जो अन्तरशास्त्रका ज्ञायक होगा, परंतु वर्तमानमें इस समय उपयोगके होते हुए भी अन्तरशास्त्रके ज्ञानसे रहित है, ऐसे पुरुषको भव्य नोआगमद्रव्यान्तर कहते हैं।

रहिओ। तव्वदिरित्तदव्वंतरं तिविहं सचित्ताचित्त-मिस्सभेएण। तत्थ सचित्तंतरं उसह-संभवाणं मज्झे ट्ठिओ अजिओ[1]। अचित्ततव्वदिरित्तदव्वंतरं णाम घणोअहि[2]-तणुवादाणं मज्झे ट्ठिओ घणाणिलो। मिस्संतरं जहा उज्जंत-सत्तुंजयाणं विच्चालट्ठिदगाम-णगराइं। खेत्त-कालंतराणि दव्वंतरे पविट्ठाणि, छदव्ववदिरित्तखेत्त-कालाणमभावा। भावंतरं दुविहं आगम-णोआगमभेएण। अंतरपाहुडजाणओ उवजुत्तो भावागमो वा आगम-भावंतरं। णोआगमभावंतरं णाम ओदइयादी पंच भावा दोण्हं भावाणमंतरे ट्ठिदा।

एत्थ केण अंतरेण पयदं? णोआगमदो भावंतरेण। तत्थ वि अजीवभावंतरं मोत्तूण जीवभावंतरे पयदं, अजीवभावंतरेण इह पओजणाभावा। अंतरमुच्छेदो विरहो परिणामंतरगमणं णत्थित्तगमणं अण्णभावव्ववहाणमिदि एयट्ठो। एदस्स अंतरस्स अणुगमो अंतराणुगमो। तेण अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियणयावलंबणेण। तिविहो णिद्देसो किण्ण[3] होज्ज? ण, तइज्जस्स णयस्स अभावा। तं पि कधं णव्वदे?

तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमेंसे वृषभ जिन और संभव जिनके मध्यमें स्थित अजित जिन सचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तरके उदाहरण हैं। घनोदधि और तनुवातके मध्यमें स्थित घनवात अचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर है। ऊर्जयन्त और शत्रुञ्जयके मध्यमें स्थित ग्राम नगरादिक मिश्र तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर हैं। क्षेत्रान्तर और कालान्तर, ये दोनों ही द्रव्यान्तरमें प्रविष्ट हो जाते हैं, क्योंकि, छह द्रव्योंसे व्यतिरिक्त क्षेत्र और कालका अभाव है।

भावान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। अन्तरशास्त्रके ज्ञायक और उपयुक्त पुरुषको आगमभावान्तर कहते हैं; अथवा भावरूप अन्तर आगमको आगमभावान्तर कहते हैं। औदयिक आदि पांच भावोंमेंसे किन्हीं दो भावोंके मध्यमें स्थित विवक्षित भावको नोआगम भावान्तर कहते हैं।

शंका—यहां पर किस प्रकारके अन्तरसे प्रयोजन है?

समाधान—नोआगमभावान्तरसे प्रयोजन है। उसमें भी अजीवभावान्तरको छोड़कर जीवभावान्तर प्रकृत है, क्योंकि, यहां पर अजीवभावान्तरसे कोई प्रयोजन नहीं है।

अन्तर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तित्वगमन और अन्यभावव्यवधान, ये सब एकार्थवाची नाम हैं। इस प्रकारके अन्तरके अनुगमको अन्तरानुगम कहते हैं। उस अन्तरानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है, क्योंकि, वह निर्देश द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयका अवलंबन करनेवाला है।

शंका—तीन प्रकारका निर्देश क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तीसरे प्रकारका कोई नय ही नहीं है।

शंका—यह भी कैसे जाना?

---

१ प्रतिषु 'आजीओ' मप्रतौ 'अजीओ' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'पुणोअहि' इति पाठः।

३ प्रतिषु 'किण्ह' इति पाठः।

संगहासंगहवदिरित्ततण्णिसयाणुवलंभा । एवं मणम्मि काऊण ओघेणादेसेण येत्ति[1] उत्तं । एक्केण णिद्देसेण पज्जत्तमिदि चे ण, एक्केण दुणयावलंबिजीवाणमुवयारकरणे उवायाभावा ।

ओघेण मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ २ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायसंभालट्ठं ओघेणेत्ति उत्तं । सेसगुणट्ठाण-उदासट्ठो मिच्छादिट्ठिणिद्देसो । केवचिरं कालादो इदि पुच्छा एदस्स पमाणत्तपदुप्पायण-फला । णाणाजीवमिदि बहुस्सु एयवयणणिद्देसो कधं घडदे ? णाणाजीवट्ठियसामण्ण-विवक्खाए बहूणं पि एगत्तविरोहाभावा । णत्थि अंतरं मिच्छत्तपज्जयपरिणदजीवाणं तिसु वि कालेसु वोच्छेदो विरहो अभावो[3] णत्थि त्ति उत्तं होदि । अंतरस्स पडिसेहे कदे सो पडिसेहो तुच्छो ण होदि त्ति जाणावणट्ठं णिरंतरग्गहणं, विहिरूवेण पडिसेहादो वदिरित्तेण

समाधान—क्योंकि, संग्रह (सामान्य) और असंग्रह (विशेष) को छोड़करके किसी अन्य नयका विषयभूत कोई पदार्थ नहीं पाया जाता है।

इस उक्त प्रकारके शंका-समाधानको मनमें धारण करके सूत्रकारने 'ओघसे और आदेशसे' ऐसा पद कहा है।

शंका—एक ही निर्देश करना पर्याप्त था ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक निर्देशसे दोनों नयोंके अवलम्बन करनेवाले जीवोंके उपकार करनेमें उपायका अभाव है।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरंतर है ॥ २ ॥

'जैसा उद्देश होता है, वैसा निर्देश होता है' इस न्यायके रक्षणार्थ 'ओघसे' यह पद कहा। मिथ्यादृष्टि पदका निर्देश शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए है। 'कितने काल होता है' इस पृच्छाका फल इस सूत्रकी प्रमाणताका प्रतिपादन करना है।

शंका—'णाणाजीवं' इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश बहुतसे जीवोंमें कैसे घटित होता है ?

समाधान—नाना जीवोंमें स्थित सामान्यकी विवक्षासे बहुतोंके लिए भी एक-वचनके प्रयोगमें विरोध नहीं आता।

'अन्तर नहीं है' अर्थात् मिथ्यात्वपर्यायसे परिणत जीवोंका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाव नहीं होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए। अन्तरके प्रतिषेध करने पर वह प्रतिषेध तुच्छ अभावरूप नहीं होता है, किन्तु भावान्तरभावरूप होता है, इस बातके जतलानेके लिए 'निरन्तर' पदका ग्रहण किया है। प्रतिषेधसे

१ प्रतिषु 'एत्ति' इति पाठः।

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु 'अभावा' इति पाठः।

मिच्छादिट्ठिणो सव्वकालमच्छंति त्ति उत्तं होदि। अधवा पज्जवट्ठियणयावलंबियजीवाणुग्गहणट्ठं णत्थि अंतरमिदि पडिसेहवयणं, दव्वट्ठियणयावलंबिजीवाणुग्गहट्ठं णिरंतरमिदि विहिवयणं। एसो अत्थो उवरि सव्वत्थ वत्तव्वो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३ ॥

तं जधा– एक्को मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छत्त-सम्मत्त-संजमासंजम-संजमेसु बहुसो परियट्टिदो, परिणामपच्चएण सम्मत्तं गदो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तं सम्मत्तेण अच्छिय मिच्छत्तं गदो, लद्धमंतोमुहुत्तं सव्वजहण्णं मिच्छत्तंतरं। एत्थ चोदगो भणदि– जं पढमिल्लमिणं[2] मिच्छत्तं तं पुणो सम्मत्तुत्तरकाले ण होदि, पुव्वकाले वट्टंतस्स उत्तरकाले पउत्तिविरोहा। ण च तं चे उत्तरकाले उप्पज्जइ, उप्पण्णस्स उप्पत्तिविरोहा। तदो अंतिल्लं मिच्छत्तं पढमिल्लं ण होदि त्ति अंतरस्स अभावो चेयेत्ति? एत्थ परिहारो उच्चदे– सच्चमेवमेदं जदि सुद्धो पज्जयणओ अवलंबिज्जदि। किंतु णइगमणयमवलंबिय अंतर-

व्यतिरिक्त होनेके कारण विधिरूपसे मिथ्यादृष्टि जीव सर्व काल रहते हैं, यह अर्थ कहा गया है। अथवा, पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए 'अन्तर नहीं है' इस प्रकारका प्रतिषेधवचन और द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिये 'निरन्तर' इस प्रकारका विधिपरक वचन कहा गया है। यह अर्थ आगेके सभी सूत्रोंमें भी कहना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

जैसे—एक मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, संयमासंयम और संयममें बहुतवार परिवर्तित होता हुआ परिणामोंके निमित्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, और वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल तक सम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तर प्राप्त हो गया।

शंका—यहां पर शंकाकार कहता है कि अन्तर करनेके पूर्व जो पहलेका मिथ्यात्व था, वही पुनः सम्यक्त्वके उत्तरकालमें नहीं होता है; क्योंकि, सम्यक्त्व प्राप्तिके पूर्वकालमें वर्तमान मिथ्यात्वकी उत्तरकालमें, अर्थात् सम्यक्त्व छोड़नेके पश्चात्, प्रवृत्ति होनेका विरोध है। तथा, वही मिथ्यात्व उत्तरकालमें भी उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि, उत्पन्न हुई वस्तुके पुनः उत्पन्न होनेका विरोध है। इसलिए सम्यक्त्व छूटनेके पश्चात् होनेवाला अन्तिम मिथ्यात्व पहलेका मिथ्यात्व नहीं हो सकता है, इससे अन्तरका अभाव ही सिद्ध होता है?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं—उक्त कथन सत्य ही है, यदि शुद्ध पर्यायार्थिक नयका अवलंबन किया जाय। किंतु नैगमनयका अवलंबन लेकर अन्तर-

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि, १, ८.

२ प्रतिषु म-प्रतिषु च 'पढममिल्लमिणं' इति पाठः।

परूवणा कीरदे, तस्स सामण्णविसेसुहयविसयत्तादो। तदो ण एस दोसो। तं जहा– पढमंतिम-मिच्छत्तं पज्जाया अभिण्णा, मिच्छत्तकम्मोदयजादत्तेण अत्तागम-पदत्थाणमसद्दहणेण एगजीवाहारत्तेण भेदाभावा। ण पुव्वुत्तरकालभेएण ताणं भेओ, तधा विवक्खाभावा। तम्हा पुव्वुत्तरद्धासु अच्छिण्णसरूवेण ट्ठिदमिच्छत्तस्स सामण्णावलंबणेण एकत्तं पत्तस्स सम्मत्तपज्जओ अंतरं होदि। एस अत्थो सव्वत्थ पउज्जिदव्वो।

उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि[2] ॥ ४ ॥

एदस्स णिदरिसणं– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा लंतय-काविट्ठकप्पवासियदेवेसु चोद्दससागरोवमाउट्ठिदिएसु उप्पण्णो। एक्कं सागरोवमं गमिय विदियसागरोवमादिसमए सम्मत्तं पडिवण्णो। तेरससागरोवमाणि तत्थ अच्छिय सम्मत्तेण सह चुदो मणुसो जादो। तत्थ संजमं संजमासंजमं वा अणुपालिय मणुसाउएणूणवावीससागरोवमाउट्ठिदिएसु आरणच्चुददेवेसु उववण्णो। तत्तो चुदो मणुसो जादो। तत्थ संजममणुपालिय उवरिमगेवज्जे

प्ररूपणा की जा रही है, क्योंकि, वह नैगमनय सामान्य तथा विशेष, इन दोनोंको विषय करता है, इसलिये यह कोई दोष नहीं है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–अंतरकालके पहलेका मिथ्यात्व और पीछेका मिथ्यात्व, ये दोनों पर्याय हैं, जो कि अभिन्न हैं, क्योंकि, मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण; आप्त, आगम और पदार्थोंके अश्रद्धानकी अपेक्षा; तथा एक ही जीव द्रव्यके आधार होनेसे उनमें कोई भेद नहीं है। और न पूर्वकाल तथा उत्तरकालके भेदकी अपेक्षा भी उन दोनों पर्यायोंमें भेद है, क्योंकि, इस कालभेदकी यहां विवक्षा नहीं की गई है। इसलिए अन्तरके पहले और पीछेके कालमें अविच्छिन्न स्वरूपसे स्थित और सामान्य (द्रव्यार्थिकनय) के अवलम्बनसे एकत्वको प्राप्त मिथ्यात्वका सम्यक्त्व पर्याय अन्तर होता है, यह सिद्ध हुआ। यही अर्थ आगे सर्वत्र योजित कर लेना चाहिए।

मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरोपम काल है ॥ ४ ॥

इसका दृष्टान्त—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य चौदह सागरोपम आयुस्थिति-वाले लांतव-कापिष्ट कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां एक सागरोपम काल विताकर दूसरे सागरोपमके आदि समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तेरह सागरोपम काल वहां पर रहकर सम्यक्त्वके साथ ही च्युत हुआ और मनुष्य होगया। उस मनुष्यभवमें संयमको, अथवा संयमासंयमको अनुपालन कर इस मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे कम बाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आरण-अच्युतकल्पके देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ। इस मनुष्यभवमें संयमको अनुपालन कर उपरिम

---

१ प्रतिषु 'अत्यागम' इति पाठः।

२ उत्कर्षेण द्वे षट्षष्ठी देशोने सागरोपमाणाम्। स. सि. १, ८.

देवेसु मणुसाउगेणूणएक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तूणछावट्ठि-सागरोवमचरिमसमए परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं गदो। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय विस्समिय चुदो मणुसो जादो। तत्थ संजमं संजमासंजमं वा अणुपालिय मणुस्साउएणूणवीससागरोवमाउट्ठिदिएसुववज्जिय पुणो जहाकमेण मणुसाउ-वेणूणबावीस-चउवीससागरोवमट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिय अंतोमुहुत्तूणवेछावट्ठिसागरो-वमचरिमसमए मिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं अंतोमुहुत्तूणवेछावट्ठिसागरोवमाणि। एसो उप्पत्तिक्कमो अउप्पण्णउप्पायणट्ठं उत्तो। परमत्थदो पुण जेण केण वि पयारेण छावट्ठी पूरेदव्वा।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[१] ॥ ५ ॥

तं जहा, सासणसम्मादिट्ठिस्स ताव उच्चदे— दो जीवमादिं काऊण एगुत्तरकमेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवियप्पेण उवसमसम्मादिट्ठिणो उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयमादिं काऊण जाव छावलियावसेसाए आसाणं गदा। तेत्तियं पि कालं सासण-

ग्रैवेयकमें मनुष्य आयुसे कम इकतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले अहमिन्द्र देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागरोपम कालके चरम समयमें परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। उस सम्यग्मिथ्यात्वमें अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, विश्राम ले, च्युत हो, मनुष्य हो गया। उस मनुष्य-भवमें संयमको अथवा संयमासंयमको परिपालन कर, इस मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे कम वीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आनत-प्राणत कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न होकर पुनः यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम बाईस और चौवीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपम कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपम कालप्रमाण अन्तर प्राप्त हुआ। यह ऊपर बताया गया उत्पत्तिका क्रम अव्युत्पन्न जनोंके समझानेके लिए कहा है। परमार्थसे तो जिस किसी भी प्रकारसे छयासठ सागरोपम काल पूरा किया जा सकता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ ५ ॥

जैसे, पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं— दो जीवोंको आदि करके एक एक अधिकके क्रमसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र विकल्पसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको आदि करके अधिकसे अधिक छह आवली कालके अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। जितना काल अवशेष

१ सासादनसम्यग्दृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। ××× सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरं नाना-जीवापेक्षया सासादनवत्। स. सि. १, ८.

गुणेण अच्छिय सव्वे मिच्छत्तं गदा। तिसु वि लोगेसु सासणाणमेगसमए अभावो जादो। पुणो विदियसमए सत्तट्ठ जणा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उवसमसम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा। लद्धमंतरमेगसमओ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सम्मामिच्छादिट्ठिणो णाणाजीवगदसम्मामिच्छत्तद्धाखएण सम्मत्तं मिच्छत्तं वा सव्वे पडिवण्णा। तिसु वि लोगेसु सम्मामिच्छादिट्ठिणो एगसमयमभावीभूदा। अणंतरसमए मिच्छाइट्ठिणो सम्मादिट्ठिणो वा सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णा। लद्धमंतरमेगसमओ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ६ ॥

णिदरिसणं सासणसम्मादिट्ठिस्स ताव उच्चदे– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा उवसमसम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा। तेहि आसाणेहि आय-व्वयवसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालं सासणगुणप्पवाहो अविच्छिण्णो कदो। पुणो अणंतरसमए सव्वे मिच्छत्तं

रहने पर उपशमसम्यक्त्वको छोड़ा था, उतने ही कालप्रमाण सासादन गुणस्थानमें रह कर वे सब जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुए, और तीनों ही लोकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक समयके लिए अभाव हो गया। पुनः द्वितीय समयमें अन्य सात आठ जीव, अथवा आवलीके असंख्यातवें भागमात्र जीव, अथवा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार सासादन गुणस्थानका एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो गया।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य अन्तर कहते हैं– सात आठ जन, अथवा बहुतसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, नाना जीवगत सम्यग्मिथ्यात्वसम्बन्धी कालके क्षयसे सम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको सभीके सभी प्राप्त हुए और तीनों ही लोकोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक समयके लिए अभावरूप हो गये। पुनः अनन्तर समयमें ही मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्दृष्टि सात आठ जीव, अथवा बहुतसे जीव, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्वका एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो गया।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ६ ॥

उनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका उदाहरण कहते हैं— सात आठ जन, अथवा बहुतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। उन सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा आय और व्ययके क्रमवश पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक सासादन गुणस्थानका प्रवाह अविच्छिन्न चला। पुनः उसका काल समाप्त होनेपर दूसरे समयमें ही वे सभी जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुए, और पल्योपमके असंख्यातवें भाग-

१ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

गदा। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालं सासणगुणट्ठाणमंतरिदं। तदो उक्कस्संतरस्स अणंतरसमए सत्तट्ठ जणा बहुआ वा उवसमसम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा। लद्धमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– णाणाजीवगदसम्मामिच्छत्तद्धाए उक्कस्संतरजोग्गाए अदिक्कंताए सव्वे सम्मामिच्छादिट्ठिणो सम्मत्तं मिच्छत्तं वा पडिवण्णा। अंतरिदं सम्मामिच्छत्तगुणट्ठाणं। पुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तउक्कस्संतरकालस्स अणंतरसमए अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिणो वेदगसम्मादिट्ठिणो उवसमसम्मादिट्ठिणो वा सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णा। लद्धमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ७ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो सासणसम्मादिट्ठिस्स पढमं उच्चदे– एक्को सासणसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्तपच्छायदो केत्तियं पि कालमासाणगुणेणच्छिय[2] मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण भूओ उवसमसम्मत्तं

मात्र कालतकके लिए सासादन गुणस्थान अन्तरको प्राप्त हो गया। पुनः इस पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकालके अनन्तर समयमें ही सात आठ जन, अथवा बहुतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण सासादनका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कहते हैं– उत्कृष्ट अन्तरके योग्य, नाना जीवगत सम्यग्मिथ्यात्वकालके व्यतिक्रान्त होने पर, सभी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्ट अन्तरकालके अनन्तर समयमें ही मोह कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि, अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७ ॥

जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है, इसी न्यायसे सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अन्तर पहले कहते हैं– उपशम सम्यक्त्वसे पीछे लौटा हुआ कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने ही काल तक सासादन गुणस्थानमें रहा और फिर मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें

१ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागः। ××× सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ×× एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'आसाणं गुणेण' इति पाठः।

पडिवज्जिय छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गदो। लद्धमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अंतोमुहुत्तकालेण आसाणं किण्ण णीदो ? ण, उवसमसम्मत्तेण विणा आसाणगुणग्गहणाभावा। उवसमसम्मत्तं पि अंतोमुहुत्तेण किण्ण पडिवज्जदे ? ण, उवसमसम्मादिट्ठी मिच्छत्तं गंतूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लमाणो तेसिमंतोकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिं घादिय सागरोवमादो सागरोवमपुधत्तादो वा जाव हेट्ठा ण करेदि ताव उवसमसम्मत्तगहणसंभवाभावा। ताणं ट्ठिदीओ अंतोमुहुत्तेण घादिय सागरोवमादो सागरोवमपुधत्तादो वा हेट्ठा किण्ण करेदि ? ण, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तायामेण अंतोमुहुत्तुक्कीरणकालेहि उव्वेल्लणखंडएहि घादिज्जमाणाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण विणा सागरोवमस्स वा सागरोवमपुधत्तस्स वा हेट्ठा पदणाणुववत्तीदो[1]। सासणपच्छायदमिच्छाइट्ठिं संजमं गेण्हाविय दंसणतियमुवसामिय

भागमात्र कालसे उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध हो गया।

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालमें अन्तर्मुहूर्त काल शेप रहने पर सासादन गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके विना सासादन गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका—वही जीव उपशमसम्यक्त्वको भी अन्तर्मुहूर्तकालके पश्चात् ही क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्याप्रकृतिकी उद्वेलना करता हुआ, उनकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको घात करके सागरोपमसे, अथवा सागरोपम पृथक्त्वसे जबतक नीचे नहीं करता है, तब तक उपशमसम्यक्त्वका ग्रहण करना ही संभव नहीं है।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिओंको अन्तर्मुहुर्तकालमें घात करके सागरोपमसे, अथवा सागरोपमपृथक्त्व कालसे नीचे क्यों नहीं करता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र आयामके द्वारा अन्तर्मुहूर्त उत्कीरणकालवाले उद्वेलनाकांडकोंसे घात कीजानेवाली सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिका, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके विना सागरोपमके, अथवा सागरोपमपृथक्त्वके नीचे पतन नहीं हो सकता है।

शंका—सासादन गुणस्थानसे पीछे लौटे हुए मिथ्यादृष्टि जीवको संयम ग्रहण कराकर और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उपशमन कराकर, पुनः चारित्रमोहका

१ प्रतिषु 'पदेणा-' इति पाठः।

पुणो चरित्तमोहमुवसामेदूण हेट्ठा ओयरिय आसाणं गदस्स अंतोमुहुत्तंतरं किण्ण परूविदं? ण, उवसमसेढीदो ओदिण्णाणं सासणगमणाभावादो। तं पि कुदो णव्वदे? एदम्हादो चेव भूदबलीवयणादो।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी परिणामपच्चएण मिच्छत्तं सम्मत्तं वा पडिवण्णो अंतरिदो। अंतोमुहुत्तेण भूओ सम्मामिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरमंतोमुहुत्तं।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[१] ॥ ८ ॥

ताव सासणस्सुदाहरणं वुच्चदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अणंतो संसारो छिण्णो अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो। पुणो अंतोमुहुत्तं सम्मत्तेणच्छिय आसाणं गदो (१)। मिच्छत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो अद्धपोग्गलपरियट्टं मिच्छत्तेण परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो एगसमयावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गदो। लद्धमंतरं। भूओ मिच्छा-

उपशम करा और नीचे उतारकर, सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण अन्तर क्यों नहीं बताया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवोंके सासादन गुणस्थानमें गमन करनेका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना?

समाधान—भूतबली आचार्यके इसी वचनसे जाना।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर कहते हैं– एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको, अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् ही पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥८॥

उनमेंसे पहले सासादन गुणस्थानका उदाहरण कहते हैं– एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अधःप्रवृत्तादि तीनों करण करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अनन्त संसारको छिन्न कर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यक्त्वके साथ रहकर वह सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१)। पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमणकर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः उपशम-सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हो गया। पुनः मिथ्यादृष्टि हुआ (२)। पुनः वेदक-

१ उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। स. सि. १, ८.

दिट्ठी जादो (२) । वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय (३) अणंताणुबंधिं विसंजोजिय (४) दंसणमोहणीयं खविय (५) अप्पमत्तो जादो (६) । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेढीपाओग्गविसोहीए विसुज्झिऊण (८) अपुव्वखवगो (९) अणियट्टिखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगिकेवली (१३) अजोगिकेवली (१४) होदूण सिद्धो जादो । एवं समयाहियचोद्दसअंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सासणसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं होदि ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि वि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं गेण्हंतेण गहिदसम्मत्तपढमसमए अणंतो संसारो छिंदिदूण अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो । उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (२) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । तत्थेव अणंताणुबंधिं विसंजोइय सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो । लद्धमंतरं (३) । तदो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय (४) दंसणमोहणीयं खवेदूण (५) अप्पमत्तो जादो (६) । पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय (७) खवगसेढीपाओग्ग-

....

सम्यक्त्वको प्राप्त होकर (३) अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन कर (४) दर्शनमोहनीयका क्षयकर (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होकर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (११), क्षीणकषायवीतराग छद्मस्थ (१२), सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्ध होगया। इस प्रकारसे एक समय अधिक चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया। उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर वह (१) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (२)। पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हो गया। पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिभ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, और वहांपर ही अनन्तानुबंधीकषायकी विसंयोजना कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर उपलब्ध हो गया (३)। तत्पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (४) दर्शनमोहनीयका क्षपण करके (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसंबन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध

विसोहीए विसुज्झिय (८) अपुव्वखवगो (९) अणियट्टिखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगिकेवली (१३) अजोगिकेवली (१४) होदूण सिद्धिं गदो। एदेहि चोद्दसअंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति अंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥९॥

कुदो ? सव्वकालमेदाणमुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्स गुणट्ठाणपरिवाडीए अत्थो उच्चदे। तं जहा– एक्को असंजदसम्मादिट्ठी संजमासंजमं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तमंतरिय भूओ असंजदसम्मादिट्ठी जादो। लद्धमंतरमंतोमुहुत्तं। संजदासंजदस्स उच्चदे– एक्को संजदासंजदो असंजदसम्मादिट्ठिं मिच्छादिट्ठिं संजमं वा पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तमंतरिय भूओ संजमासंजमं पडिवण्णो। लद्धमंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं संजदासंजदस्स। पमत्तसंजदस्स उच्चदे– एगो पमत्तो अप्पमत्तो

होकर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९) अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११) क्षीणकषाय (१२) सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्धपदको प्राप्त हुआ। इन चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको आदि लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९ ॥

क्योंकि, सर्वकाल ही सूत्रोक्त गुणस्थानवर्ती जीव पाये जाते हैं।

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १० ॥

इस सूत्रका गुणस्थानकी परिपाटीसे अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है– एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त हुआ। वहांपर अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर अन्तरको प्राप्त हो, पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त होगया।

अब संयतासंयतका अन्तर कहते हैं– एक संयतासंयत जीव, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको, अथवा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको, अथवा संयमको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्तकाल वहांपर रह कर अन्तरको प्राप्त हो पुनः संयमासंयमको प्राप्त होगया। इस प्रकारसे संयतासंयतका अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

होदूण सव्वलहुं पुणो वि पमत्तो जादो। लद्धमंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं पमत्तस्स। अप्पमत्तस्स उच्चदे– एगो अप्पमत्तो उवसमसेढीमारुहिय पडिणियत्तो अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं जहण्णमप्पमत्तस्स। हेट्ठिमगुणेसु किण्ण अंतराविदो? ण, उवसमसेढीसव्वगुणट्ठाणद्धाणाहिंतो हेट्ठिमएगगुणट्ठाणद्धाए संखेज्जगुणत्तादो।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[1] ॥ ११ ॥

गुणट्ठाणपरिवाडीए उक्कस्संतरपरूवणा कीरदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि कादूण पढमसम्मत्तं गेण्हंतेण अणंतो संसारो छिंदिदूण गहिदसम्मत्तपढमसमए अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो। उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गंतूणंतरिदो। मिच्छत्तेणद्धपोग्गलपरियट्टं भमिय अपच्छिमे भवे संजमं संजमासंजमं वा गंतूण कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावसेसे

अब प्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं– एक प्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तसंयत होकर सर्वलघु कालके पश्चात् फिर भी प्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकारसे प्रमत्तसंयतका अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ।

अब अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं– एक अप्रमत्तसंयत जीव उपशमश्रेणिपर चढ़कर पुनः लौटा और अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर अप्रमत्तसंयतका उपलब्ध हुआ।

शंका—नीचेके असंयतादि गुणस्थानोंमें भेजकर अप्रमत्तसंयतका जघन्य अन्तर क्यों नहीं बताया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीके सभी गुणस्थानोंके कालोंसे प्रमत्तादि नीचेके एक गुणस्थानका काल भी संख्यातगुणा होता है।

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ११ ॥

अब गुणस्थान-परिपाटीसे उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा करते हैं– एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों करण करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए अनन्त संसार छेदकर सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वह संसार अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया। पुनः उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रह कर (१) उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें संयमको, अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर, कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी होकर अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण संसारके अवशेष रह जाने पर परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि

---

१ उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। स. सि. १, ८.

संसारे परिणामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं (२) । पुणो अप्पमत्त-भावेण संजमं पडिवज्जिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) खवगसेडी-पाओग्गविसोहीए विसुज्झिय (५) अपुव्वो (६) अणियट्टी (७) सुहुमो (८) खीणो (९) सजोगी (१०) अजोगी (११) होदूण परिणिउदो । एवमेक्कारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टमसंजदसम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं होदि ।

संजदासंजदस्स उच्चदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि कादूण गहिदसम्मत्तपढमसमए सम्मत्तगुणेण अणंतो संसारो छिण्णो अद्धपोग्गलपरियट्ट-मेत्तो कदो । सम्मत्तेण सह गहिदसंजमासंजमेण अंतोमुहुत्तमच्छिय छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गदो (१) अंतरिदो मिच्छत्तेण अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय अपच्छिमे भवे असंजमं सम्मत्तं संजमं वा पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होदूण परिणाम-पच्चएण संजमासंजमं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं। अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवज्जिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) खवगसेढीपाओग्गविसोहीए विसुज्झिय (५) अपुव्वो (६) अणियट्टी (७) सुहुमो (८) खीणकसाओ (९) सजोगी (१०)

होगया । इस प्रकार सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हुआ (२) । पुनः अप्रमत्त-भावके साथ संयमको प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होकर (५) अपूर्वकरणसंयत (६) अनिवृत्तिकरणसंयत (७) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (८) क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (९) सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाणको प्राप्त हो गया । इस प्रकारसे इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरि-वर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों करण करके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्वगुणके द्वारा अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण किया । पुनः सम्यक्त्वके साथ ही ग्रहण किये गये संयमासंयमके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहजाने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो (१) अन्तरको प्राप्त हो गया, और मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें असंयम-सहित सम्यक्त्वको, अथवा संयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी हो, परि-णामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकारसे इस गुणस्थानका अन्तर प्राप्त होगया । पुनः अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होकर (५) अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) क्षीणकषाय (९)

अजोगी (११) होदूण परिणिव्वुदो। एवमेक्कारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्ट-मुक्कस्संतरं संजदासंजदस्स होदि ।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जंतेण अणंतो संसारो छिंदिओ, अद्धपोग्गलपरियट्ट-मेत्तो कदो । अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) पमत्तो जादो (२) । आदी दिट्ठा । छावलिया-वसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गंतूणंतरिय मिच्छत्तेणद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिय अपच्छिमे भवे सासंजमसम्मत्तं संजमासंजमं वा पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होऊण अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवज्जिय पमत्तो जादो (३) । लद्धमंतरं । तदो खवगसेढी-पाओग्गो अप्पमत्तो जादो (४) । पुणो अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) खीणकसाओ (८) सजोगी (९) अजोगी (१०) होदूण णिव्वाणं गदो । एवं दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं पमत्तस्सुक्कस्संतरं होदि ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि वि करणाणि करिय उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णेण छेत्तूण अणंतो संसारो अद्धपोग्गल-

---

सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब प्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होते हुए अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया। पुनः उस अवस्थामें अन्तर्मुहूर्त रह कर (१) प्रमत्तसंयत हुआ (२)। इस प्रकारसे यह अर्धपुद्गलपरिवर्तनकी आदि दृष्टिगोचर हुई। पुनः उपशम-सम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहजाने पर सासादन गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें असंयमसहित सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदक-सम्यक्त्वी हो अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर प्रमत्तसंयत हो गया (३)। इस प्रकारसे इस गुणस्थानका अन्तर प्राप्त होगया। पश्चात् क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। पुनः अपूर्वकरणसंयत (५) अनिवृत्तिकरणसंयत (६) सूक्ष्म-साम्परायसंयत (७) क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (८) सयोगिकेवली (९) और अयोगि-केवली (१०) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्ध-पुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं– एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्वको और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र

परियट्टमेत्तो पढमसमए कदो। तत्थंतोमुहुत्तमच्छिय (१) पमत्तो जादो अंतरिदो मिच्छत्तेण अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिय अपच्छिमे भवे सम्मत्तं संजमासंजमं वा पडिवज्जिय सत्त कम्माणि खविय अप्पमत्तो जादो (२)। लद्धमंतरं। पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (३) अप्पमत्तो जादो (४)। अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) खीणकसाओ (८) सजोगी (९) अजोगी (१०) होदूण णिव्वाणं गदो। (एवं) दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं (अप्पमत्तस्सुक्कस्संतरं होदि)।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १२ ॥

अपुव्वस्स ताव उच्चदे– सत्तट्ठ जणा वहुआ वा अपुव्वकरणउवसामगद्धाए खीणाए अणियट्टिउवसामगा वा अप्पमत्ता वा कालं करिय देवा जादा। एगसमयमंतरिदमपुव्वगुणट्ठाणं। तदो विदियसमए अप्पमत्ता वा ओदरंता अणियट्टिणो वा अपुव्वकरणउवसामगा जादा। लद्धमेगसमयमंतरं। एवं चेव अणियट्टिउवसामगाणं सुहुमउवसामगाणं उवसंतकसायाणं च जहण्णंतरमेगसमओ वत्तव्वो।

किया। उस अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) प्रमत्तसंयत हुआ और अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल परिवर्तन कर अन्तिम भवमें सम्यक्त्व अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर दर्शनमोहकी तीन और अनन्तानुबंधीकी चार, इन सात प्रकृतियोंका क्षपण कर अप्रमत्तसंयत हो गया (२)। इस प्रकार अप्रमत्तसंयतका अन्तरकाल उपलब्ध हुआ। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें सहस्रों परावर्तनोंको करके (३) अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) क्षीणकषाय (८) सयोगिकेवली (९) और अयोगिकेवली (१०) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है।

उपशमश्रेणीके चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल तक होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १२ ॥

उनमेंसे पहले अपूर्वकरण उपशामकका अन्तर कहते हैं– सात आठ जन, अथवा वहुतसे जीव, अपूर्वकरण गुणस्थानके उपशामककाल क्षीण हो जाने पर अनिवृत्तिकरण उपशामक अथवा अप्रमत्तसंयत होकर तथा मरण करके देव हुए। इस प्रकार एक समयके लिये अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया। तत्पश्चात् द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत, अथवा उतरते हुए अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक होगए। इस प्रकार एक समय प्रमाण अन्तरकाल लब्ध होगया। इसी प्रकारसे अनिवृत्तिकरण उपशामक, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और उपशान्तकषाय उपशामकोंका एक समय प्रमाण जघन्य अन्तर कहना चाहिए।

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वासपुधत्तं[1] **॥ १३ ॥**

तं जधा– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा अपुव्वउवसामगा अणियट्टिउवसामगा अप्पमत्ता वा कालं करिय देवा जादा। अंतरिदमपुव्वगुणट्ठाणं जाव उक्कस्सेण वासपुधत्तं। तदो अदिक्कंते वासपुधत्ते सत्तट्ठ जणा बहुआ वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणउवसामगा जादा। लद्धमुक्कस्संतरं वासपुधत्तं। एवं चेव सेसतिण्हमुवसामगाणं वासपुधत्तंतरं वत्तव्वं, विसेसाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] **॥ १४ ॥**

तं जधा– एक्को अपुव्वकरणो अणियट्टिउवसामगो सुहुमउवसामगो उवसंतकसाओ होदूण पुणो वि सुहुमउवसामगो अणियट्टिउवसामगो होदूण अपुव्वउवसामगो जादो। लद्धमंतरं। एदाओ पंच वि अद्धाओ एक्कट्ठं कदे वि अंतोमुहुत्तमेव होदि त्ति जहण्णंतरमंतोमुहुत्तं होदि।

एवं चेव सेसतिण्हमुवसामगाणमेगजीवजहण्णंतरं वत्तव्वं। णवरि अणियट्टि-

---

उक्त चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १३ ॥

जैसे–सात आठ जन, अथवा बहुतसे अपूर्वकरण उपशामक जीव, अनिवृत्तिकरण उपशामक अथवा अप्रमत्तसंयत हुए और वे मरण करके देव हुए। इस प्रकार यह अपूर्वकरण उपशामक गुणस्थान उत्कृष्टरूपसे वर्षपृथक्त्वके लिए अन्तरको प्राप्त होगया। तत्पश्चात् वर्षपृथक्त्वकालके व्यतीत होनेपर सात आठ जन, अथवा बहुतसे अप्रमत्तसंयत जीव, अपूर्वकरण उपशामक हुए। इस प्रकार वर्षपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होगया। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणादि तीनों उपशामकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहना चाहिए, क्योंकि, अपूर्वकरण उपशामकके अन्तरसे तीनों उपशामकोंके अन्तरमें कोई विशेषता नहीं है।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

जैसे– एक अपूर्वकरण उपशामक जीव, अनिवृत्ति उपशामक, सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और उपशान्तकषाय उपशामक होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और अनिवृत्तिकरण उपशामक होकर अपूर्वकरण उपशामक होगया। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर उपलब्ध हुआ। ये अनिवृत्तिकरणसे लगाकर पुनः अपूर्वकरण उपशामक होनेके पूर्व तकके पांचों ही गुणस्थानोंके कालोंको एकत्र करने पर भी वह काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है, इसलिए जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है।

इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका एक जीवसम्बन्धी जघन्य अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सूक्ष्मसाम्परायिक

---

१ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि, १, ८.

उवसामगस्स दो सुहुमद्धाओ एगा उवसंतकसायद्धा च जहण्णंतरं होदि। सुहुमउवसामगस्स उवसंतकसायद्धा एक्का चेव जहण्णंतरं होदि। उवसंतकसायस्स पुण हेट्ठा उवसंतकसायमोदरिय सुहुमसांपराओ अणियट्टिकरणो अपुव्वकरणो अप्पमत्तो होदूण पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय अप्पमत्तो अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो होदूण पुणो उवसंतकसायगुणट्ठाणं पडिवण्णस्स णवद्धासमूहमेत्तमंतोमुहुत्तमंतरं होदि।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[1] ॥ १५ ॥

अपुव्वस्स ताव उच्चदे— एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि करिय उवसमसम्मत्तं संजमं च अक्कमेण पडिवण्णपढमसमए अणंतसंसारं छिंदिय अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तं कदेण अप्पमत्तद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ता अणुपालिदा (१)। तदो पमत्तो जादो (२)। वेदगसम्मत्तमुवणमिय[2] (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) उवसमसेढीपाओग्गो अप्पमत्तो जादो (५)। अपुव्वो (६) अणियट्टी (७) सुहुमो (८) उवसंतकसायो (९) पुणो सुहुमो (१०) अणियट्टी (११) अपुव्वकरणो जादो (१२)।

सम्बन्धी दो अन्तर्मुहूर्तकाल और उपशान्तकषायसम्बन्धी एक अन्तर्मुहूर्तकाल, ये तीनों मिलाकर जघन्य अन्तर होता है। सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकके उपशान्तकषाय-सम्बन्धी एक अन्तर्मुहूर्तकाल ही जघन्य अन्तर होता है। किन्तु उपशान्तकषाय उपशामकका उपशान्तकषायसे नीचे उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय (१) अनिवृत्तिकरण (२) अपूर्वकरण (३) और अप्रमत्तसंयत (४) होकर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (५) पुनः अप्रमत्त (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) और सूक्ष्मसाम्परायिक होकर (९) पुनः उपशान्तकषाय गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके नौ अद्धाओंका सम्मिलित प्रमाण अन्तर्मुहूर्तकाल अन्तर होता है।

उक्त चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध-पुद्गलपरिवर्तन काल है ॥ १५ ॥

इनमेंसे पहले एक जीवकी अपेक्षा अपूर्वकरण गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही अनन्त संसारको छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र करके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अप्रमत्तसंयतके कालका अनुपालन किया (१)। पीछे प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (३) सहस्रों प्रमत्त-अप्रमत्त परावर्तनोंको करके (४) उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होगया (५)। पुनः अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) उपशान्तकषाय (९), पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१०) अनिवृत्तिकरण (११) और पुनः अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती होगया (१२)। पश्चात् नीचे

---

१ उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु '-मुवसामिय' इति पाठः।

हेट्ठा पडिय अंतरिदो अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण अपच्छिमे भवे दंसणत्तिगं खविय अपुव्वुवसामगो जादो (१३)। लद्धमंतरं। तदो अणियट्टी (१४) सुहुमो (१५) उवसंतकसाओ (१६) जादो। पुणो पडिणियत्तो सुहुमो (१७) अणियट्टी (१८) अपुव्वो (१९) अप्पमत्तो (२०) पमत्तो (२१) पुणो अप्पमत्तो (२२) अपुव्व-खवगो (२३) अणियट्टी (२४) सुहुमो (२५) खीणकसाओ (२६) सजोगी (२७) अजोगी (२८) होदूण णिव्वुदो। एवमट्ठावीसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टमपुव्वकरणस्सुक्कस्संतरं होदि। एवं तिण्हमुवसामगाणं। णवरि परिवाडीए छव्वीसं चउवीसं वावीसं अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं तिण्हमुक्कस्संतरं होदि।

चदुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १६ ॥

तं जहा– सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अपुव्वकरणखवगा एक्कम्हि चेव समए सव्वे अणियट्टिखवगा जादा। एगसमयमंतरिदमपुव्वगुणट्ठाणं। विदियसमए सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणखवगा जादा। लद्धमंतरमेगसमओ। एवं

गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिवर्तन करके अन्तिम-भवमें दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका क्षपण करके अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१३)। इस प्रकार अन्तरकाल उपलब्ध होगया। पुनः अनिवृत्तिकरण (१४) सूक्ष्मसाम्परायिक (१५) और उपशान्तकषाय उपशामक होगया (१६)। पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्परायिक (१७) अनिवृत्तिकरण (१८) अपूर्वकरण (१९) अप्रमत्तसंयत (२०) प्रमत्तसंयत (२१) पुनः अप्रमत्तसंयत (२२) अपूर्वकरण क्षपक (२३) अनिवृत्तिकरण क्षपक (२४) सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (२५) क्षीणकषाय क्षपक (२६) सयोगिकेवली (२७) और अयोगिकेवली (२८) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अट्ठाईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-काल अपूर्वकरणका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे तीनों उपशामकोंका अन्तर जानना चाहिए। किन्तु विशेष बात यह है कि परिपाटीक्रमसे अनिवृत्तिकरण उप-शामकके छब्बीस, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके चौबीस और उपशान्तकषायके बाईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ १६ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक एक ही समयमें सबके सब अनिवृत्तिक्षपक होगये। इस प्रकार एक समयके लिए अपूर्व-करण गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया। द्वितीय समयमें सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत एक साथ अपूर्वकरण क्षपक हुए। इस प्रकारसे अपूर्वकरण क्षपकका एक समय प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होगया। इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी

---

१ चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

सेसगुणट्ठाणाणं वि[1] अंतरमेगसमयो वत्तव्वो ।

उक्कस्सेण छम्मासं[2] ॥ १७ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अपुव्वकरणखवगा अणियट्टिखवगा जादा। अंतरिदमपुव्वखवगगुणट्ठाणं उक्कस्सेण जाव छम्मासा त्ति । तदो सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अप्पमत्ता अपुव्वखवगा जादा । लद्धं छम्मासुक्कस्संतरं । एवं सेसगुणट्ठाणाणं पि छम्मासुक्कस्संतरं वत्तव्वं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ १८ ॥

कुदो ? खवगाणं पदणाभावा ।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[4] ॥ १९ ॥

कुदो ? सजोगिकेवलिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २० ॥

अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहना चाहिए ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है ॥ १७ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अपूर्वकरणक्षपक जीव अनिवृत्तिकरण क्षपक हुए । अतः अपूर्वकरणक्षपक गुणस्थान उत्कर्षसे छह मासके लिए अन्तरको प्राप्त होगया । तत्पश्चात् सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरणक्षपक हुए । इस प्रकारसे छह मास उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होगया । इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी छह मासका उत्कृष्ट अन्तरकाल कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त चारों क्षपकोंका और अयोगिकेवलीका अन्तर नहीं होता है, निरंतर है ॥ १८ ॥

क्योंकि, क्षपक श्रेणीवाले जीवोंके पतनका अभाव है ।

सयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है ॥ १९ ॥

क्योंकि, सयोगिकेवली जिनोंसे विरहित कालका अभाव है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २० ॥

---

१ प्रतिषु 'हि' इति पाठः । २ उत्कर्षेण षण्मासाः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

४ सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

कुदो ? सजोगीणमजोगिभावेण परिणदाणं पुणो सजोगिभावेण परिणमणाभावा ।

एवमोघाणुगमो समत्तो ।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[१] ॥ २१ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि विरहिदपुढवीणं सव्वद्धमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[२] ॥ २२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को मिच्छादिट्ठी दिट्ठमग्गो परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं वा सम्मत्तं वा पडिवज्जिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मिच्छादिट्ठी जादो । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं । सम्मादिट्ठिं पि मिच्छत्तं णेदूण सव्वजहण्णेणंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवज्जाविय असंजदसम्मादिट्ठिस्स जहण्णंतरं वत्तव्वं ।

क्योंकि, अयोगिकेवलीरूपसे परिणत हुए सयोगिकेवलियोंका पुनः सयोगिकेवलीरूपसे परिणमन नहीं होता है ।

इस प्रकारसे ओघानुगम समाप्त हुआ ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें, नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २१ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित रत्नप्रभादि पृथिवियां किसी भी कालमें नहीं पायी जाती हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर कहते हैं— देखा है मार्गको जिसने ऐसा एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, पुनः मिथ्यादृष्टि होगया । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तरकाल लब्ध हुआ । इसी प्रकार किसी एक असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीको मिथ्यात्व गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त कराकर असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य अन्तर कहना चाहिए ।

१ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ नारकाणां सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[१] ॥ २३ ॥

तं जहा– मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं वुच्चदे। एक्को तिरिक्खो मणुसो वा अट्ठावीस-संतकम्मिओ अधो सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो थोवावसेसे आउए मिच्छत्तं गदो (४)। लद्धमंतरं। तिरिक्खाउअं बंधिय (५) विस्समिय (६) उवट्टिदो। एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं वुच्चदे– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीस-संतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी अधो सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) संकिलिट्ठो मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। अवसाणे तिरिक्खाउअं बंधिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय विसुद्धो होदूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (५)। लद्धमंतरं। भूओ मिच्छत्तं गंतूणुव्वट्टिदो (६)। एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठि-उक्कस्संतरं होदि।

मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २३ ॥

जैसे, पहले मिथ्यादृष्टि नारकीका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोह कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य, नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१), विश्राम ले (२), विशुद्ध हो (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर आयुके थोड़े अवशेष रहने पर अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः तिर्यंच आयुको बांधकर (५), विश्राम लेकर (६) निकला। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोह कर्मकी अट्ठाईस कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यंच, अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पुनः संक्लिष्ट हो मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमें तिर्यंचायु बांधकर पुनः अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके विशुद्ध होकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार इस गुणस्थानका अन्तर लब्ध हुआ। पुनः मिथ्यात्वको जाकर नरकसे निकला। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

१ उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २४ ॥

तं जहा– णिरयगदीए ट्ठिदसासणसम्मादिट्ठिणो सम्मामिच्छादिट्ठिणो च सव्वे गुणंतरं गदा। दो वि गुणट्ठाणाणि एगसमयमंतरिदाणि। पुणो विदियसमए के वि उवसमसम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा, मिच्छादिट्ठिणो असंजदसम्मादिट्ठिणो च सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णा। लद्धमंतरं दोण्हं गुणट्ठाणाणमेगसमओ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ २५ ॥

तं जहा– णिरयगदीए ट्ठिदसासणसम्मादिट्ठिणो सम्मामिच्छादिट्ठिणो च सव्वे अण्णगुणं गदा। दोण्णि वि गुणट्ठाणाणि अंतरिदाणि। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो दोण्हं गुणट्ठाणाणमंतरकालो होदि। पुणो तेत्तियमेत्तकाले वदिक्कंते अप्पप्पणो कारणीभूदगुणट्ठाणेहिंतो दोण्हं गुणट्ठाणाणं संभवे जादे लद्धमुक्कस्संतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर होता है ॥ २४ ॥

जैसे— नरकगतिमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि सभी जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए, और दोनों ही गुणस्थान एक समयके लिए अन्तरको प्राप्त होगये। पुनः द्वितीय समयमें कितने ही उपशमसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार दोनों ही गुणस्थानोंका अन्तर एक समय प्रमाण लब्ध होगया।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥२५॥

जैसे— नरकगतिमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ये सभी जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए और दोनों ही गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगये। इन दोनों गुणस्थानोंका अन्तरकाल उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है। पुनः उतना काल व्यतीत होनेपर अपने अपने कारणभूत गुणस्थानोंसे उक्त दोनों गुणस्थानोंके संभव होजानेपर पल्योपमका असंख्यातवां भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर लब्ध होगया।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागाः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २६ ॥

तं जहा– 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो सासणस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, सम्मामिच्छाइट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं होदि। दोण्हं णिदरिसणं– एक्को णेरइओ अणादियमिच्छादिट्ठी उवसमसम्मत्तप्पाओग्गसादियमिच्छादिट्ठी वा तिण्णि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। उवसमसम्मत्तेण केत्तियं हि कालमच्छिय आसाणं गंतूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण उव्वेलणखंडएहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीओ सागरोवमपुधत्तादो हेट्ठा करिय पुणो तिण्णि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए आसाणं गदो। लद्धमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी मिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूणंतोमुहुत्तमंतरिय पुणो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो। लद्धमंतोमुहुत्त-मंतरं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर एक जीवकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६ ॥

जैसे— जैसा उद्देश होता है, उसी प्रकारका निर्देश होता है, इस न्यायके अनुसार सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग, और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

अब क्रमशः सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, इन दोनों गुणस्थानोंके अन्तरका उदाहरण कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि नारकी जीव अथवा उपशमसम्यक्त्वके प्रायोग्य सादि मिथ्यादृष्टि जीव, तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उपशमसम्यक्त्वके साथ कितने ही काल रहकर पुनः सासादन गुणस्थानको जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तरको प्राप्त होकर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालसे उद्वेलना-कांडकोंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी स्थितियोंको सागरोपमपृथक्त्वसे नीचे अर्थात् कम करके पुनः तीनों करण करके और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होगया। एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और वहां पर अन्तर्मुहूर्तका अन्तर देकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर लब्ध होगया।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २७ ॥

तं जधा– एक्को सादिओ अणादिओ वा मिच्छादिट्ठी सत्तमपुढवीणेरइएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (४) आसाणं गंतूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो । अवसाणे तिरिक्खाउअं बंधिय विसुद्धो होदूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयावसेसाए आसाणं गदो । लद्धमंतरं । तदो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) उवट्टिदो । एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि समयाहिएहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि सासणुक्कस्संतरं होदि ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को तिरिक्खो मणुसो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ सत्तमपुढवीणेरइएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४) । पुणो सम्मत्तं मिच्छत्तं वा गंतूण देसूणतेत्तीसाउट्ठिदिमंतरिय मिच्छत्तेणाउअं बंधिय विस्समिय सम्मामिच्छत्तं गदो (५) । तदो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (६) उवट्टिदो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम काल है ॥२७॥

जैसे– एक सादि अथवा अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पुनः सासादन गुणस्थानमें जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो, अन्तरको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमें तिर्यंच आयुको बांधकर विशुद्ध हो उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तर्मुहूर्त रह (५) निकला। इस प्रकार समयाधिक पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। पुनः सम्यक्त्वको अथवा मिथ्यात्वको जाकर देशोन तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थितिको अन्तररूपसे विताकर मिथ्यात्वके द्वारा आयुको बांधकर विश्राम ले सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५)। पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त रहकर (६) निकला। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदसत्तमपुढवीणेरइयाणं सव्वकालमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अण्णगुणं णेदूण सव्वजहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण पुणो तं चेव गुणं पडिवज्जाविदे अंतोमुहुत्तमेत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ ३० ॥

एत्थ तिण्णि-आदीसु सागरोवमसद्दो पादेक्कं संबंधणिज्जो । 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो पढमीए पुढवीए देसूणमेगं सागरोवमं, विदियाए देसूणतिण्णि सागरोवमाणि, तदियाए देसूणसत्तसागरोवमाणि, चउत्थीए देसूणदससागरोवमाणि,

प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २८ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित सातों पृथिवियोंमें नारकियोंका सर्वकाल अभाव है ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दोनोंको ही अन्य गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त कालसे पुनः उसी गुणस्थानमें पहुंचाने पर अन्तर्मुहूर्त मात्र कालका अन्तर पाया जाता है ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर देशोन एक, तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम काल है ॥ ३० ॥

यहां पर तीन आदि संख्याओंमें सागरोपम शब्द प्रत्येक पर सम्बन्धित करना चाहिए । जैसा उद्देश होता है, वैसा निर्देश होता है, इस न्यायसे प्रथम पृथिवीमें देशोन एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवीमें देशोन तीन सागरोपम, तीसरी पृथिवीमें देशोन सात सागरोपम, चौथीमें देशोन दश सागरोपम, पाचवींमें देशोन सत्तरह सागरोपम, छठीमें

१ उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

पंचमीए देसूणसत्तारससागरोवमाणि, छट्ठीए देसूणबावीससागरोवमाणि, सत्तमीए देसूणतेत्तीससागरोवमाणि त्ति वत्तव्वं। णवरि दोण्हं पि गुणट्ठाणाणं सत्तमाए पुढवीए देसूणपमाणं छअंतोमुहुत्तमेत्तं। तं च णिरओघे परूविदमिदि णेह परूविज्जदे। सेसपुढवीसु मिच्छादिट्ठीणं सग-सगआउट्ठिदीओ चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ। के ते चत्तारि अंतोमुहुत्ता? छ पज्जत्तीओ समाणणे एक्को, विस्समणे विदिओ, विसोहिआऊरणे तदिओ, अवसाणे मिच्छत्तं गदस्स चउत्थो अंतोमुहुत्तो। असंजदसम्मादिट्ठीणं सेसपुढवीसु सग-सगआउट्ठिदीओ पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ अंतरं होदि। तं जधा- एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ पढमादि जाव छट्ठीसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्तं पडिवण्णो (४) सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। सगट्ठिदिमच्छिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (५) सासणं गंतूण-व्वट्टिदो। एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ[1] सग-सगट्ठिदीओ सम्मत्तुक्कस्संतरं होदि।

देशोन बाईस सागरोपम और सातवींमें देशोन तेतीस सागरोपम अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि प्रथम और चतुर्थ, इन दोनों गुणस्थानोंका सातवीं पृथिवीमें देशोनका प्रमाण छह अन्तर्मुहूर्तमात्र है। वह नारकियोंके ओघ वर्णनमें कह आये हैं, इसलिए यहां नहीं कहते हैं। शेष अर्थात् प्रथमसे लगाकर छठी पृथिवीतककी छह पृथिवियोंमें मिथ्यादृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी आयुस्थिति प्रमाण है।

शंका—वे चार अन्तर्मुहूर्त कौनसे हैं?

समाधान—छहों पर्याप्तियोंके सम्यक् निष्पन्न करनेमें एक, विश्राममें दूसरा, विशुद्धिको आपूरण करनेमें तीसरा, और आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेका चौथा अन्तर्मुहूर्त है।

असंयतसम्यग्दृष्टियोंका शेष पृथिवियोंमें पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी आयुस्थिति प्रमाण अन्तर होता है। वह इस प्रकार है- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य प्रथम पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक कहीं भी उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पुनः सर्वलघुकालसे मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ, और अपनी स्थिति प्रमाण मिथ्यात्वमें रहकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५)। पुनः सासादन गुणस्थानमें जाकर निकला। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी स्थिति वहांके असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

---

१ प्रतिषु 'ऊणादे' इति पाठः।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३१ ॥

एदस्स अत्थो सुगमो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२ ॥

जधा णिरओघम्हि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपरूवणा कदा, तहा एत्थ वि कादव्वा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ३३ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय, णिरओघम्हि परूविदत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थे भण्णमाणे– सत्तमपुढवीसासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छा-

---

उक्त सातों ही पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय है ॥ ३१ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

उक्त पृथिवियोंमें ही उक्त गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ३२ ॥

जिस प्रकार नारकियोंके ओघ अन्तरवर्णनमें पल्योपमके असंख्यातवें भागकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां पर भी करना चाहिए ।

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३ ॥

यह सूत्र भी सरल ही है, क्योंकि, नारकियोंके ओघ अन्तरवर्णनमें प्ररूपित किया जा चुका है ।

सातों ही पृथिवियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर क्रमशः देशोन एक, तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम है ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहने पर– सातवीं पृथिवीके सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्य-

दिट्ठीणं णिरओघुक्कस्सभंगो, सत्तमपुढविं चेवमास्सिदूण तत्थेदेसिमुक्कस्सपरूवणादो। पढमादिछपुढवीसासणाणमुक्कस्से भण्णमाणे– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा पढमादिछसु पुढवीसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिऊण आसाणं गदो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ अच्छिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयावसेसाए सासणं गंतूणुव्वट्टिदो। एवं समयाहियचदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ सासणाणुक्कस्संतरं होदि।

एदेसिं सम्मामिच्छादिट्ठीणं उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अप्पिदणेरइएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूणंतरिदो। सगट्ठिदिमच्छिय सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (५)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूण उव्वट्टिदो (६)। छहि

ग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर नारकसामान्यके उत्कृष्ट अन्तरके समान है, क्योंकि, ओघवर्णनमें सातवीं पृथिवीका आश्रय लेकर ही इन दोनों गुणस्थानोंकी उत्कृष्ट अन्तरप्ररूपणा की गई है। प्रथमादि छह पृथिवियोंके सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कहने पर– एक तिर्यंच अथवा मनुष्य प्रथमादि छह पृथिवियोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ (४)। फिर मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त होगया। पुनः अपनी अपनी पृथिवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण रहकर आयुके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर निकला। इस प्रकार एक समयसे अधिक चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थिति उस उस पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब इन्हीं पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य विवक्षित पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। पुनः मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ, और जिस गुणस्थानको गया उसमें अपनी आयुस्थितिप्रमाण रहकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तरकाल प्राप्त होगया। पुनः मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर निकला (६)। इन छहों

अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि । सव्व-गदीहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणिस्सरणकमो वुच्चदे । तं जहा– जो जीवो सम्मादिट्ठी होदूण आउअं बंधिय सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जदि, सो सम्मत्तेणेव णिप्फिददि । अह मिच्छादिट्ठी होदूण आउअं बंधिय जो सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जदि, सो मिच्छत्तेणेव णिप्फिददि । कधमेदं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो[1] ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ ३५ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३६ ॥

कुदो ? तिरिक्खमिच्छादिट्ठिमण्णगुणं णेदूण सव्वजहण्णेण कालेण पुणो तस्सेव गुणस्स तम्मि ढोइदे अंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब सर्व गतियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके निकलनेका क्रम कहते हैं । वह इस प्रकार है– जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर और आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है, वह सम्यक्त्वके साथ ही उस गतिसे निकलता है । अथवा, जो मिथ्यादृष्टि होकर और आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है, वह मिथ्यात्वके साथ ही निकलता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यंच गतिमें, तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६ ॥

क्योंकि, तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवको अन्य गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः उसी गुणस्थानमें लौटा ले जानेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

---

१ सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥ सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं । तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥ गो. जी. २३, २४.

२ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ ३७ ॥

णिदरिसणं– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ तिपलिदोवमाउ-ट्ठिदिएसु कुक्कुड-मक्कडादिएसु उववण्णो, वे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतो।

एत्थ वे उवदेसा। तं जहा– तिरिक्खेसु वेमास-मुहुत्तपुधत्तस्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च जीवो पडिवज्जदि। मणुसेसु गब्भादिअट्ठवस्सेसु अंतोमुहुत्तब्भहिएसु सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि त्ति। एसा दक्खिणपडिवत्ती। दक्खिणं उज्जुवं आइरियपरंपरागदमिदि एयट्ठो। तिरिक्खेसु तिण्णिपक्ख-तिण्णिदिवस-अंतोमुहुत्त-स्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च पडिवज्जदि। मणुसेसु अट्ठवस्साणमुवरि सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि त्ति। एसा उत्तरपडिवत्ती। उत्तरमणुज्जुवं आइरियपरंपराए णागदमिदि एयट्ठो।

पुणो मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। अवसाणे आउअं बंधिय मिच्छत्तं गदो। पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय कालं कादूण सोहम्मीसाणदेवेसु उववण्णो। आदिल्लेहि मुहुत्तपुधत्तब्भहिय-वेमासेहि अवसाणे उवलद्ध-वेअंतोमुहुत्तेहि य ऊणाणि तिण्णि

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ३७ ॥

इसका उदाहरण– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले कुक्कुट-मर्कट आदिमें उत्पन्न हुआ और दो मास गर्भमें रहकर निकला।

इस विषयमें दो उपदेश हैं। वे इस प्रकार हैं— तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव, दो मास और मुहूर्त-पृथक्त्वसे ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त करता है। मनुष्योंमें गर्भकालसे प्रारंभकर, अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके व्यतीत हो जाने-पर सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयमको प्राप्त होता है। यह दक्षिण प्रतिपत्ति है। दक्षिण, ऋजु और आचार्यपरम्परागत, ये तीनों शब्द एकार्थक हैं। तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तके ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त होता है। मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ जीव आठ वर्षोंके ऊपर सम्यक्त्व, संयम और संयमा-संयमको प्राप्त होता है। यह उत्तर प्रतिपत्ति है। उत्तर, अनृजु और आचार्यपरम्परासे अनागत, ये तीनों एकार्थवाची हैं।

पुनः मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पश्चात् अपनी आयुके अन्तमें आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हो, काल करके सौधर्म-ऐशान देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार आदिके मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे और आयुके अवसानमें उपलब्ध दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन

१ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि देशोनानि। स. सि. १, ८.

पलिदोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं[1] ॥ ३८ ॥

कुदो ? ओघचदुगुणट्ठाणणाणेगजीव-जहण्णुक्कस्संतरकालेहिंतो तिरिक्खगदिचदु-गुणट्ठाणणाणेगजीव-जहण्णुक्कस्संतरकालाणं भेदाभावा । तं जहा-- सासणसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

एत्थ अंतरमाहप्पजाणावणट्ठमप्पाबहुगं उच्चदे-- सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठि-रासी । तस्सेव कालो णाणाजीवगदो असंखेज्जगुणो । तस्सेव अंतरमसंखेज्जगुणं । एदमप्पा-बहुगं ओघादिसव्वमग्गणासु सासणाणं पउंजिदव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदस्स कालस्स साहणउवएसो उच्चदे । तं जहा-- तसेसु अच्छिदूण जेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिदाणि सो सागरोवमपुधत्तेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंत-कम्मेण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जदि । एदम्हादो उवरिमासु ट्ठिदीसु जदि सम्मत्तं गेण्हदि, तो णिच्छएण वेदगसम्मत्तमेव गेण्हदि । अध एइंदिएसु जेण सम्मत्त-

पल्योपमकाल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तिर्यंचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८ ॥

क्योंकि, ओघके इन चार गुणस्थानोंसम्बन्धी नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालोंसे तिर्यंचगतिसम्बन्धी इन्हीं चार गुणस्थानोंसम्बन्धी नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालोंका कोई भेद नहीं है । वह इस प्रकार है-- सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ।

यहांपर अन्तरके माहात्म्यको वतलानेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं-- सासादन-सम्यग्दृष्टिराशि सबसे कम है । नानाजीवगत उसीका काल असंख्यातगुणा है । और उसीका अन्तर, कालसे असंख्यातगुणा है । यह अल्पबहुत्व ओघादि सभी मार्गणाओंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका कहना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । इस कालके साधक उपदेशको कहते हैं । वह इस प्रकार है-- त्रस जीवोंमें रहकर जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृतियोंका उद्वेलन किया है, वह जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिके सत्त्वरूप सागरोपमपृथक्त्वके पश्चात् उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है । यदि इससे ऊपरकी स्थिति रहनेपर सम्यक्त्वको ग्रहण करता है, तो निश्चयसे वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त होता है । और एकेन्द्रियोंमें जा करके जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां चतुर्णां सामान्योक्तमन्तरम् । स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिदाणि, सो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणसागरोवममेत्ते सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिसंतकम्मे सेसे तसेसुववज्जिय उवसमसम्मत्तं पडिवज्जदि। एदाहि ट्ठिदीहि ऊणसेसकम्मट्ठिदिउव्वेल्लणकालो जेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो तेण सासणेगजीवजहण्णंतरं पि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं होदि।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। णवरि विसेसो एत्थ अत्थि तं भणिस्सामो— एक्को तिरिक्खो अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए संसारमणंतं छिंदिय पोग्गलपरियट्टद्धं काऊण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। आसाणं गदो मिच्छत्तं गंतूणंतरिय (१) अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय दुचरिमे भवे पंचिदियतिरिक्खेसु उववज्जिय मणुसेसु आउअं बंधिय तिण्णि करणाणि करिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। उवसमसम्मत्तद्धाए मणुसगदिपाओग्गआवलियासंखेज्जदिभागावसेसाए आसाणं गदो। लद्धमंतरं। आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तसासणद्धमच्छिय मदो मणुसो जादो सत्त मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतो सत्त वस्साणि अंतोमुहुत्तब्भहियपंचमासे च गमेदूण (२) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (३) अणंताणुबंधी विसंजोइय (४) दंसणमोहणीयं खविय (५) अप्पमत्तो (६) पमत्तो (७) पुणो अप्पमत्तो (८) पुणो अपुव्वादिछहि अंतोमुहुत्तेहि

की है, वह पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमकालमात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिसत्त्व अवशेष रहनेपर त्रस जीवोंमें उत्पन्न होकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है। इन स्थितिओंसे कम शेष कर्मस्थिति-उद्वेलनकाल चूंकि पल्योपमके असंख्यातवें भाग है, इसलिए सासादन गुणस्थानका एकजीवसम्बन्धी जघन्य अन्तर भी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होता है।

सासादन गुणस्थानका एक जीवसम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। पर यहां जो विशेष बात है, उसे कहते हैं— अनादि मिथ्यादृष्टि एक तिर्यंच तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अनन्त संसारको छेदकर और अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सासादन गुणस्थानको गया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर (१) अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर और मनुष्योंमें आयुको बांधकर, तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें मनुष्यगतिके योग्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र कालके अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे उक्त अन्तर लब्ध हो गया। आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल सासादन गुणस्थानमें रहकर मरा और मनुष्य होगया। यहांपर सात मास गर्भमें रहकर निकला तथा सात वर्ष और अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पांच मास बिताकर (२) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (३)। पुनः अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन करके (४) दर्शनमोहनीयका क्षयकर (५) अप्रमत्त (६) प्रमत्त (७) पुनः अप्रमत्त (८) हो, पुनः अपूर्व-

(१४) णिव्वाणं गदो । एवं चोद्दसअंतोमुहुत्तेहि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण अब्भहिएहि अट्ठवस्सेहि य ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टमंतरं होदि। एत्थुववज्जंतो अत्थो वुच्चदे। तं जधा– सासणं पडिवण्णविदियसमए जदि मरदि, तो णियमेण देवगदीए उववज्जदि। एवं जाव आवलियाए असंखेज्जदिभागो देवगदिपाओग्गो कालो होदि। तदो उवरि मणुसगदिपाओग्गो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो कालो होदि। एवं सण्णिपंचिंदिय-तिरिक्ख-असण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-चउरिंदिय-तेइंदिय-बेइंदिय-एइंदियपाओग्गो होदि। एसो णियमो सव्वत्थ सासणगुणं पडिवज्जमाणाणं।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एत्थ दव्व-कालंतरअप्पाबहुगस्स सासणभंगो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। णवरि एत्थ विसेसो उच्चदे– एक्को तिरिक्खो अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि काऊण सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तं संसारं काऊण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो सम्मामिच्छत्तं गदो (१) मिच्छत्तं गंतूण (२) अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण दुचरिमभवे

करणादि छह गुणस्थानोंसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्तोंसे (१४) निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकार चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा आवलीके असंख्यातवें भागसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

अब यहांपर उपयुक्त होनेवाला अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है– सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें यदि वह जीव मरता है तो नियमसे देवगतिमें उत्पन्न होता है। इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल देवगतिमें उत्पन्न होनेके योग्य होता है। उसके ऊपर मनुष्यगतिके योग्य काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकारसे आगे आगे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने योग्य होता है। यह नियम सर्वत्र सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेवालोंका जानना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अंतर है। यहां पर द्रव्य, काल और अन्तर सम्बन्धी अल्पबहुत्व सासादनगुणस्थानके समान है। इसी गुणस्थानका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल है। केवल यहां जो विशेषता है उसे कहते हैं– अनादि मिथ्यादृष्टि एक तिर्यंच तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वके प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र संसारकी स्थितिको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यग्मिथ्यात्वको गया (१) फिर मिथ्यात्वको जाकर (२) अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें

पंचिंदियतिरिक्खेसु उववज्जिय मणुसाउअं बंधिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्मामिच्छत्तं गदो (३)। लद्धमंतरं। तदो मिच्छत्तं गदो (४) मणुसेसुववण्णो। उवरि सासणभंगो। एवं सत्तारसअंतोमुहुत्तब्भहिय-अट्ठवस्सेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। णवरि विसेसो उच्चदे– एक्को अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि काऊण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो (१) उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए आसाणं गंतूणंतरिदो। अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण दुचरिमभवे पंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो। मणुसेसु वासपुधत्ताउअं बंधिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। तदो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताए वा एवं गंतूण समऊणछावलियमेत्ताए वा उवसमसम्मत्तद्धाए सेसाए आसाणं गंतूण मणुसगदिपाओग्गम्हि मदो मणुसो जादो (२)। उवरि सासणभंगो। एवं पण्णारसेहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सम्मत्तुक्कस्संतरं होदि।

उत्पन्न होकर मनुष्य आयुको बांधकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सम्यग्मिथ्यात्वको गया (३)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्वको गया (४) और मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात्का कथन सासादनसम्यग्दृष्टिके समान ही है। इस प्रकार सत्तरह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अन्तरकाल है। केवल जो विशेषता है वह कही जाती है– एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करणोंको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होगया। पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल परिवर्तित होकर द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः मनुष्योंमें वर्षपृथक्त्वकी आयुको बांधकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पीछे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र कालके, अथवा यहांसे लगाकर एक समय कम छह आवली कालप्रमाण तक, उपशमसम्यक्त्वके कालमें अवशेष रह जानेपर सासादन गुणस्थानको जाकर मनुष्यगतिके योग्य कालमें मरा और मनुष्य हुआ (२)। इसके ऊपर सासादनके समान कथन जानना चाहिए। इस प्रकार पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

संजदासंजदाणं णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । एत्थ विसेसो उच्चदे– एक्को अणादिय-मिच्छादिट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टस्सादिसमए उवसमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (१) छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गंतूणंतरिदो मिच्छत्तं गदो । अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय दुचरिमे भवे पंचिंदियतिरिक्खेसु उप्पज्जिय उवसमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं । तदो मिच्छत्तं गदो (३) आउअं बंधिय (४) विस्समिय (५) कालं गदो मणुसेसु उववण्णो । उवरि सासणभंगो । एवमट्ठारसमंतोमुहुत्तब्भहिय-अट्ठवस्सेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं संजदासंजदुक्कस्संतरं होदि । तिरिक्खेसु संजमासंजमग्गहणादो पुव्वमेव मिच्छादिट्ठी मणुसाउअं किण्ण बंधाविदो ? ण, बद्धमणुसाउमिच्छादिट्ठिस्स संजमग्गहणाभावा ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३९ ॥

संयतासंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल अन्तर है । यहांपर जो विशेषता है उसे कहते हैं– एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्वको और संयमासंयमको युगपत् प्राप्त हुआ (१) उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जानेपर सासादनको जाकर अन्तरको प्राप्त होता हुआ मिथ्यात्वमें गया । पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर उपशमसम्यक्त्वको और संयमासंयमको युगपत् प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पश्चात् मिथ्यात्वको गया (३) व आयु बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । इसके ऊपर सासादनका ही क्रम है । इस प्रकार अट्ठारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

शंका—तिर्यंचोंमें संयमासंयम ग्रहण करनेसे पूर्व ही उस मिथ्यादृष्टि जीवको मनुष्य आयुका बंध क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मनुष्यायुको बांध लेनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके संयमका ग्रहण नहीं होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४० ॥

कुदो ? तिण्हं पंचिंदियतिरिक्खाणं तिण्णि मिच्छादिट्ठिजीवे दिट्ठमग्गे सम्मत्तं णेदूण सव्वजहण्णकालेण पुणो मिच्छत्ते गेण्हाविदे अंतोमुहुत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ४१ ॥

तं जधा– तिण्णि तिरिक्खा मणुसा वा अट्ठावीससंतकम्मिया तिपलिदोवमाउट्ठिदिएसु पंचिंदियतिरिक्खतिगकुक्कुड-मक्कडादिएसु उववण्णा, वे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंता, मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धा वेदगसम्मत्तं पडिवण्णा अवसाणे आउअं बंधिय मिच्छत्तं गदा । लद्धमंतरं । भूओ सम्मत्तं पडिवज्जिय कालं करिय सोधम्मीसाणदेवेसु उववण्णा । एवं वेअंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्तब्भहिय-वेमासेहि य ऊणाणि तिण्णि पलिदोवमाणि तिण्हं मिच्छादिट्ठीणमुक्कस्संतरं होदि ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके तीन मिथ्यादृष्टि दृष्टमार्गी जीवोंको असंयतसम्यक्त्व गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्यकालसे पुनः मिथ्यात्वके ग्रहण कराने पर अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तीनों ही प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका अन्तर कुछ कम तीन पल्योपमप्रमाण है ॥ ४१ ॥

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तीन तिर्यंच अथवा मनुष्य, तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच-त्रिक कुक्कुट, मर्कट आदिमें उत्पन्न हुए व दो मास गर्भमें रहकर निकले और मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुए और आयुके अन्तमें आगामी आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त कर और मरण करके सौधर्म-ईशान देवोंमें उत्पन्न हुए । इस प्रकार इन दो अन्तर्मुहूर्तोंसे और मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे कम तीन पल्योपमकाल तीनों जातिवाले तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥४२॥

---

१ प्रतिषु 'सम्मत्तस्स' इति पाठः ।

तं जहा– पंचिंदियतिरिक्खतिगसासणसम्मादिट्ठिपवाहो केत्तियं पि कालं णिरंतरमागदो। पुणो सव्वेसु सासणेसु मिच्छत्तं पडिवण्णेसु एगसमयं सासणगुणविरहो होदूण विदियसमए उवसमसम्मादिट्ठिजीवेसु सासणं पडिवण्णेसु लद्धमेगसमयमंतरं। एवं चेव तिरिक्खतिगसम्मामिच्छादिट्ठीणं पि वत्तव्वं।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४३ ॥

तं जहा– पंचिंदियतिरिक्खतिगसासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिजीवेसु सव्वेसु अण्णगुणं गदेसु दोण्हं गुणट्ठाणाणं पंचिंदियतिरिक्खतिएसु उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तंतरं होदूण पुणो दोण्हं गुणट्ठाणाणं संभवे जादे लद्धमंतरं होदि।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ४४ ॥

पंचिंदियतिरिक्खतियसासणाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, सम्मामिच्छादिट्ठीणं अंतोमुहुत्तमेगजीवजहण्णंतरं होदि। सेसं सुगमं।

जैसे– पंचेन्द्रिय तिर्यंच-त्रिक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रवाह कितने ही काल तक निरन्तर आया। पुनः सभी सासादन जीवोंके मिथ्यात्वको प्राप्त हो जानेपर एक समयके लिए सासादन गुणस्थानका विरह होकर द्वितीय समयमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेपर एक समय प्रमाण अन्तरकाल प्राप्त होगया। इसी प्रकार तीनों ही जातिवाले तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर कहना चाहिए।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ४३ ॥

जैसे– तीनों ही जातिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जानेपर इन दोनों गुणस्थानोंका पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र अन्तर होकर पुनः दोनों गुणस्थानोंके संभव हो जानेपर उक्त अन्तर प्राप्त हो जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४४ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक सासादनसम्यग्दृष्टियोंका पल्योपमके असंख्यातवें भाग और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण एक जीवका जघन्य अन्तर होता है। शेष सुगम है।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ४५ ॥

एत्थ ताव पंचिंदियतिरिक्खसासणाणं उच्चदे। तं जहा– एक्को मणुसो णेरइओ देवो वा एगसमयावसेसाए सासणद्धाए पंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो। तत्थ पंचाणउदिपुव्वकोडिअब्भहियतिण्णि पलिदोवमाणि गमिय अवसाणे (उवसमसम्मत्तं घेत्तूण) एगसमयावसेसे आउए आसाणं गदो कालं करिय देवो जादो। एवं दुसमऊणसगट्ठिदी सासणुक्कस्संतरं होदि।

सम्मामिच्छादिट्ठीणमुच्चदे– एक्को मणुसो अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४) अंतरिय पंचाणउदिपुव्वकोडीओ परिभमिय तिपलिदोवमिएसु उववज्जिय अवसाणे पढमसम्मत्तं घेत्तूण सम्मामिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं (५)। सम्मत्तं वा मिच्छत्तं वा जेण गुणेण आउअं बद्धं तं पडिवज्जिय (६) देवेसु उववण्णो। छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा सगट्ठिदी उक्कस्संतरं होदि। एवं पंचिं-

....

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तीनों प्रकारके तिर्यंचोंका अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ॥ ४५ ॥

इनमेंसे पहले पंचेन्द्रिय तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं। जैसे– कोई एक मनुष्य, नारकी अथवा देव सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रह जानेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। उनमें पंचानवे पूर्वकोटिकालसे अधिक तीन पल्योपम विताकर अन्तमें (उपशमसम्यक्त्व ग्रहण करके) आयुके एक समय अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और मरण करके देव उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दो समय कम अपनी स्थिति सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अव तिर्यंचत्रिक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मनुष्य, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) तथा अन्तरको प्राप्त होकर पंचानवे पूर्वकोटि कालप्रमाण उन्हीं तिर्यंचोंमें परिभ्रमण करके तीन पल्योपमकी आयुवाले तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर और अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके सम्यग्मिथ्यात्वको गया। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (५)। पीछे जिस गुणस्थानसे आयु वांधी थी उसी सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर (६) देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति हीं इस गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंका

देयतिरिक्खपज्जत्ताणं । णवरि सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ तिण्णि पलिदोवमाणि च पुव्वुत्त-दोसमयछअंतोमुहुत्तेहि य ऊणाणि उक्कस्संतरं होदि । एवं जोणिणीसु वि । णवरि सम्मामिच्छादिट्ठिउक्कस्सम्हि अत्थि विसेसो । उच्चदे– एक्को णेरइओ देवो वा मणुसो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ पंचिंदियतिरिक्खजोणिणिकुक्कुड-मक्कडेसु उववण्णो वे मासे गब्भे अच्छिय णिक्खंतो मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो । पण्णारस पुव्वकोडीओ परिभमिय कुरवेसु उववण्णो । सम्मत्तेण वा मिच्छत्तेण वा अच्छिय अवसाणे सम्मामिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं । जेण गुणेण आउअं बद्धं, तेणेव गुणेण मदो देवो जादो । दोहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्ताहिय-वेमासेहि य ऊणाणि पुव्वकोडिपुधत्तब्भहिय-तिण्णि पलिदोवमाणि उक्कस्संतरं होदि । सम्मुच्छिमेसुप्पाइय सम्मामिच्छत्तं किण्ण पडिवज्जाविदो ? ण, तत्थ इत्थिवेदाभावा । सम्मुच्छिमेसु इत्थि-पुरिसवेदा किमट्ठं ण होंति ? सहावदो चेय ।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ४६ ॥

उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि सैंतालीस पूर्वकोटियां और पूर्वोक्त दो समय और छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पल्योपमकाल इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार योनिमतियोंका भी अन्तर जानना चाहिए। केवल उनके सम्यग्मिथ्यादृष्टि-सम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तरमें विशेषता है, उसे कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक नारकी, देव अथवा मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती कुक्कुट, मर्कट आदिमें उत्पन्न हुआ, दो मास गर्भमें रहकर निकला व मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। (पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर) पन्द्रह पूर्वकोटि-कालप्रमाण परिभ्रमण करके देवकुरु, उत्तरकुरु, इन दो भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ रहकर आयुके अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया। पश्चात् जिस गुणस्थानसे आयुको बांधा था उसी गुणस्थानसे मरकर देव हुआ। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त और मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे हीन पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपमकाल उत्कृष्ट अन्तर होता है।

शंका—सम्मूर्च्छिम तिर्यंचोंमें उत्पन्न कराकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदका अभाव है।

शंका—सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—स्वभावसे ही नहीं होते हैं।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ४६ ॥

१ प्रतिषु 'छ' इति पाठो नास्ति।

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदपंचिंदियतिरिक्खतिगस्स सव्वद्धमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४७ ॥

कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खतियअसंजदसम्मादिट्ठीणं दिट्ठमग्गाणं अण्णगुणं पडिवज्जिय अइदहरकालेण पुणरागयाणमंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ४८ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे– एक्को मणुसो अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) संकलिट्ठो मिच्छत्तं गंतूणंतरिय पंचाणउदिपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदोवमाउट्ठिदिएसुववण्णो थोवावसेसे जीविए उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। लद्धमंतरं (५)। तदो उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति आसाणं गंतूण देवो जादो। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि पंचाणउदिपुव्वकोडिअब्भहियतिण्णि पलिदोवमाणि पंचिंदियतिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठीणं

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक किसी भी कालमें नहीं पाये जाते हैं।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४७ ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर अत्यल्प कालसे पुनः उसी गुणस्थानमें आनेपर अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपमकाल है ॥ ४८ ॥

पहले पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मनुष्य, संज्ञीपंचेन्द्रियतिर्यंच सम्मूर्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ व छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हो (४) संक्लिष्ट हो मिथ्यात्वमें जाकर व अंतरको प्राप्त होकर पंचानवे पूर्वकोटियां बिताकर तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले उत्तम भोगभूमियां तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ और जीवनके अल्प अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (५)। पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जानेपर सासादन गुणस्थानमें जाकर मरा और देव हुआ। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पंचानवे पूर्वकोटियोंसे अधिक तीन पल्योपम प्रमाणकाल पंचेन्द्रिय तिर्यंच

उक्कस्संतरं होदि ।

पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तएसु एवं चेव। णवरि सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ अहियाओ त्ति भाणिदव्वं। पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु वि एवं चेव। णवरि कोच्छि विसेसो अत्थि, तं परूवेमो । तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु उववण्णो। दोहि मासेहि गब्भादो णिक्खमिय मुहुत्तपुधत्तेण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (१) संकिलिट्ठो मिच्छत्तं गंतूणंतरिय पण्णारस पुव्वकोडीओ भमिय तिपलिदोवमाउट्ठिदिएसु उप्पण्णो। अवसाणे उवसमसम्मत्तं गदो। लद्धमंतरं (२)। छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गदो मदो देवो जादो। दोहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्तब्भहिय-बेमासेहि य ऊणा सगट्ठिदी असंजदसम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं होदि ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ४९ ॥

कुदो ? संजदासंजदविरहिदपंचिंदियतिरिक्खतिगस्स सव्वदाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५० ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है। विशेषता यह है कि इनके सैंतालीस पूर्वकोटियां ही अधिक होती है, ऐसा कहना चाहिए। पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है। केवल जो थोड़ी विशेपता है उसे कहते हैं। वह इस प्रकार है– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें उत्पन्न हुआ। दो मासके पश्चात् गर्भसे निकलकर मुहूर्तपृथक्त्वमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) व संक्लिष्ट हो मिथ्यात्वमें जाकर अन्तरको प्राप्त हो पन्द्रह पूर्वकोटिकाल परिभ्रमण करके तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां आयुके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (२)। पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेप रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और मरकर देव होगया। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे और मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे कम अपनी स्थिति असंयतसम्यग्दृष्टि योनिमती तिर्यंचोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तीनों प्रकारके संयतासंयत तिर्यंचोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ४९ ॥

क्योंकि, संयतासंयतोंसे रहित तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवोंका किसी भी कालमें अभाव नहीं है।

उन्हीं तीनों प्रकारके तिर्यंच संयतासंयत जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५० ॥

कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खतिगसंजदासंजदस्स दिट्ठमग्गस्स अण्णगुणं गंतूण अइद-हरकालेण पुणरागदस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ५१ ॥

तत्थ ताव पंचिंदियतिरिक्खसंजदासंजदाणं उच्चदे । तं जहा– एक्को अट्ठावीस-संतकम्मिओ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडि-वण्णो (४) संकिलिट्ठो मिच्छत्तं गंतूणंतरिय छण्णउदिपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए मिच्छत्तेण सम्मत्तेण वा सोहम्मादिसु आउअं बंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए संजमासंजमं पडिवण्णो (५) कालं करिय देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ छण्णउदिपुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं जादं ।

पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तएसु एवं चेव । णवरि अट्ठेतालीसपुव्वकोडीओ त्ति भाणिदव्वं । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु वि एवं चेव । णवरि कोइ विसेसो अत्थि तं भणिस्सामो । तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु उप्पण्णो

क्योंकि, देखा है मार्गको जिन्होंने, ऐसे तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच संयता-संयतके अन्य गुणस्थानको जाकर अतिस्वल्पकालसे पुनः उसी गुणस्थानमें आने पर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया जाता है ।

उन्हीं तीनों प्रकारके तिर्यंच संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि-पृथक्त्व है ॥ ५१ ॥

इनमेंसे पहले पंचेन्द्रिय तिर्यंच संयतासंयतोंका अन्तर कहते हैं । जैसे– मोह-कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ, व छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (४) तथा संक्लिष्ट हो मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त हो छयानवे पूर्वकोटिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें मिथ्यात्व अथवा सम्यक्त्वके साथ सौधर्मादि कल्पोंकी आयुको बांधकर व जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (५) और मरण कर देव हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे हीन छयानवे पूर्वकोटियां पंचेन्द्रिय तिर्यंच संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । विशेषता यह है कि इनके अड़तालीस पूर्वकोटिप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि-मतियोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । केवल कुछ विशेषता है उसे कहते हैं । जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें

वे मासे गब्भे अच्छिय णिक्खंतो मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (१)। संकिलिट्ठो मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सोलसपुव्वकोडीओ परिभमिय देवाउअं बंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए संजमासंजमं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं। मदो देवो जादो। बेहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्तब्भहिय-बेमासेहि य ऊणाओ सोलहपुव्व-कोडीओ उक्कस्संतरं होदि।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ५२ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५३ ॥

कुदो? पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तयस्स अण्णेसु अपज्जत्तएसु खुद्दाभवग्गहणाउ-ट्ठिदीएसु उववज्जिय पडिणियत्तिय आगदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ५४ ॥

कुदो? पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तयस्स अणप्पिदजीवेसु उप्पज्जिय आवलियाए

उत्पन्न हुआ व दो मास गर्भमें रहकर निकला, मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर, वेदकसम्य-क्त्वको और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः संक्लिष्ट हो मिथ्यात्वको जाकर, अन्तरको प्राप्त हो, सोलह पूर्वकोटिप्रमाण परिभ्रमण कर और देवायु बांधकर जीवनके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहनेपर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पश्चात् मरकर देव हुआ। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तों और मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो माससे हीन सोलह पूर्वकोटियां पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभव-ग्रहणप्रमाण है ॥ ५३ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकका क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयुस्थितिवाले अन्य अपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर और लौटकर आये हुए जीवका क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण अन्तर पाया जाता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अनन्त-कालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ५४ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके अविवक्षित जीवोंमें उत्पन्न होकर आव-

असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिय पडिणियत्तिय आगंतूण पंचिंदिय-तिरिक्खापज्जत्तेसु उप्पण्णस्स सुत्तुत्तंतरुवलंभा ।

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ५५ ॥

जीवट्ठाणम्हि मग्गणविसेसिदगुणट्ठाणाणं जहण्णुक्कस्संतरं वत्तव्वं । अदीदसुत्ते पुणो मग्गणाए उत्तमंतरं । तदो णेदं घडदि त्ति आसंकिय गंथकत्तारो परिहारं भणदि- एवमेदं गदिं पडुच्च उत्तं सिस्समइविप्फारणट्ठं । तदो ण दोसो त्ति ।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ५६ ॥

एदस्सत्थो- गुणं पडुच्च अंतरे भण्णमाणे उभयदो जहण्णुक्कस्सेहिंतो णाणेग-जीवेहि वा अंतरं णत्थि, गुणंतरगहणाभावा पवाहवोच्छेदाभावाच्च ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ५७ ॥

लौके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके पुनः लौटकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुए जीवका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा गया है ॥ ५५ ॥

यहां जीवस्थानखंडमें मार्गणाविशेषित गुणस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए । किन्तु, गत सूत्रमें तो मार्गणाकी अपेक्षा अन्तर कहा है और इसलिए वह यहां घटित नहीं होता है । ऐसी आशंका करके ग्रंथकर्ता उसका परिहार करते हुए कहते हैं कि यहां यह अन्तर-कथन गतिकी अपेक्षा शिष्योंकी बुद्धि विस्फुरित करनेके लिए किया है, अतः उसमें कोई दोष नहीं है ।

गुणस्थानकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों प्रकारोंसे अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५६ ॥

इसका अर्थ- गुणस्थानकी अपेक्षा अन्तर कहने पर जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों ही प्रकारोंसे, अथवा नाना जीव और एक जीव इन दोनों अपेक्षाओंसे, अन्तर नहीं है; क्योंकि, उनके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके सिवाय अन्य गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है, तथा उनके प्रवाहका कभी उच्छेद भी नहीं होता है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५७ ॥

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टेस्तिर्यग्वत् । स. सि. १, ८.

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५८ ॥

कुदो ? तिविहमणुसमिच्छादिट्ठिस्स दिट्ठमग्गस्स गुणंतरं पडिवज्जिय अइदहर-कालेण पडिणियत्तिय आगदस्स सव्वजहण्णंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ५९ ॥

ताव मणुसमिच्छादिट्ठीणं उच्चदे । तं जधा– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ तिपलिदोवमिएसु मणुसेसु उववण्णो । णव मासे गब्भे अच्छिदो । उत्ताणसेज्जाए अंगुलिआहारेण सत्त, रंगंतो सत्त, अथिरगमणेण सत्त, थिरगमणेण सत्त, कलासु सत्त, गुणेसु सत्त, अण्णे वि सत्त दिवसे गमिय विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। तिण्णि पलिदोवमाणि गमेदूण मिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं (१)। सम्मत्तं पडिवज्जिय (२) मदो देवो जादो । एगूणवण्णदिवसब्भहियणवहि मासेहि बेअंतोमुहुत्तेहि य ऊणाणि तिण्णि पलिदोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्संतरं जादं । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु वत्तव्वं, भेदाभावा।

....

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५८ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी तीनों ही प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टिके किसी अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर अति स्वल्पकालसे लौटकर आजाने पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ५९ ॥

उनमेंसे पहले मनुष्य सामान्य मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं। वह इस प्रकार है– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य जीव तीन पल्योपमकी स्थितिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । नौ मास गर्भमें, रहकर निकला । फिर उत्तानशय्यासे अंगुष्ठको चूसते हुए सात, रेंगते हुए सात, अस्थिर गमनसे सात, स्थिर गमनसे सात, कलाओंमें सात, गुणोंमें सात, तथा और भी सात दिन विताकर विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पश्चात् तीन पल्योपम विताकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर प्राप्त होगया (१)। पीछे सम्यक्त्वको प्राप्त होकर (२) मरा और देव होगया। इस प्रकार उनंचास दिनोंसे अधिक नौ मास और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पल्योपम सामान्य मनुष्यके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि; इनसे उनमें कोई भेद नहीं है।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ६० ॥

कुदो ? तिविहमणुसेसु ट्ठिदसासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिगुणपरिणदजीवेसु अण्णगुणं गदेसु गुणंतरस्स जहण्णेण एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६१ ॥

कुदो ? सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिगुणट्ठाणेहि विणा तिविहमणुस्साणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालमवट्ठाणदंसणादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ६२ ॥

सासणस्स जहण्णंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। कुदो ? एत्तिएण कालेण विणा पढमसम्मत्तग्गहणपाओग्गाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीए सागरोवमपुधत्तादो हेट्ठिमाए उप्पत्तीए अभावा। सम्मामिच्छादिट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं, अण्णगुणं

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे परिणत सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जानेपर इन गुणस्थानोंका अन्तर जघन्यसे एक समय देखा जाता है।

उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके विना तीनों ही प्रकारके मनुष्योंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक अवस्थान देखा जाता है।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

सासादन गुणस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, इतने कालके विना प्रथमसम्यक्त्वके ग्रहण करने योग्य सागरोपमपृथक्त्वसे नीचे होनेवाली सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिकी उत्पत्तिका अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि, उसका अन्य गुणस्थानको

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

गंतूण अंतोमुहुत्तेण पुणरागमुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[1] ॥ ६३ ॥

मणुससासणसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे– एक्को तिरिक्खो देवो णेरइओ वा सासणद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति मणुसो जादो । विदियसमए मिच्छत्तं गंतूण अंतरिय सत्तेतालीसपुव्वकोडिअब्भहियतिण्णि पलिदोवमाणि भमिय पच्छा उवसमसम्मत्तं गदो । तम्हि एगो समओ अत्थि त्ति सासणं गंतूण मदो देवो जादो । दुसमऊणा मणुसुक्कस्स-ट्ठिदी[2] सासणुक्कस्संतरं जादं ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगदो मणुसेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्सेसु गदेसु विसुद्धो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (१) । मिच्छत्तं गदो सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदोवमिएसु मणुसेसु उववण्णो आउअं बंधिय अवसाणे सम्मामिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं (२) । तदो मिच्छत्त-सम्मत्ताणं जेण आउअं बद्धं तं गुणं गंतूण मदो देवो जादो (३) । एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि

जाकर अन्तर्मुहूर्तसे पुनः आगमन पाया जाता है ।

उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिवर्षपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम-काल है ॥ ६३ ॥

पहले मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक तिर्यंच, देव अथवा नारकी जीव सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर मनुष्य हुआ । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर सैंतालीस पूर्व-कोटियोंसे अधिक तीन पल्योपमकाल परिभ्रमणकर पीछे उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उस उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया । इस प्रकार दो समय कम मनुष्यकी उत्कृष्ट स्थिति सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होगया ।

अब मनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्षोंके व्यतीत होने पर विशुद्ध हो सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (१) । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, सैंतालीस पूर्वकोटियां विताकर, तीन पल्योपमकी स्थिति-वाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आयुको बांधकर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (२) । तत्पश्चात् मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमेंसे जिसके द्वारा आयु बांधी थी, उसी गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया (३) । इस प्रकार तीन

१ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'दुसमऊणाणमणुक्कस्सट्ठिदी' इति पाठः ।

य ऊणा सगट्ठिदी सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं ।

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं पि । णवरि मणुसपज्जत्तेसु तेवीस पुव्वकोडीओ, मणुसिणीसु सत्त पुव्वकोडीओ तिसु पलिदोवमेसु अहियाओ त्ति वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ६४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ६५ ॥

कुदो ? तिविहमणुसेसु ट्ठिदअसंजदसम्मादिट्ठिस्स अण्णगुणं गंतूणंतरिय पडिणियत्तिय अंतोमुहुत्तेण आगमणुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[3] ॥ ६६ ॥

मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे— एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो

अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम अपनी स्थिति सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें तेवीस पूर्वकोटियां और तीन पल्योपमका अन्तर कहना चाहिए । और मनुष्यनियोंमें सात पूर्वकोटियां तीन पल्योपमोंमें अधिक कहना चाहिए ।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यत्रिकका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा मनुष्यत्रिकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, तीन प्रकारके मनुष्योंमें स्थित असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो और लौटकर अन्तर्मुहूर्तसे आगमन पाया जाता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यत्रिकका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिवर्षपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ॥ ६६ ॥

इनमेंसे पहले मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— अट्ठाईस मोह-

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि । स. सि. १, ८.

आगदो मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सेसु गदेसु विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (१)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सत्तेत्तालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदोवमिएसु उववण्णो। तदो बद्धाउओ संतो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (२)। उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियावसेसाए सासणं गंतूण मदो देवो जादो। अट्ठवस्सेहि बेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा सगट्ठिदी असंजदसम्मादिट्ठीणं उक्कस्संतरं होदि। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं पि। णवरि तेवीस-सत्त-पुव्वकोडीओ तिपलिदोवमेसु अहियाओ त्ति वत्तव्वं।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ६७ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ६८ ॥

कुदो ? तिविहमणुसेसु ट्ठिदतिगुणट्ठाणजीवस्स अण्णगुणं गंतूणंतरिय पुणो अंतोमुहुत्तेण पोराणगुणस्सागमुवलंभा।

प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आया और मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके बीतनेपर विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१)। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो सैंतालीस पूर्वकोटियां बिताकर तीन पल्योपमवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् आयुको बांधता हुआ उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि मनुष्यपर्याप्त असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर तेईस पूर्वकोटियां तीन पल्योपममें अधिक तथा मनुष्यनियोंमें सात पूर्वकोटियां तीन पल्योपममें अधिक होती हैं, ऐसा कहना चाहिए।

संयतासंयतोंसे लेकर अप्रमत्तसंयतों तकके मनुष्यत्रिकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६८ ॥

क्योंकि, तीन प्रकारके मनुष्योंमें स्थित संयतासंयतादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवका अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होकर और पुनः लौटकर अन्तर्मुहूर्त द्वारा पुराने गुणस्थानका होना पाया जाता है।

---

१ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं[1] ॥ ६९ ॥

मणुससंजदासंजदाणं ताव उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगंतूण मणुसेसु उववण्णो। अट्ठवस्सिओ जादो वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो (१)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय अट्ठदालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय अवसाणे देवाउअं बंधिय संजमासंजमं पडिवण्णो। लद्धमंतरं (२)। मदो देवो जादो। एवं अट्ठवस्सेहि बे-अंतोमुहुत्तेहि य ऊणाओ अट्ठेदालीसपुव्वकोडीओ संजदासंजदुक्कस्संतरं होदि।

पमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगंतूण मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सेहि वेदगसम्मत्तं संजमं च पडिवण्णो अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय अट्ठेतालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए बद्धाउओ संतो अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (३)। मदो देवो जादो। तिण्णिअंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेणूणअट्ठेदालीसपुव्वकोडीओ पमत्तुक्कस्संतरं होदि।

उक्त तीनों गुणस्थानवाले मनुष्यत्रिकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्व है ॥ ६९ ॥

इनमेंसे पहले मनुष्य संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हो आठ वर्षका हुआ। और वेदकसम्यक्त्व तथा संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अड़तालीस पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर आयुके अन्तमें देवायुको बांधकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे उक्त अन्तर लब्ध हुआ (२)। पुनः मरा और देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अड़तालीस पूर्वकोटियां संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है

अब प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे वेदकसम्यक्त्व और संयमको प्राप्त हुआ। पश्चात् वह अप्रमत्तसंयत (१) प्रमत्तसंयत होकर (२) मिथ्यात्वमें जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर, अड़तालीस पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें बद्धायुष्क होता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकारसे अन्तर लब्ध होगया (३)। पश्चात् मरा और देव होगया। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम अड़तालीस पूर्वकोटियां प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

---

१ उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि। स. सि. १, ८.

अप्पमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे— एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगंतूण मणुसेसु उप्पज्जिय गब्भादिअट्ठवस्सिओ जादो। सम्मत्तं अप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१)। पमत्तो होदूणंतरिदो अट्ठेतालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए बद्धदेवाउओ संतो अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (२)। तदो पमत्तो होदूण (३) मदो देवो जादो। तीहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणाओ अट्ठेदालीस-पुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं। पज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव। णवरि पज्जत्तेसु चउवीस-पुव्वकोडीओ. मणुसिणीसु अट्ठपुव्वकोडीओ त्ति वत्तव्वं।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[१] ॥ ७० ॥

कुदो ? तिविहमणुस्साणं चउव्विहउवसामगेहि विणा एगसमयावट्ठाणुवलंभा।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ७१ ॥

कुदो ? तिविहमणुस्साणं चउव्विहउवसामगेहि विणा उक्कस्सेण वासपुधत्तावट्ठाणु-वलंभादो।

अब अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भको आदि लेकर आठ वर्षका हुआ और सम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अड़तालीस पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें देवायुको बांधता हुआ अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकारसे अन्तर प्राप्त हुआ (२)। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत होकर (३) मरा और देव होगया। ऐसे तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अड़तालीस पूर्वकोटियां उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पर्याप्त मनुष्यनियोंमें इसी प्रकारका अन्तर होता है। विशेष बात यह है कि इन पर्याप्तमनुष्योंके चौबीस पूर्वकोटि और मनुष्यनियोंमें आठ पूर्वकोटिकालप्रमाण अन्तर कहना चाहिए।

चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ७० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंका चारों प्रकारके उपशामकोंके विना एक समय अवस्थान पाया जाता है।

चारों उपशामकोंका उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है ॥ ७१ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंका चारों प्रकारके उपशामकोंके विना उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व रहनेवाला पाया जाता है।

---

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं॥ ७२ ॥

सुगममेदं सुत्तं, ओघम्हि उत्तत्तादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं॥ ७३ ॥

मणुस्साणं ताव उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ मणुसेसु उववण्णो गब्भादि-अट्ठवस्सेहि सम्मत्तं संजमं च समगं पडिवण्णो (१) । पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सादासाद-बंधपरावत्तिसहस्सं कादूण (२) दंसणमोहणीयमुवसामिय (३) उवसमसेढीपाओग्ग-अप्पमत्तो जादो (४) । अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) उवसंतो (८) सुहुमो (९) अणियट्टी (१०) अपुव्वो (११) अपमत्तो होदूणंतरिदो । अट्ठेतालीस-पुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए बद्धदेवाउओ सम्मत्तं संजमं च पडि-वज्जिय दंसणमोहणीयमुवसामिय उवसमसेढीपाओग्गविसोहीए विसुज्झिय अपमत्तो होदूण अपुव्वो जादो । लद्धमंतरं । तदो णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदपढमसमए कालं गदो देवो जादो । अट्ठवस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तेहि य अपुव्वद्धाए सत्तमभागेण च ऊणाओ अट्ठेतालीसपुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं होदि । एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं । णवरि दसहिं

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ओघमें कहा जा चुका है ।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है ॥ ७३ ॥

इनमेंसे पहले मनुष्य सामान्य उपशामकोंका अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ, और गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असाता वेदनीयके बंध परावर्तन-सहस्रोंको करके (२) दर्शनमोहनीयका उपशम करके (३) उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशान्त-कषाय (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण (११) और अप्रमत्त-संयत हो अन्तरको प्राप्त होकर अड़तालीस पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें देवायुको बांध कर सम्यक्त्व और संयमको युगपत् प्राप्त होकर दर्शन-मोहनीयका उपशमकर उपशमश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरणसंयत हुआ । इस प्रकारसे अन्तर उपलब्ध होगया । तत्पश्चात् निद्रा और प्रचलाके बंध-विच्छेदके प्रथम समयमें कालको प्राप्त हो देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा अपूर्वकरणके सप्तम भागसे कम अड़तालीस पूर्वकोटिकाल उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि । स. सि. १, ८.

णवहि अट्ठहि अंतोमुहुत्तेहि एगसमयाहियअट्ठवस्सेहि य ऊणाओ अट्ठेदालीसपुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं होदि त्ति वत्तव्वं । पज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव । णवरि पज्जत्तेसु चउवीसं पुव्वकोडीओ, मणुसिणीसु अट्ठ पुव्वकोडीओ त्ति वत्तव्वं ।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७४ ॥

कुदो ? एदेसु गुणट्ठाणेसु अण्णगुणं णिव्वुदिं च गदेसु एदेसिमेगसमयमेत्तजहण्णंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ॥ ७५ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणं छमासमंतरं होदि । मणुसिणीसु वासपुधत्तमंतरं होदि । जहासंखाए विणा कधमेदं णव्वदे ? गुरूवदेसादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ७६ ॥

कुदो ? भूओ आगमणाभावा । णिरंतरणिद्देसो किमट्ठं वुच्चदे ? णिग्गयमंतरं जम्हा

होता है । किन्तु उनमें क्रमशः दश, नौ और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे और एक समय अधिक आठ वर्षोंसे कम अड़तालीस पूर्वकोटियां उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए । मनुष्यपर्याप्तोंमें वा मनुष्यनियोंमें भी ऐसा ही अन्तर होता है । विशेषता यह है कि पर्याप्तोंमें चौबीस पूर्वकोटियों और मनुष्यनियोंमें आठ पूर्वकोटियोंके कालप्रमाण अन्तर कहना चाहिए ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, इन गुणस्थानोंके जीवोंसे चारों क्षपकोंके अन्य गुणस्थानोंमें तथा अयोगिकेवलीके निर्वृतिको चले जानेपर एक समयमात्र जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर, छह मास और वर्षपृथक्त्व होता है ॥ ७५ ॥

मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तक क्षपक वा अयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मासप्रमाण है । मनुष्यनियोंमें वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर होता है ।

शंका—सूत्रमें यथासंख्य पदके विना यह बात कैसे जानी जाती है ?

समाधान—गुरुके उपदेशसे ।

चारों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ७६ ॥

क्योंकि, चारों क्षपक और अयोगिकेवलीके पुनः आगमनका अभाव है ।

शंका—सूत्रमें निरन्तर पदका निर्देश किस लिए है ?

समाधान—निकल गया है अन्तर जिस गुणस्थानसे, उस गुणस्थानको निरन्तर

१ शेषाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

गुणट्ठाणादो तं गुणट्ठाणं णिरंतरमिदि विहिमुहेण दव्वट्ठियणयावलंबिसिस्साणं पडिसेह-परूवणट्ठं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ७७ ॥

णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरमिच्चेदेण भेदाभावा ।

मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७८ ॥

किमट्ठमेदस्स एम्महंतस्स रासिस्स अंतरं होदि ? एसो सहाओ एदस्स । ण च सहावे जुत्तिवादस्स पवेसो अत्थि, भिण्णविसयादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८० ॥

कुदो ? अणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय अइदहरकालेण आगदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा ।

....

कहते हैं। इस प्रकार विधिमुखसे द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके प्रतिषेध प्ररूपण करनेके लिए 'निरन्तर' इस पदका निर्देश सूत्रमें किया गया है।

सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, ओघमें वर्णित नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है, इस प्रकारसे इस प्ररूपणामें कोई भेद नहीं है।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ७८ ॥

शंका—इस इतनी महान् राशिका अन्तर किस लिए होता है ?

समाधान—यह तो राशियोंका स्वभाव ही है। और स्वभावमें युक्तिवादका प्रवेश है नहीं, क्योंकि, उसका विषय भिन्न है।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ७९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ८० ॥

क्योंकि, अविवक्षित लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर अति स्वल्पकालसे पुनः लब्ध्यपर्याप्तकोंमें आए हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ८१ ॥

कुदो ? मणुसअपज्जत्तस्स एइंदियं गदस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-पोग्गलपरियट्टी परियट्टिदूण पडिणियत्तिय आगदस्स सुत्तुत्तंतरुवलंभा ।

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ८२ ॥

सिस्साणमंतरसंभवपदुप्पायणट्ठमेदं सुत्तं ।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ८३ ॥

उभयदो जहण्णुक्कस्सेण णाणेगजीवेहि वा णत्थि अंतरमिदि वुत्तं होदि । कुदो ? मग्गणमछंडिय गुणंतरग्गहणाभावा ।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ८४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ८५ ॥

उक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ८१ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रियोंमें गये हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यका आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः लौटकर आये हुए जीवके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र शिष्योंको अन्तरकी संभावना बतलानेके लिए कहा गया है।

गुणस्थानकी अपेक्षा तो दोनों प्रकारसे भी अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ८३ ॥

उभयतः अर्थात् जघन्य और उत्कर्षसे, अथवा नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए। क्योंकि, मार्गणाको छोड़े विना लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके अन्य गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८५ ॥

---

१ देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

कुदो ? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं दिट्ठमग्गाणं देवाणं गुणंतरं गंतूण अइद-हरकालेण पडिणियत्तिय आगदाणं अंतोमुहुत्तअंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ ८९ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स ताव उच्चदे- एक्को दव्वलिंगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिम-गेवज्जेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो । एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सम्मत्तेणंतरिय अवसाणे मिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं (४) । चुदो मणुसो जादो । चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को दव्वलिंगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिम-गेवज्जेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एक्कत्तीसं सागरोवमाणि अच्छिदूण आउअं बंधिय सम्मत्तं पडिवण्णो । लद्धमंतरं (५) । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं होदि ।

क्योंकि, जिन्होंने पहले अन्य गुणस्थानोंमें जाने आनेसे अन्य गुणस्थानोंका मार्ग देखा है ऐसे मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर अति स्वल्पकालसे प्रतिनिवृत्त होकर आये हुए जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपमकालप्रमाण है ॥ ८९ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्ववाला एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इकतीस सागरोपमकाल सम्यक्त्वके साथ विताकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (४)। पश्चात् वहांसे च्युत हो मनुष्य हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्ववाला कोई एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम रहकर और आयुको बांधकर, पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (५) । ऐसे पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

---

१ उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ८७ ॥

कुदो ? दोण्हं पि सांतररासीणं णिरवसेसेण अण्णगुणं गदाणं एगसमयंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

कुदो ? एदासिं दोण्हं रासीणं सांतराणं णिरवसेसेण अण्णगुणं गदाणं उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते अंतरं पडि विरोहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ८९ ॥

सासणसम्मादिट्ठिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो अंतरं, सम्मामिच्छादिट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं । सेसं सुगमं, बहुसो परूविदत्तादो ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ८७ ॥

क्योंकि, इन दोनों ही सान्तर राशियोंका निरवशेषरूपसे अन्य गुणस्थानको गये हुए जीवोंके एक समयप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ८८ ॥

क्योंकि, इन दोनों सान्तर राशियोंके सामस्त्यरूपसे अन्य गुणस्थानको चले जानेपर उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालमें अन्तरके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । शेष सूत्रार्थ सुगम है, क्योंकि, पहले बहुतवार प्ररूपण किया जा चुका है ।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ ९० ॥

सासणस्स तावुच्चदे– एक्को मणुसो दव्वलिंगी उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सासणं गंतूण तत्थ एगसमओ अत्थि त्ति मदो देवो जादो। एगसमयं सासणगुणेण दिट्ठो। विदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एक्कत्तीसं सागरोवमाणि गमिय आउअं बंधिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो सासणं गदो। लद्धमंतरं। सासणगुणेणेगसमयमच्छिय विदिय-समए मदो मणुसो जादो। तिहि समएहि ऊणाणि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सासणु-क्कस्संतरं।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिम-गेवज्जेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एक्कत्तीसं सागरोवमाणि गमिय आउअं बंधिय सम्मामिच्छत्तं गदो (५)। जेण गुणेण आउअं बद्धं, तेणेव गुणेण मदो मणुसो जादो (६)। छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सम्मा-मिच्छत्तस्सुक्कस्संतरं होदि।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम-काल है ॥ ९० ॥

उनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक द्रव्यलिंगी मनुष्य उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हो करके और सासादनगुणस्थानको जाकर उसमें एक समय अवशेष रहनेपर मरा और देव होगया। वह देव पर्यायमें एक समय सासादन-गुणस्थानके साथ दृष्ट हुआ और दूसरे समयमें मिथ्यात्वगुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम विताकर, आयुको बांधकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः सासादन गुणस्थानको गया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। तब सासादनगुण-स्थानके साथ एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरा और मनुष्य होगया। इस प्रकार तीन समयोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्ववाला कोई एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम विताकर आगामी भवकी आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५)। पश्चात् जिस गुण-स्थानसे आयुको बांधा था, उसी गुणस्थानसे मरा और मनुष्य होगया (६)। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

---

१ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९२ ॥

कुदो? णवसु सग्गेसु वट्टंतमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं अण्णगुणं गंतूणंतरिय लहुमागदाणं अंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ९३ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– तिरिक्खो मणुसो वा अप्पिददेवेसु सग-सगुक्कस्साउ-ट्ठिदिएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो । अंतरिदो अप्पणो उक्कस्साउट्ठिदिमणुपालिय अवसाणे मिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं (४) । चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदीओ मिच्छादिट्ठिउक्कस्संतरं होदि ।

....

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ऐशानसे लेकर शतार-सहस्रार तकके कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त देवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९२ ॥

क्योंकि, भवनत्रिक और सहस्रार तकके छह कल्पपटल, इन नौ स्वर्गोंमें रहनेवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो पुनः लघुकालसे आये हुओंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

उक्त देवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः सागरोपम, पल्योपम और साधिक दो, सात, दश, चौदह, सोलह और अट्ठारह सागरोपमप्रमाण है ॥ ९३ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य अपने अपने स्वर्गकी उत्कृष्ट आयुवाले विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पश्चात् अपनी उत्कृष्ट आयुस्थितिको अनुपालनकर अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (४) । इन चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी आयुस्थितियां उन उन स्वर्गोंके मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि । णवरि पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणउक्कस्सट्ठिदीओ अंतरं होदि ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणोघं ॥ ९४ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण बेहि समएहि छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ उक्कस्सट्ठिदीओ अंतरमिच्चेएहि भेदाभावा । णवरि सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ देसूणाओ उक्कस्संतरमिदि एत्थ वत्तव्वं, सत्थाणोघण्णहाणुववत्तीदो ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९५ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९६ ॥

इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर होता है ।

उक्त स्वर्गोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर स्वस्थान ओघके समान है ॥ ९४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त अन्तर है, उत्कर्षसे दो समय और छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर है; इत्यादि रूपसे ओघके अन्तरसे इनके अन्तरमें भेदका अभाव है । विशेष बात यह है कि अपनी अपनी कुछ कम उत्कृष्ट स्थितियां ही यहां पर उत्कृष्ट अन्तर है ऐसा कहना चाहिए; क्योंकि, अन्यथा सूत्रमें कहा गया स्वस्थान ओघ अन्तर बन नहीं सकता ।

आनतकल्पसे लेकर नवग्रैवेयकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९६ ॥

कुदो ? तेरसभुवणट्ठिदमिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठीणं दिट्ठमग्गाणमण्णगुणं गंतूण लहु-मागदाणमंतोमुहुत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं ऊणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ९७ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी मणुसो अप्पिददेवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो। अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदीओ अणुपालिय अवसाणे मिच्छत्तं गदो (४)। चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदीओ मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी बद्धुक्कस्साउओ अप्पिददेवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदियमणुपालिय सम्मत्तं गंतूण (५) मदो मणुसो जादो। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणउक्कस्सट्ठिदिमेत्तं लद्धमंतरं।

क्योंकि, आनत-प्राणत आदि तेरह भुवनोंमें रहनेवाले दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर पुनः शीघ्रतासे आनेवाले उन जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त तेरह भुवनोंमें रहनेवाले देवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः देशोन बीस, बाईस तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम कालप्रमाण होता है ॥ ९७ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक द्रव्यलिंगी मनुष्य विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुस्थितिको अनुपालन कर जीवनके अन्तमें मिथ्यात्वको गया (४)। इन चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उक्त मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– बांधी है देवोंमें उत्कृष्ट आयुको जिसने, ऐसा एक द्रव्यलिंगी साधु विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ। अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुस्थितिको अनुपालन कर सम्यक्त्वको जाकर (५) मरा और मनुष्य हुआ। इस प्रकार इन पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणमोघं ॥ ९८ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण (पलिदोवमस्स) असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बेहि समएहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदीओ अंतरं होदि, एदेहि भेदाभावा ।

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च (णत्थि) अंतरं, णिरंतरं ॥ ९९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०० ॥

एगगुणत्तादो अण्णगुणगमणाभावा ।

एवं गदिमग्गणा समत्ता ।

उक्त आनतादि तेरह भुवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर स्वस्थान ओघके समान है ॥ ९८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है, उत्कर्षसे दो समय और अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर होता है; इस प्रकार ओघके साथ इनका कोई भेद नहीं है ।

अनुदिशको आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त देवोंमें एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०० ॥

उक्त अनुदिश आदि देवोंमें एक ही असंयतगुणस्थान होनेसे अन्य गुणस्थानमें जानेका अभाव है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १०१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ १०२ ॥

कुदो ? एइंदियस्स तसकाइयापज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वलहुएण कालेण पुणो एइंदियमागदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[3] ॥ १०३ ॥

तं जहा– एइंदिओ तसकाइएसु उववज्जिय अंतरिदो पुव्वकोडीपुधत्तेणब्भहियबेसागरोवमसहस्समेत्तं तसट्ठिदिं परिभमिय एइंदियं गदो । लद्धमेइंदियाणमुक्कस्संतरं तसट्ठिदिमेत्तं । देवमिच्छादिट्ठिमेइंदिएसु पवेसिय असंखेज्जपोग्गलपरियट्टी तत्थ भमाडिय पच्छा देवेसुप्पाइय देवाणमंतरं किण्ण परूविदं ? ण, णिरुद्धदेवगदिमग्गणाए अभावप्पसंगा ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥१०२॥

क्योंकि, एकेन्द्रियके त्रसकायिक अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वलघु कालसे पुनः एकेन्द्रियपर्यायको प्राप्त हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

एकेन्द्रियोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम है ॥ १०३ ॥

जैसे– कोई एक एकेन्द्रिय जीव त्रसकायिकोंमें उत्पन्न होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपमप्रमित त्रसकाय स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर पुनः एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर त्रसस्थितिप्रमाण लब्ध हुआ ।

शंका—देव मिथ्यादृष्टियोंको एकेन्द्रियोंमें प्रवेश करा, असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन उनमें परिभ्रमण कराके पीछे देवोंमें उत्पन्न कराकर देवोंका अन्तर क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वैसा करनेपर प्ररूपणा की जानेवाली देवगति-

---

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके । स. सि. १, ८.

मग्गणमछंडंतेण अंतरपरूवणा कादव्वा, अण्णहा अव्ववत्थावत्तीदो। एइंदियं तसकाइएसु उप्पादिय अंतरे भण्णमाणे मग्गणाए विणासो किण्ण होदीदि चे होदि, किंतु जीए मग्गणाए बहुगुणट्ठाणाणि अत्थि तीए तं मग्गणमछंडिय अण्णगुणेहि अंतराविय अंतरपरूवणा कादव्वा। जीए पुण मग्गणाए एक्कं चेव गुणट्ठाणं तत्थ अण्णमग्गणाए अंतराविय अंतरपरूवणा कादव्वा इदि एसो सुत्ताभिप्पाओ। ण च एइंदिएसु गुणट्ठाणबहुत्तमत्थि, तेण तसकाइएसु उप्पादिय अंतरपरूवणा कदा।

बादरेइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०४ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०५ ॥

कुदो? बादरेइंदियस्स अण्णअपज्जत्तेसु उप्पज्जिय सव्वत्थोवेण कालेण पुणो बादरेइंदियं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १०६ ॥

मार्गणाके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा। विवक्षित मार्गणाको नहीं छोड़ते हुए अन्तरप्ररूपणा करना चाहिए, अन्यथा अव्यवस्थापनकी प्राप्ति होगी।

शंका—एकेन्द्रिय जीवको त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न कराकर अन्तर कहने पर फिर यहां मार्गणाका विनाश क्यों नहीं होता है?

समाधान—मार्गणाका विनाश होता है, किन्तु जिस मार्गणामें बहुत गुणस्थान होते हैं उसमें उस मार्गणाको नहीं छोड़कर अन्य गुणस्थानोंसे अन्तर कराकर अन्तरप्ररूपणा करना चाहिए। परन्तु जिस मार्गणामें एक ही गुणस्थान होता है, वहांपर अन्य मार्गणामें अन्तर करा करके अन्तरप्ररूपणा करना चाहिए। इस प्रकारका यहांपर सूत्रका अभिप्राय है। और एकेन्द्रियोंमें अनेक गुणस्थान होते नहीं हैं, इसलिए त्रसकायिकोंमें उत्पन्न कराकर अन्तरप्ररूपणा की गई है।

बादर एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है॥ १०५॥

क्योंकि, बादरएकेन्द्रिय जीवका अन्य अपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व स्तोककालसे पुनः बादर एकेन्द्रियपर्यायको गये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है ॥ १०६ ॥

तं जधा- एक्को बादरेइंदिओ सुहुमेइंदियादिसु उप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्त-कालमंतरिय पुणो बादरेइंदिएसु उववण्णो। लद्धमसंखेज्जलोगमेत्तं बादरेइंदियाणमंतरं।

एवं बादरेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं ॥ १०७ ॥

कुदो ? बादरेइंदिएहिंतो सव्वपयारेण एदेसिमंतरस्स भेदाभावा।

सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०८ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०९ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदियस्स अणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वत्थोवेण कालेण तीसु वि सुहुमेइंदिएसु आगंतूणुप्पण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ११० ॥

जैसे- एक बादर एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकोंमें उत्पन्न हो वहां पर असंख्यात लोकप्रमाण काल तक अन्तरको प्राप्त होकर पुनः बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण बादरएकेन्द्रियोंका अन्तर लब्ध हुआ।

इसी प्रकारसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक और बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर जानना चाहिए ॥ १०७ ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा सर्व प्रकारसे इन पर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तक बादर एकेन्द्रियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०९ ॥

क्योंकि, किसी सूक्ष्म एकेन्द्रियका अविवक्षित लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व स्तोककालसे तीनों ही प्रकारके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त सूक्ष्मत्रिकोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालप्रमाण है ॥ ११० ॥

तं जहा– एक्को सुहुमेइंदिओ पज्जत्तो अपज्जत्तो च बादेरइंदिएसु उववण्णो। तसकाइएसु बादेरइंदिएसु च असंखेज्जासंखेज्जा ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीपमाणमंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय पुणो तिसु सुहुमेइंदिएसु आगंतूण उववण्णो। लद्धमंतरं बादेरइंदियतसकाइयाणमुक्कस्सट्ठिदी।

बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥१११॥[1]

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११२ ॥[2]

कुदो? अणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वत्थोवेण कालेण पुणो णवसु विगलिंदिएसु आगंतूण उप्पण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ११३ ॥[3]

जैसे– एक सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक, अथवा लब्ध्यपर्याप्तक जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। वह त्रसकायिकोंमें, और बादर एकेन्द्रियोंमें अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालप्रमाण परिभ्रमण कर पुनः उक्त तीनों प्रकारके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार बादर एकेन्द्रियों और त्रसकायिकोंकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण सूक्ष्मत्रिकका उत्कृष्ट अन्तर उपलब्ध हुआ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्तक तथा लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, अविवक्षित लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वस्तोक कालसे पुनः नौ प्रकारके विकलेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न होनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र अन्तरकाल पाया जाता है।

उन्हीं विकलेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ११३ ॥

---

१ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। स. सि. १, ८.

तं जहा– णव हि विगलिंदिया एइंदियाएइंदिएसु उप्पज्जिय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे परियट्टिय पुणो णवसु विगलिंदिएसु उप्पण्णा । लद्धमंतरं असंखेज्जपोग्गलपरियट्टमेत्तं ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ११४ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि अंतोमुहुत्तेण ऊणाणि इच्चेएण भेदाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ ११५ ॥

दोगुणट्ठाणजीवेसु सव्वेसु अण्णगुणं गदेसु दोण्हं गुणट्ठाणाणं एगसमयविरहुवलंभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११६ ॥

कुदो ? सांतररासित्तादो । बहुगमंतरं किण्ण होदि ? सभावा ।

जैसे– नवों प्रकारके विकलेन्द्रिय जीव, एकेन्द्रिय या अनेकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन कालतक परिभ्रमण कर पुनः नवों प्रकारके विकलेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए । इस प्रकारसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ११४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपमकाल अन्तर है; इस प्रकार ओघकी अपेक्षा इनमें कोई भेद नहीं है ।

उक्त दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ११५ ॥

उक्त दोनों गुणस्थानोंके सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जाने पर दोनों गुणस्थानोंका एक समय विरह पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ११६ ॥

क्योंकि, ये दोनों सान्तर राशियां हैं ।

शंका—इनका पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक अंतर क्यों नहीं होता ?

समाधान—स्वभावसे ही अधिक अन्तर नहीं होता है ।

१ पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ११७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो उत्तत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं[2] ॥ ११८ ॥

सासणस्स ताव उच्चदे– एक्को अणंतकालमसंखेज्जलोगमेत्तं वा एइंदिएसु ट्ठिदो असण्णिपंचिंदिएसु आगंतूण उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरेसु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कमेण कालं करिय भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसुप्पण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९) सासणं गदो । आदी दिट्ठा । मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सगट्ठिदिं परियट्टियावसाणे सासणं गदो । लद्धमंतरं । तदो थावरपाओग्गमावलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिय कालं करिय थावरकाएसु उववण्णो आवलियाए असंखेज्जदिभागेण णवहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी अंतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, बहुत वार कहा गया है ।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपम काल है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ ११८ ॥

इनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं– अनन्तकाल या असंख्यातलोकमात्र काल तक एकेन्द्रियोंमें रहा हुआ कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुआ । पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तरोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) क्रमसे मरण कर भवनवासी, या वानव्यन्तरदेवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९) । पुनः सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस गुणस्थानका प्रारम्भ दृष्ट हुआ । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिवर्तित होकर आयुके अन्तमें सासादन गुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पश्चात् स्थावरकायके योग्य आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक उनमें रह कर, मरण करके स्थावरकायिकोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भाग और नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति ही इनका उत्कृष्ट अन्तर है ।

१ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् । स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को जीवो एइंदियट्ठिदिमच्छिदो असण्णि-पंचिंदिएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरेसु आउअं बंधिय (४) विस्समिय (५) देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९) सम्मामिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सगट्ठिदिं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तं गदो (११)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं गंतूण (१२) एइंदिएसु उववण्णो। बारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणसगट्ठिदी सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं।

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो पंचिंदियट्ठिदी पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहिय-सागरोवमसहस्समेत्ता, पज्जत्ताणं सागरोवमसदपुधत्तमेत्ता त्ति वत्तव्वं।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ११९ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। मनके विना शेष पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वान-व्यन्तरोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हो (९) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (१०)। पुनः मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर आयुके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर सम्य-ग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (११)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर (१२) एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। ऐसे इन बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्वस्थिति सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है।

'जैसा उद्देश होता है, उसीके अनुसार निर्देश होता है,' इस न्यायसे पंचेन्द्रिय सामान्यकी स्थिति पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपमप्रमाण होती है, और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी स्थिति शतपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होती है, ऐसा कहना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टयाद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ १२० ॥

कुदो ? एदेसिमण्णगुणं गंतूण सव्वदहरेण कालेण पडिणियत्तिय अप्पप्पणो गुणमागदाणमंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं[2] ॥ १२१ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो असण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिय (४) विस्समिय (५) मदो देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९)। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति आसाणं गदो अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०)। पुणो सासणं गदो आवलियाए असंखेज्जदिभागं कालमच्छिदूण थावरकाएसु उववण्णो। दसहि अंतोमुहुत्तेहि

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२० ॥

क्योंकि, इन असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर सर्वलघु कालसे लौटकर अपने अपने गुणस्थानको आये हुओंके अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सहस्र सागरोपम तथा शतपृथक्त्व सागरोपम है ॥ १२१ ॥

इनमेंसे पहले असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं– एकेन्द्रिय भवस्थितिको प्राप्त कोई एक जीव, असंज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको गया और अन्तरको प्राप्त हुआ। पीछे मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१०)। पुनः सासादन गुणस्थानको गया और वहांपर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक रहकर स्थावरकायिकोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इन दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाणकाल उक्त असंयतसम्यग्दृष्टिका

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् । स. सि. १, ८.

ऊणिया सगट्ठिदी लद्धमुक्कस्संतरं। सागरोवमसदपुधत्तं देसूणमिदि वत्तव्वं ? ण, पंचिंदियपज्जत्तट्ठिदीए देसूणाए वि सागरोवमसदपुधत्तत्तादो। तं पि कधं णव्वदे ? सुत्ते देसूणवयणाभावादो। सण्णिसम्मुच्छिमपंचिंदिएसुप्पाइय सम्मत्तं गेण्हाविय मिच्छत्तेण किण्णांतराविदो ? ण, तत्थ पढमसम्मत्तग्गहणाभावा। वेदगसम्मत्तं किण्ण पडिवज्जाविदो ? ण, एइंदिएसु दीहद्धमवट्ठिदस्स उव्वेल्लिदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तस्स तदुप्पायणे संभवाभावा।

संजदासंजदस्स वुच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो तिण्णिपक्ख-तिण्णिदिवस-अंतोमुहुत्तेहि (१) पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (२) छावलियाओ पढमसम्मत्तद्धाए अत्थि त्ति आसाणं गंतूणंतरिदो। मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे पंचिंदियभवे सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं

उत्कृष्ट अन्तर होता है।

शंका—पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंका जो सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर बताया है, उसमें 'देशोन' ऐसा पद और कहना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पंचेन्द्रिय पर्याप्तककी देशोन स्थिति भी सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण ही होती है।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, सूत्रमें 'देशोन' इस वचनका अभाव है।

शंका—संज्ञी सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न कराकर और सम्यक्त्वको ग्रहण कराकर मिथ्यात्वके द्वारा अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संज्ञी सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका—वेदकसम्यक्त्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रियोंमें दीर्घ काल तक रहनेवाले और उद्वेलना की है सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी जिसने, ऐसे जीवके वेदकसम्यक्त्वका उत्पन्न कराना संभव नहीं है।

संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एकेन्द्रियकी स्थितिको प्राप्त एक जीव, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे (१) प्रथमोपशमसम्यक्त्वको तथा संयमासंयमको युगपत् प्राप्त हुआ (२)। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हुआ। मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तिम पंचेन्द्रिय भवमें सम्यक्त्वको ग्रहण कर दर्शनमोहनीयका क्षय कर और संसारके

खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमासंजमं च पडिवण्णो (३) अप्पमत्तो (४) । पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) । उवरि छ मुहुत्ता । तिण्णिपक्खेहि तिण्णिदिवसेहि बारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगट्ठिदी लद्धं संजदासंजदाणमुक्कस्संतरं । एइंदिएसु किण्ण उप्पाइदो ? लद्धमंतरं करिय उवरि सिज्झणकालादो मिच्छत्तं गंतूण एइंदिएसु आउअं बंधिय तत्थुप्पज्जणकालो संखेज्जगुणो त्ति एइंदिएसु ण उप्पादिदो । उवरिमाणं पि एदमेव कारणं वत्तव्वं ।

पमत्तस्स वुच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्सेहि उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) पमत्तो जादो (२) । हेट्ठा पडिदूणंतरिदो सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसो जादो । दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो (३) । लद्धमंतरं । भूओ अप्पमत्तो (४) उवरि छ अंतोमुहुत्ता । अट्ठहि वस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगट्ठिदी पमत्तस्सुक्कस्संतरं लद्धं ।

अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३)। पश्चात् अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) हुआ। इनमें अपूर्वकरणादिसम्बन्धी ऊपरके छह मुहूर्तोंको मिलाकर तीन पक्ष, तीन दिवस और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाण संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

शंका—उक्त जीवको एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—संयतासंयतका अन्तर लब्ध होनेके पश्चात् ऊपर सिद्ध होने तकके कालसे मिथ्यात्वको जाकर एकेन्द्रियोंमें आयुको बांधकर उनमें उत्पन्न होनेका काल संख्यातगुणा है, इसलिए एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न कराया। इसी प्रकार प्रमत्तादि उपरितन गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी यही कारण कहना चाहिए।

प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं–एकेन्द्रियस्थितिको प्राप्त एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भादि आठ वर्षोंसे उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एकसाथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पीछे नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ। दर्शनमोहनीयका क्षयकर अन्तर्मुहूर्तकाल संसारके अवशिष्ट रहने पर अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पुनः अप्रमत्तसंयत (४) हुआ। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त मिलाकर आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो। आदी दिट्ठा (१)। अंतरिदो अपच्छिमे पंचिंदियभवे मणुस्सेसु उववण्णो। दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (२)। तदो पमत्तो (३) अप्पमत्तो (४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठवस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पंचिंदियट्ठिदी उक्कस्संतरं।

चदुण्हमुवसामगाणं णाणाजीवं पडि ओघं[1] ॥ १२२ ॥

कुदो? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तमिच्चेएहि ओघादो भेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १२३ ॥

तिण्हमुवसामगाणमुवरि चढिय हेट्ठा ओदिण्णे जहण्णमंतरं होदि। उवसंतकसायस्स हेट्ठा ओदरिय पुणो सव्वजहण्णेण कालेण उवसंतकसायत्तं पडिवण्णे जहण्णमंतरं होदि।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं[3] ॥ १२४ ॥

अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एकेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भादि आठ वर्षोंसे ऊपर उपशमसम्यक्त्व तथा अप्रमत्तगुणस्थानको युगपत् प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस गुणस्थानका आरंभ दिखाई दिया। पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो अन्तिम पंचेन्द्रिय भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। दर्शनमोहनीयका क्षय कर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। पश्चात् प्रमत्तसंयत (३) अप्रमत्तसंयत (४) हुआ। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त मिलाने पर आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पंचेन्द्रियकी स्थिति अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है।

चारों उपशामकोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है ॥ १२२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व, इस प्रकार ओघसे इनमें कोई भेद नहीं है।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥१२३॥

अपूर्वकरणसंयत आदि तीनों उपशामकोंका ऊपर चढ़कर नीचे उतरनेपर जघन्य अन्तर होता है। किन्तु उपशान्तकषायका नीचे उतरकर पुनः सर्वजघन्य कालसे उपशान्तकषायको प्राप्त होनेपर जघन्य अन्तर होता है।

चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र और सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ १२४ ॥

---

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम्। स. सि. १, ८.

एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सेहि विसुद्धो उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो अंतोमुहुत्तेण (१) वेदगसम्मत्तं गदो। तदो अंतोमुहुत्तेण (२) अणंताणुबंधी विसंजोजिय (३) विस्समिय (४) दंसणमोहणीयमुवसमिय (५) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (६) उवसमसेढीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (७)। अपुव्वो (८) अणियट्टी (९) सुहुमो (१०) उवसंतो (११) सुहुमो (१२) अणियट्टी (१३) अपुव्वो (१४)। हेट्ठा ओदरिदूण पंचिंदियट्ठिदिं परिभमिय पच्छिमे भवे मणुसेसु उववण्णो। दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो। पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण उवसमसेढीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण अपुव्वउवसामगो जादो। लद्धमंतरं (१५)। तदो अणियट्टी (१६) सुहुमो (१७) उवसंतकसाओ (१८) सुहुमो (१९) अणियट्टी (२०) अपुव्वो (२१) अप्पमत्तो (२२) पमत्तो (२३) अप्पमत्तो (२४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं अट्ठहि वस्सेहि तीसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी अपुव्वुक्कस्संतरं। एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं वत्तव्वं। णवरि अट्ठावीस-छव्वीस-चदुवीसअंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सूणा सगट्ठिदी अंतरं होदि।

....

एकेन्द्रिय-स्थितिमें स्थित एक जीव, मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भादि आठ वर्षोंसे विशुद्ध हो उपशमसम्यक्त्वको और अप्रमत्तगुणस्थानको युगपत् प्राप्त होता हुआ अन्तर्मुहूर्तसे (१) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे (२) अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कका विसंयोजन करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका उपशाम कर (५) प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी परावर्तन-सहस्रोंको करके (६) उपशमश्रेणीके प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (७)। पश्चात् अपूर्वकरणसंयत (८) अनिवृत्तिकरणसंयत (९) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (१०) उपशान्तकषाय (११) सूक्ष्मसाम्पराय (१२) अनिवृत्तिकरणसंयत (१३) अपूर्वकरणसंयत (१४) हो, नीचे उतरकर पंचेन्द्रियकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पश्चात् दर्शनमोहनीयका क्षयकर संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र अवशेष रहनेपर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ। पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तपरावर्तन-सहस्रोंको करके उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (१५)। पश्चात् अनिवृत्तिकरणसंयत (१६) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (१७) उपशान्तकषाय (१८) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (१९) अनिवृत्तिकरणसंयत (२०) अपूर्वकरणसंयत (२१) अप्रमत्तसंयत (२२) प्रमत्तसंयत (२३) और अप्रमत्तसंयत हुआ (२४)। इसके ऊपर क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त होते हैं। इस प्रकार तीस अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम पंचेन्द्रियस्थितिप्रमाण अपूर्वकरणका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे शेष तीनों उपशामकोंका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके क्रमशः अट्ठाईस छब्बीस और चौबीस अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्ष कम पंचेन्द्रिय-स्थितिप्रमाण अन्तर होता है।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ १२५ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा; एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरमिच्चेएहि ओघादो भेदाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १२६ ॥

कुदो ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरमिच्चेदेण ओघादो भेदाभावा ।

पंचिंदियअपज्जत्ताणं वेइंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ १२७ ॥

णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टमिच्चेएहि वेइंदियअपज्जत्तेहिंतो पंचिंदिय-अपज्जत्ताणं भेदाभावा ।

एदमिंदियं पडुच्च अंतरं[2] ॥ १२८ ॥

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ १२९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १२५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह मास अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है; इस प्रकार ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है ।

सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १२६ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है; इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है ।

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ॥१२७॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कर्षसे अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर होता है; इस प्रकार द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंसे पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

यह गतिकी अपेक्षा अन्तर कहा है ॥ १२८ ॥

गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १२९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ शेषाणां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८. २ एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरमुक्तम् । स. सि. १, ८.
३ गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणा-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १३० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ १३१ ॥

कुदो? एदेसिमणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वत्थोवेण कालेण पुणो अप्पिद-कायमागदाणं खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्णंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[3] ॥ १३२ ॥

कुदो? अप्पिदकायादो वणप्फदिकाइएसुप्पज्जिय अंतरिदजीवो वणप्फदिकाय-ट्ठिदिं आवलियाए असंखेज्जदिभागपोग्गलपरियट्टमेत्तं परिभमिय अणप्पिदसेसकायट्ठिदिं च, तदो अप्पिदकायमागदो जो होदि, तस्स सुत्तुत्तुक्कस्संतरुवलंभा ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, इनके बादर और सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३१ ॥

क्योंकि, इन पृथिवीकायिकादि जीवोंका अविवक्षित अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वस्तोक कालसे पुनः विवक्षित कायमें आये हुए जीवोंके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १३२ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायसे वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न होकर अन्तरको प्राप्त हुआ जीव आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गलपरिवर्तन वनस्पतिकायकी स्थिति तक परिभ्रमण कर और अविवक्षित शेष कायिक जीवोंकी भी स्थिति तक परिभ्रमण करके तत्पश्चात् विवक्षित कायमें जो जीव आता है उसके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

---

१ कायानुवादेन पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1]॥ १३३ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ १३४ ॥

कुदो ? अप्पिदकायादो अणप्पिदकायं गंतूणं अइलहुएण कालेण पुणो अप्पिद-कायमागदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा[3] ॥ १३५ ॥

कुदो ? अप्पिदकायादो पुढवि-आउ-तेउ-वाउकाइएसु उप्पज्जिय असंखेज्जलोग-मेत्तकालं तत्थेव परिभमिय पुणो अप्पिदकायमागदस्स असंखेज्जलोगमेत्तंतरुवलंभा ।

वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३६ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, उनके वादर व सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥१३४॥

क्योंकि, विवक्षित कायसे अविवक्षित कायको जाकर अतिलघु कालसे पुनः विवक्षित कायमें आये हुये जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है ॥ १३५ ॥

क्योंकि, विवक्षित वनस्पतिकायसे पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवोंमें उत्पन्न होकर असंख्यात लोकमात्र काल तक उन्हींमें परिभ्रमण कर पुनः विवक्षित वनस्पतिकायको आये हुए जीवके असंख्यातलोकप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

वादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ वनस्पतिकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.   ३ उत्कर्षेणासंख्येया लोकाः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३७ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय ।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १३८ ॥

कुदो ? अप्पिदकायादो णिगोदजीवेसुप्पण्णस्स अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टाणि सेस-कायपरिब्भमणेण सादिरेयाणि परिभमिय अप्पिदकायमागदस्स अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्ट-मेत्तंतरुवलंभा ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ १३९ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण णत्थि अंतरं, णिरंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि; इच्चेदेहि मिच्छादिट्ठि-ओघादो भेदाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[2] ॥ १४० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥१३७॥

यह सूत्र भी सुगम ही है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १३८ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायसे निगोद जीवोंमें उत्पन्न हुए, तथा उसमें अढ़ाई पुद्गल-परिवर्तन और शेष कायिक जीवोंमें परिभ्रमण करनेसे उनकी स्थितिप्रमाण साधिक काल परिभ्रमणकर विवक्षित कायमें आये हुए जीवके अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १३९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, निरन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त अन्तर है और उत्कर्षसे देशोन दो छ्यासठ सागरोपम अन्तर है; इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोंके ओघ अन्तरसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १४० ॥

---

१ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; इच्चे-एहि भेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ १४१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४२ ॥

तं जधा— एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो असण्णिपंचिंदिएसु उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिदूण (४) विस्संतो (५) मदो भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९) सासणं गदो । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । तसट्ठिदिं परियट्टिदूण अवसाणे सासणं गदो । लद्धमंतरं । तदो तत्थ थावरपाओग्गमावलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदूण कालं गदो

क्योंकि, जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर है, इस प्रकार ओघसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ १४२ ॥

जैसे— एकेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरा और भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हो (९) सासादनगुणस्थानको गया । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और त्रस जीवोंकी स्थितिप्रमाण परिवर्तन करके अन्तमें सासादनगुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । तत्पश्चात् उस सासादनगुणस्थानमें स्थावरकायके योग्य आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

थावरकाएसु उववण्णो। आवलियाए असंखेज्जदिभागेण णवहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तट्ठिदी अंतरं होदि।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिय जीवो असण्णि-पंचिंदिएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिय (४) विस्समिय (५) पुव्वुत्तदेवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९)। सम्मामिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो सगट्ठिदिं परिभमिय अंतोमुहुत्ताव-सेसाए तस-तसपज्जत्तट्ठिदीए सम्मामिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं (११)। मिच्छत्तं गंतूण (१२) एइंदिएसु उववण्णो। बारसअंतोमुहुत्तेहि ऊणिया तस-तसपज्जत्तट्ठिदी उक्क-स्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १४३ ॥

सुगममेदं।

तक रह कर मरा और स्थावरकायिकोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भाग और नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंकी स्थितिप्रमाण अन्तर होता है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तक सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रिय जीवोंकी स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। पांच पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) पूर्वोक्त देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वको गया (१०)। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तककी स्थितिके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जानेपर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (११)। पीछे मिथ्यात्वको जाकर (१२) एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इन बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तकोंकी स्थिति ही उक्त दोनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक त्रसकायिक और त्रस-कायिकपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४४ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि[1] ॥ १४५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो असण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कालं करिय भवणवासिएसु वाणवेंतरेसु वा देवेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९) । उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए आसाणं गदो । अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०) । लद्धमंतरं । पुणो सासणं गदो आवलियाए असंखेज्जदिभागं कालमच्छिदूण एइंदिएसु उववण्णो । दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया तस-तसपज्जत्तट्ठिदी उक्कस्संतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानवर्ती त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सहस्रसागरोपम और कुछ कम दो सहस्र सागरोपम है ॥ १४५ ॥

इनमेंसे पहले त्रस और त्रसपर्याप्तक असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एकेन्द्रियस्थितिको प्राप्त कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्छिम पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ । पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) काल कर भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९) । उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया और अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१०) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः सासादनगुणस्थानको जाकर वहां आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक रहकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार इन दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति उन्हींके असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

---

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके । स. सि. १, ८.

संजदासंजदस्स उच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो। असण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पादिदो ? ण, तत्थ संजमासंजम-ग्गहणाभावा। तिण्णिपक्ख-तिण्णिदिवसेहि अंतोमुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (१)। पढमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय पच्छिमे तसभवे सम्मत्तं घेत्तूण दंसण-मोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमासंजमं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं। अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६)। उवरि खवगसेढिम्हि छ मुहुत्ता। एवं बारसअंतोमुहुत्ताहिय-अट्ठेतालीसदिवसेहि ऊणिया तस-तसपज्जत्तट्ठिदी संजदा-संजदुक्कस्संतरं।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठ-वस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) पमत्तो (२) हेट्ठा परिवदिय अंतरिदो। सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे सम्मादिट्ठी मणुसो जादो। दंसणमोहणीयं

त्रस और त्रसपर्याप्तक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एकेन्द्रिय जीवोंकी स्थितिमें स्थित कोई एक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ।

शंका—उक्त जीवको असंज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें संयमासंयमके ग्रहण करनेका अभाव है।

पुनः उत्पन्न होनेके पश्चात् तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया और अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तिम त्रसभवमें सम्यक्त्वको ग्रहणकर और दर्शनमोहनीयका क्षय कर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण संसारके अवशिष्ट रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) और अप्रमत्तसंयत (६) हुआ। इनमें क्षपकश्रेणीसम्बन्धी ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक अड़तालीस दिनोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्त प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एकेन्द्रिय स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि ले आठ वर्षके पश्चात् उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् प्रमत्तसंयत हो (२) नीचे गिर कर अन्तरको प्राप्त हुआ। अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण परिभ्रमण करके अन्तिम भवमें सम्यग्दृष्टि मनुष्य हुआ। पुनः दर्शनमोहनीयका

खविय अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो (३) लद्धमंतरं। भूओ अप्पमत्तो (४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं अट्ठहि वस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणा तस-तसपज्जत्तट्ठिदी उक्कस्संतरं।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को थावरट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो गब्भादिअट्ठ-वस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अंतरिदो सगट्ठिदिं परिभमिय पच्छिमे भवे मणुसो जादो। सम्मत्तं पडिवण्णो दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (२)। लद्धमंतरं। तदो पमत्तो (३) अप्पमत्तो (४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठहि वस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया तस-तसपज्जत्तट्ठिदी उक्कस्संतरं।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[1] ॥ १४६ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १४७ ॥

....

क्षय करके अप्रमत्तसंयत हो प्रमत्तसंयत हुआ (३)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया। पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति ही उन प्रमत्तसंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्त अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– स्थावरकायकी स्थितिमें विद्यमान कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि ले आठ वर्षसे उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ। सम्यक्त्वको प्राप्त कर पुनः दर्शनमोहनीयका क्षय कर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जानेपर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत (३) और अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन अप्रमत्तसंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तक चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४७ ॥

....

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि[1] ॥ १४८ ॥

जधा पंचिंदियमग्गणाए चदुण्हमुवसामगाणमंतरपरूवणा परूविदा, तधा एत्थ वि णिरवयवा परूवेदव्वा ।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १४९ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १५० ॥

एदं पि सुगमं ।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो[2] ॥ १५१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टमिच्चेएहि पंचिंदियअपज्जत्तेहिंतो तसकाइय-अपज्जत्ताणं भेदाभावा ।

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सहस्र सागरोपम तथा कुछ कम दो सहस्र सागरोपम है ॥ १४८ ॥

जिस प्रकारसे पंचेन्द्रियमार्गणामें चारों उपशामकोंकी अन्तरप्ररूपणा प्ररूपित की है, उसी प्रकार यहांपर भी सामस्त्यरूपसे अविकल प्ररूपणा करना चाहिए ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके अन्तरके समान है ॥ १५१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण, उत्कर्षसे अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है; इस प्रकार पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंसे त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तकोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

---

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके । स. सि. १, ८.

२ शेषाणां पंचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

एदं कायं पडुच्च अंतरं । गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५३ ॥

कुदो ? अप्पिदजोगसहिदअप्पिदगुणट्ठाणाणं सव्वकालं संभवादो । कधमेगजीवमासेज्ज अंतराभावो ? ण ताव जोगंतरगमणेणंतरं संभवदि, मग्गणाए विणासापत्तीदो। ण च अण्णगुणगमणेण अंतरं संभवदि, गुणंतरं गदस्स जीवस्स जोगंतरगमणेण विणा पुणो आगमणाभावादो । तम्हा एगजीवस्स वि णत्थि चेव अंतरं ।

यह अन्तर कायकी अपेक्षा कहा है । गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें, मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५३ ॥

क्योंकि, सूत्रोक्त विवक्षित योगोंसे सहित विवक्षित गुणस्थान सर्वकाल संभव हैं।

शंका—एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव कैसे कहा ?

समाधान—सूत्रोक्त गुणस्थानोंमें न तो अन्य योगमें गमनद्वारा अन्तर सम्भव है, क्योंकि, ऐसा मानने पर विवक्षित मार्गणाके विनाशकी आपत्ति आती है । और न अन्य गुणस्थानमें जानेसे भी अन्तर सम्भव है, क्योंकि, दूसरे गुणस्थानको गये हुए जीवके अन्य योगको प्राप्त हुए विना पुनः आगमनका अभाव है । इसलिए सूत्रमें बताये गये जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है ।

१ योगानुवादेन कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.   २ प्रतिषु 'अपगद' इति पाठः ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १५४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५५ ॥

कुदो ? दोण्हं रासीणं सांतरत्तादो । सांतरत्ते वि अहियमंतरं किण्ण होदि ? सहावदो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ १५६ ॥

कुदो ? गुण-जोगंतरगमणेहि तदसंभवा ।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[3] ॥ १५७ ॥

कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तमिच्चेएहि ओघादो भेदाभावा ।

....

उक्त योगवाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ १५५ ॥

क्योंकि, ये दोनों ही राशियां सान्तर हैं ।

शंका—राशियोंके सान्तर रहने पर भी अधिक अन्तर क्यों नहीं होता है ?

समाधान—स्वभावसे ही अधिक अन्तर नहीं होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५६ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानों और अन्य योगोंमें गमनद्वारा उनका अन्तर असंभव है ।

उक्त योगवाले चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १५७ ॥

क्योंकि, जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है, इस प्रकार ओघके अन्तरसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

....

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि, १, ८.

३ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १५८॥

जोग-गुणंतरगमणेण तदसंभवा। एगजोगपरिणमणकालादो गुणकालो संखेज्जगुणो त्ति कधं णव्वदे ? एगजीवस्स अंतराभावपदुप्पायणसुत्तादो।

चदुण्हं खवाणमोघं[2] ॥ १५९ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण छम्मासं; एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरमिच्चेदेहि भेदाभावा।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६० ॥

तम्हि जोग-गुणंतरसंकंतीए अभावादो।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १६१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५८ ॥

क्योंकि, अन्य योग और अन्य गुणस्थानमें गमनद्वारा उनका अन्तर असंभव है।

शंका—एक योगके परिणमन-कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—एक जीवके अन्तरका अभाव बतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि एक योगके परिवर्तन-कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है।

उक्त योगवाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १५९ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे छह मास अन्तर है, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है; इस प्रकार ओघसे अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६० ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें योग और गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ १६१ ॥

---

१ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; इच्चेदेहि ओघादो भेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६२ ॥

कुदो ? तत्थ जोगंतरगमणाभावा । गुणंतरं गदस्स वि पडिणियत्तिय सासणगुणेण तम्हि चेव जोगे परिणमणाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६३ ॥

कुदो ? देव-णेरइय-मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुसेसु उप्पत्तीए विणा मणुस-असंजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसु उप्पत्तीए विणा एगसमयं असंजदसम्मादिट्ठिविरहिद-ओरालियमिस्सकायजोगस्स संभवादो ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६४ ॥

तिरिक्ख-मणुस्सेसु वासपुधत्तमेत्तकालमसंजदसम्मादिट्ठीणमुववादाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६५ ॥

क्योंकि, जघन्यसे एक समय, और उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तर है, इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६२ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगकी अवस्थामें अन्य योगमें गमनका अभाव है। तथा अन्य गुणस्थानको गये हुए भी जीवके लौटकर सासादनगुणस्थानके साथ उसी ही योगमें परिणमनका अभाव है।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १६३ ॥

क्योंकि, देव, नारकी और मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका मनुष्योंमें उत्पत्तिके विना, तथा मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका तिर्यंचोंमें उत्पत्तिके विना असंयतसम्यग्दृष्टि-योंसे रहित औदारिकमिश्रकाययोगका एक समयप्रमाण काल सम्भव है।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १६४ ॥

क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्योंमें वर्षपृथक्त्वप्रमाण कालतक असंयतसम्यग्दृष्टि-योंका उत्पाद नहीं होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६५ ॥

तम्हि तस्स गुण-जोगंतरसंकंतीए अभावा।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥

कुदो ? कवाडपज्जायविरहिदकेवलीणमेगसमओवलंभा।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६७ ॥

कवाडपज्जाएण विणा केवलीणं वासपुधत्तच्छणसंभवादो।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६८ ॥

कुदो ? जोगंतरमगंतूण ओरालियमिस्सकायजोगे चेव ट्ठिदस्स अंतरासंभवा।

वेउव्वियकायजोगीसु चदुट्ठाणीणं मणजोगिभंगो ॥ १६९ ॥

कुदो ? णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण साधम्मादो।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

....

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवमें उक्त गुणस्थान और औदारिकमिश्रकाययोगके परिवर्तनका अभाव है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १६६ ॥

क्योंकि, कपाटपर्यायसे रहित केवली जिनोंका एक समय अन्तर पाया जाता है।

औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १६७ ॥

क्योंकि, कपाटपर्यायके विना केवली जिनोंका वर्षपृथक्त्व तक रहना सम्भव है।

औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६८ ॥

क्योंकि, अन्य योगको नहीं प्राप्त होकर औदारिकमिश्रकाययोगमें ही स्थित केवलीके अन्तरका होना असंभव है।

वैक्रियिककाययोगियोंमें आदिके चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान है ॥ १६९ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोंमें समानता है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है, ॥ १७० ॥

तं जहा– वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठिणो सव्वे वेउव्वियकायजोगं गदा। एगसमयं वेउव्वियमिस्सकायजोगो मिच्छादिट्ठीहि विरहिदो दिट्ठो। विदियसमए सत्तट्ठ जणा वेउव्वियमिस्सकायजोगे दिट्ठा। लद्धमेगसमयमंतरं।

उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं ॥ १७१ ॥

तं जधा– वेउव्वियमिस्समिच्छादिट्ठीसु सव्वेसु वेउव्वियकायजोगं गदेसु बारस-मुहुत्तमेत्तमंतरिय पुणो सत्तट्ठजणेसु वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडिवण्णेसु बारसमुहुत्तंतरं होदि।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७२ ॥

तत्थ जोग-गुणंतरगमणाभावा।

सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७३ ॥

कुदो? सासणसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमयं, पलिदो-वमस्स असंखेज्जदिभागो तेहिं[1], एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं तेण; असंजदसम्मादिट्ठीणं

जैसे– सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिककाययोगको प्राप्त हुए। इस प्रकार एक समय वैक्रियिकमिश्रकाययोग, मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित दिखाई दिया। द्वितीय समयमें सात आठ जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें दृष्टिगोचर हुए। इस प्रकार एक समय अन्तर उपलब्ध हुआ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है ॥ १७१ ॥

जैसे– सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके वैक्रियिककाययोगको प्राप्त हो जाने पर बारह मुहूर्तप्रमाण अन्तर होकर पुनः सात आठ जीवोंके वैक्रियिक-मिश्रकाययोगको प्राप्त होने पर बारह मुहूर्तप्रमाण अन्तर होता है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७२ ॥

क्योंकि, उन वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके अन्य योग और अन्य गुणस्थानमें गमनका अभाव है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७३ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक समय और पल्योपमका असंख्यातवां भाग है इनसे, एक

१ अप्रतौ 'भागेहि'; आप्रतौ '-भागोत्तेहि'; कप्रतौ '-भागत्तेहि' इति पाठः।

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सगयएगसमय-मासपुधत्तंतरेण[1], एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण च तदो भेदाभावा।

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७४ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १७५ ॥

एदं पि सुगममेव।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७६ ॥

तम्हि जोग-गुणंतरग्गहणाभावा।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७७ ॥

जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है इससे; असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मासपृथक्त्व अन्तर होनेसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे इन वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १७४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १७५ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७६ ॥

क्योंकि, आहारककाययोग या आहारकमिश्रकाययोगमें अन्य योग या अन्य गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलियोंका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७७ ॥

---

१ प्रतिषु ' -पुधत्तत्तणेण ' इति पाठः।

मिच्छादिट्ठीणं णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण; सासणसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवगयएयसमय-पलिदोवमासंखेज्जदिभागंतरेहि, एगजीवगयअंतराभावेण; असंजदसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवगयएयसमयमास-पुधत्तंतरेहि, एगजीवगयअंतराभावेण; सजोगिकेवलिणाणाजीवगयएगसमय-वासपुधत्तेहि, एगजीवगयअंतराभावेण च दोण्हं समाणत्तुवलंभा।

एवं जोगमग्गणा समत्ता।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १७८ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १७९ ॥

कुदो? इत्थिवेदमिच्छादिट्ठिस्स दिट्ठमग्गस्स अण्णगुणं गंतूण पडिणियत्तिय लहुं मिच्छत्तं पडिवण्णस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि[3] ॥ १८० ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे; सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवगत जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरसे, तथा एक जीवगत अन्तरके अभावसे; असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवगत जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वसे, तथा एक जीवगत अन्तरका अभाव होनेसे; सयोगिकेवलियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तरोंसे, तथा एक जीवगत अन्तरका अभाव होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी, इन दोनोंके समानता पाई जाती है।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७९ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवके अन्य गुणस्थानको जाकर और लौटकर शीघ्र ही मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है।

स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्योपम है ॥ १८० ॥

---

१ वेदानुवादेन स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पंचपंचाशत्पल्योपमानि देशोनानि। स. सि. १, ८.

तं जहा– एक्को पुरिसवेदो णउंसयवेदो वा अट्ठावीसमोहसंतकम्मिओ पणवण्ण-पलिदोवमाउट्ठिदिदेवीसु[1] उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो अंतरिदो अवसाणे आउअं बंधिय मिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं (४)। सम्मत्तेण बद्धाउअत्तादो सम्मत्तेणेव णिग्गदो (५) मणुसो जादो। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि पणवण्ण पलिदोवमाणि उक्कस्संतरं होदि। छप्पुढविणेरइएसु सोहम्मादिदेवेसु च सम्माइट्ठी बद्धाउओ पुव्वं मिच्छत्तेण णिस्सारिदो। एत्थ पुण पणवण्णपलिदोवमाउट्ठिदिदेवीसु तहा ण णिस्सारिदो। एत्थ कारणं जाणिय वत्तव्वं।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[2] ॥ १८१ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[3] ॥ १८२ ॥

जैसे– मोहनीयकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी, अथवा नपुंसकवेदी जीव, पचवन पल्योपमकी आयुस्थितिवाली देवियोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और आयुके अन्तमें आगामी भवकी आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (४)। सम्यक्त्वके साथ आयुके बांधनेसे सम्यक्त्वके साथ ही निकला (५) और मनुष्य हुआ। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पचवन पल्योपम स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पहले ओघप्ररूपणामें छह पृथिवियोंके नारकियोंमें तथा सौधर्मादि देवोंमें बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वके द्वारा निकाला था। किन्तु यहां पचवन पल्योपमकी आयुस्थितिवाली देवियोंमें उस प्रकारसे नहीं निकाला। यहांपर इसका कारण जानकर कहना चाहिए।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १८१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८२ ॥

१ प्रतिषु '-देवेसु' इति पाठः।

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। स. सि. १, ८.

एदं पि सुत्तं सुगममेव ।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ १८३ ॥

तं जहा– एक्को अण्णवेदट्ठिदिमच्छिदो सासणद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति इत्थिवेदेसु उववण्णो एगसमयं सासणगुणेण दिट्ठो । विदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। त्थीवेदट्ठिदिं परिभमिय अवसाणे त्थीवेदट्ठिदीए एगसमयावसेसाए सासणं गदो । लद्ध-मंतरं । मदो वेदंतरं गदो । वेहि समएहि ऊणयं पलिदोवमसदपुधत्तमंतरं लद्धं ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससमोहसंतकम्मिओ अण्णवेदो देवीसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मा-मिच्छत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । त्थीवेदट्ठिदिं परिभमिय अंते सम्मा-मिच्छत्तं गदो (५)। लद्धमंतरं । जेण गुणेण आउअं बद्धं तं गुणं पडिवज्जिय अण्णवेदे उववण्णो (६)। एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया त्थीवेदट्ठिदी सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि ।

यह सूत्र भी सुगम ही है ।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व है ॥ १८३ ॥

जैसे अन्य वेदकी स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव सासादनगुणस्थानके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ और एक समय सासादनगुण-स्थानके साथ दिखाई दिया । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तमें स्त्रीवेदकी स्थितिमें एक समय अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः मरा और अन्य वेदको प्राप्त होगया । इस प्रकार दो समयोंसे कम पल्योपमशतपृथक्त्वकाल स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहनीयकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव देवियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । स्त्रीवेदकी स्थिति-प्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । पीछे जिस गुणस्थानसे आयुको बांधा था, उसी गुणस्थानको प्राप्त होकर अन्य जीवोंमें उत्पन्न हुआ (६)। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्त्रीवेदकी स्थिति सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

---

१ उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १८४ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १८५ ॥

कुदो ? अण्णगुणं गंतूण पडिणियत्तिय तं चेव गुणमागदाणमंतोमुहुत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं[3] ॥ १८६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे । तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ देवेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गदो अंतरिदो त्थीवेदट्ठिदिं परिभमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (५) । लद्धमंतरं । छावलियावसेसे पढमसम्मत्तकाले सासणं गंतूण मदो वेदंतरं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणयं पलिदोवमसदपुधत्तमंतरं होदि । देसूण-

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त गुणस्थानवाले स्त्रीवेदियोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८५ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानको जाकर और लौटकर उसी ही गुणस्थानको आये हुए जीवोंका अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व है ॥ १८६ ॥

इनमेंसे पहले स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकी अट्ठाईस कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो, स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थानको जाकर मरा और अन्य वेदको गया । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पल्योपमशतपृथक्त्वप्रमाण अन्तर होता है ।

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

वयणं सुत्ते किण्ण कदं ? ण, पुधत्तणिद्देसेणेव तस्स अवगमादो ।

संजदासंजदस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णवेदो त्थीवेदेसु उववण्णो वे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतो दिवसपुधत्तेण विसुद्धो वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (१)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो त्थीवेदट्ठिदिं परिभमिय अंते पढमसम्मत्तं देससंजमं च जुगवं पडिवण्णो (२)। आसाणं गंतूण मदो देवो जादो। वेहि मुहुत्तेहि दिवसपुधत्ताहिय-वेमासेहि य ऊणा त्थीवेदट्ठिदी उक्कस्संतरं होदि।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णवेदो त्थीवेदमणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सिओ वेदगसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१)। पुणो पमत्तो जादो (२)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो त्थीवेदट्ठिदिं परिभमिय पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (३)। मदो देवो जादो। अट्ठवस्सेहिं तीहिं अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया त्थीवेदट्ठिदी लद्धमुक्कस्संतरं। एवमप्पमत्तस्स वि उक्कस्संतरं भाणिदव्वं, विसेसाभावा।

....

शंका—सूत्रमें 'देशोन' ऐसा वचन क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'पृथक्त्व' इस पदके निर्देशसे ही उस देशोनताका ज्ञान हो जाता है।

स्त्रीवेदी संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहनीयकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ। दो मास गर्भमें रह कर निकला और दिवसपृथक्त्वसे विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व और देशसंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (२)। पुनः सासादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया। इस प्रकार दो मुहूर्त और दिवसपृथक्त्वसे अधिक दो माससे कम स्त्रीवेदकी स्थिति स्त्रीवेदी संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

स्त्रीवेदी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, स्त्रीवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भको आदि लेकर आठ वर्षका हो वेदकसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (३)। पश्चात् मरा और देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ।

इसी प्रकारसे स्त्रीवेदी अप्रमत्तसंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है।

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघं[1] ॥ १८७ ॥

कुदो? एगसमय-वासपुधत्तंतरेहि ओघादो भेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १८८ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं[3] ॥ १८९ ॥

तं जहा– एक्को अण्णवेदो अट्ठावीसमोहसंतकम्मिओ इत्थीवेदमणुसेसुववण्णो। अट्ठवस्सिओ सम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अणंताणुबंधी विसंजोइय (२) दंसणमोहणीयमुवसामिय (३) अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) अपुव्वो (७) अणियट्टी (८) सुहुमो (९) उवसंतो (१०) भूओ पडिणियत्तो सुहुमो (११) अणियट्टी (१२) अपुव्वो (१३) हेट्ठा पडिदूणंतरिदो इत्थिवेदट्ठिदिं भमिय अवसाणे संजमं पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होदूण अपुव्वुवसामगो जादो। लद्धमंतरं। तदो णिद्दा-

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है ॥ १८७ ॥

क्योंकि, जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, इनकी अपेक्षा ओघसे इनमें कोई भेद नहीं है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व है ॥ १८९ ॥

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, स्त्रीवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ वर्षका होकर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीयका उपशम कर (३) अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) और उपशान्तकषाय (१०) होकर पुनः प्रतिनिवृत्त हो सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत हो (१३) नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ और स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें संयमको प्राप्त हो कृतकृत्यवेदक होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ। इस प्रकार

१ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

पयलाणं बंधे वोच्छिण्णे मदो देवो जादो। अट्ठवस्सेहि तेरसंतोमुहुत्तेहि य अपुव्वकरणद्धाए सत्तमभागेण च ऊणिया सगट्ठिदी अंतरं। अणियट्टिस्स वि एवं चेव। णवरि बारस अंतोमुहुत्ता एगसमओ च वत्तव्वो।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १९० ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं[2] ॥ १९१ ॥

अप्पमत्तत्थीवेदाणं वासपुधत्तेण विणा अण्णस्स अंतरस्स अणुवलंभादो।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ १९२ ॥

सुगममेदं।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[4] ॥ १९३ ॥

अन्तर लब्ध हुआ। पीछे निद्रा और प्रचलाके बंध-विच्छेद हो जाने पर मरा और देव होगया। इस प्रकार आठ वर्ष और तेरह अन्तर्मुहूर्तोंसे, तथा अपूर्वकरण-कालके सातवें भागसे हीन अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर है। अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी इसी प्रकारसे अन्तर होता है। विशेष बात यह है कि उनके तेरह अन्तर्मुहूर्तोंके स्थानपर बारह अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम कहना चाहिए।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १९० ॥

यह सूत्र सुगम है।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १९१ ॥

क्योंकि, अप्रमत्तसंयत स्त्रीवेदियोंका वर्षपृथक्त्वके अतिरिक्त अन्य अन्तर नहीं पाया जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १९२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १९३ ॥

---

१ द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि, १, ८.

४ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

8617

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवविसयअंतोमुहुत्त-देसूणवेछावट्ठि-सागरोवमंतरेहि य तदो भेदाभावा।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १९४ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९५ ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १९६ ॥

एदं पि सुबोहं।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं[3] ॥ १९७ ॥

तं जहा- एक्को अण्णवेदो उवसमसम्मादिट्ठी सासणं गंतूण सासणद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति पुरिसवेदो जादो। सासणगुणेण एगसमयं दिट्ठो, विदियसमए मिच्छत्तं

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम अन्तरकी अपेक्षा ओघमिथ्यादृष्टिके अन्तरसे पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ १९५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९६ ॥

यह सूत्र भी सुबोध है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ १९७ ॥

जैसे- अन्य वेदवाला एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, सासादन गुणस्थानमें जाकर, सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर पुरुषवेदी होगया और सासादन गुणस्थानके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

गंतूणंतरिदो पुरिसवेदट्ठिदिं भमिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं घेत्तूण सासणं पडिवण्णो। बिदियसमए मदो देवेसु उववण्णो। एवं बि-समऊणसागरोवमसदपुधत्तमुक्कस्संतरं होदि।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णवेदो देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो सगट्ठिदिं परिभमिय अंते सम्मामिच्छत्तं गदो (५)। लद्धमंतरं। अण्णगुणं गंतूण (६) अण्णवेदे उववण्णो। छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणं सागरोवमसदपुधत्तमुक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १९८ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १९९ ॥

एदं पि सुगमं।

जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ। पुरुषवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके आयुके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। पश्चात् द्वितीय समयमें मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उक्त जीवोंका दो समय कम सागरोपमशतपृथक्त्व अन्तर होता है।

पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, देवोंमें उत्पन्न हुआ, छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। तत्पश्चात् अन्य गुणस्थानको जाकर (६) अन्य वेदमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १९८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं[1] ॥ २०० ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णवेदो देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो सगट्ठिदिं भमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (५)। छावलियावसेसे उवसमसम्मत्तकाले आसाणं गंतूण मदो देवेसु उववण्णो। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणं सागरोवमसदपुधत्तमंतरं होदि।

संजदासंजदस्स वुच्चदे– एक्को अण्णवेदो पुरिसवेदेसु उववण्णो। वे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतो दिवसपुधत्तेण उवसमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो (१) मिच्छत्तं गंतूण पुरिसवेदट्ठिदिं परिभमिय अंते मणुसेसु उववण्णो। कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं। तदो अप्पमत्तो (३) पमत्तो (४) अप्पमत्तो (५)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं वेहि मासेहि तीहि दिवसेहि एक्कारसेहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणा पुरिसवेदट्ठिदी उक्कस्संतरं होदि। किं कारणं अंतरे लद्धे मिच्छत्तं णेदूण अण्णवेदेसु ण

असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदियोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २०० ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि पुरुषवेदी जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनको जाकर मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व पुरुषवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर होता है।

संयतासंयत पुरुषवेदी जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– कोई एक अन्य वेदी जीव पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ। दो मास गर्भमें रहकर निकलता हुआ दिवसपृथक्त्वसे उपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ। जब उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां रहीं तब सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो (१) मिथ्यात्वको जाकर पुरुषवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पश्चात् अप्रमत्तसंयत (३) प्रमत्तसंयत (४) और अप्रमत्तसंयत हुआ (५)। इनमें ऊपरके गुणस्थानोंसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार दो मास, तीन दिन और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पुरुषवेदकी स्थिति ही पुरुषवेदी संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

शंका—अन्तर प्राप्त हो जानेपर पुनः मिथ्यात्वको ले जाकर अन्य वेदियोंमें

१ उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

उप्पादिदो ? ण एस दोसो, जेण कालेण मिच्छत्तं गंतूण आउअं बंधिय अण्णवेदेसु उववज्जदि, सो कालो सिज्झणकालादो संखेज्जगुणो त्ति कट्टु अणुप्पाइदत्तादो। उवरिल्लाणं पि एदं चेय कारणं वत्तव्वं। पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणं पंचिंदियपज्जत्तभंगो। णवरि विसेसं जाणिय वत्तव्वं।

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[1] ॥ २०१ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २०२ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं[3] ॥ २०३ ॥

उत्पन्न नहीं कराया, इसका क्या कारण है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जिस कालसे मिथ्यात्वको जाकर और आयुको बांधकर अन्य वेदियोंमें उत्पन्न होता है, वह काल सिद्ध होनेवाले कालसे संख्यातगुणा है, इस अपेक्षासे उसे मिथ्यात्वमें ले जाकर पुनः अन्य वेदियोंमें नहीं उत्पन्न कराया।

ऊपरके गुणस्थानोंमें भी यही कारण कहना चाहिए। पुरुषवेदी प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका भी अन्तर पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंके समान है। केवल इनमें जो विशेषता है उसे जानकर कहना चाहिए।

पुरुषवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा इन दोनों गुणस्थानोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २०१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २०३ ॥

---

१ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णवेदो पुरिसवेदमणुसेसु उववण्णो अट्ठवस्सिओ जादो । सम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अणंताणुबंधिं विसंजोइय (२) दंसणमोहणीयमुवसामिय (३) अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) अपुव्वो (७) अणियट्टी (८) सुहुमो (९) उवसंतकसाओ (१०) पडिणियत्तो सुहुमो (११) अणियट्टी (१२) अपुव्वो (१३) हेट्ठा परियट्टिय अंतरिदो । सागरोवमसदपुधत्तं परिभमिय कदकरणिज्जो होदूण संजमं पडिवज्जिय अपुव्वो जादो । लद्धमंतरं । उवरि पंचिंदियभंगो । एवमट्ठवस्सेहि एगूणतीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणा सगट्ठिदी अंतरं होदि । अणियट्टिस्स वि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि अट्ठवस्सेहि सत्तावीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणं सागरोवमसदपुधत्तमंतरं होदि ।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २०४ ॥

सुगममेदं ।

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्यवेदी जीव पुरुषवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। आठ वर्षका होकर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीयका उपशमन कर (३) अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तकषाय (१०) पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) अपूर्वकरण (१३) होता हुआ नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ। सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण परिभ्रमण कर कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वी होकर संयमको प्राप्त कर अपूर्वकरणसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। इसके ऊपर का कथन पंचेन्द्रियोंके समान है। इस प्रकार आठ वर्ष और उनतीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाण पुरुषवेदी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर होता है। अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी इसी प्रकारसे अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि आठ वर्ष और सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पुरुषवेदी अपूर्वकरणसंयत और अनिवृत्तिकरणसंयत, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥२०४॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वासं सादिरेयं[1] ॥ २०५ ॥

तं जहा– पुरिसवेदेण अपुव्वगुणं पडिवण्णा सव्वे जीवा उवरिमगुणं गदा। अंतरिदमपुव्वगुणट्ठाणं। पुणो छमासेसु अदिक्कंतेसु सव्वे इत्थिवेदेण चेव खवगसेढिमारूढा। पुणो चत्तारि वा पंच वा मासे अंतरिदूण खवगसेढिं चढमाणा णवुंसयवेदोदएण चढिदा। पुणो वि एक्क-दो मासे अंतरिदूण इत्थिवेदेण चढिदा। एवं संखेज्जवारमित्थि-णवुंसयवेदोदएण चेव खवगसेढिं चढाविय पच्छा पुरिसवेदोदएण खवगसेढिं चढिदे वासं सादिरेयमंतरं होदि। कुदो? णिरंतरं छम्मासंतरस्स असंभवादो। एवमणियट्टिस्स वि वत्तव्वं। केसु वि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदस्संतरं छम्मासा।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ २०६ ॥

कुदो? खवगाणं पडिणियत्तीए असंभवा।

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ २०७ ॥

उक्त दोनों क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है ॥ २०५ ॥

जैसे– पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरणक्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके गुणस्थानोंको चले गए और अपूर्वकरणगुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया। पुनः छह मास व्यतीत हो जाने पर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा ही क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए। पुनः चार या पांच मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़े। पुनः एक-दो मास अन्तरकर कुछ जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणीपर चढ़े। इस प्रकार संख्यात वार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर चढ़ा करके पीछे पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढ़नेपर साधिक वर्षप्रमाण अन्तर हो जाता है, क्योंकि, निरन्तर छह मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होना असम्भव है। इसी प्रकार पुरुषवेदी अनिवृत्तिकरणक्षपकका भी अन्तर कहना चाहिए। कितनी ही सूत्रपोथियोंमें पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर छह मास पाया जाता है।

दोनों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २०६ ॥

क्योंकि, क्षपकोंका पुनः लौटना असम्भव है।

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २०७ ॥

---

१ उत्कर्षेण संवत्सरः सातिरेकः। स. सि. १, ८. २ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.
३ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २०८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[2] ॥ २०९ ॥

तं जधा– एक्को मिच्छादिट्ठी अट्ठावीससंतकम्मिओ सत्तमपुढवीए उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो । अवसाणे मिच्छत्तं गंतूण (४) आउअं बंधिय (५) विस्समिय (६) मदो तिरिक्खो जादो । एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामिदो त्ति मूलोघं[3] ॥ २१० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २०९ ॥

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर (४) आयुको बांध (५) विश्राम ले (६) मरा और तिर्यंच हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवोंका अन्तर मूलोघके समान है ॥ २१० ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्तानां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

कुदो ? सासणसम्मादिट्ठिस्स णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। सम्मामिच्छादिट्ठिस्स णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। असंजदसम्मादिट्ठिस्स णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। संजदासंजदस्स णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। पमत्तस्स णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। अप्पमत्तस्स णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। अपुव्वकरणस्स णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवमणियट्टिस्स वि त्ति। एदेसिमेदेहि ओघादो भेदाभावा।

क्योंकि, नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। संयतासंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। प्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अपूर्वकरणका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर है। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणका भी अन्तर जानना चाहिए। इन उक्त जीवोंका उक्त जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरोंकी अपेक्षा ओघसे कोई भेद नहीं है।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २११ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१२ ॥

कुदो ? अप्पसत्थवेदत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २१३ ॥

सुगममेदं ।

अवगदवेदएसु अणियट्टिउवसम-सुहुमउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१५ ॥

कुदो ? उवसामगत्तादो ।

नपुंसकवेदी अपूर्वकरणसंयत और अनिवृत्तिकरणसंयत, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥२११॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त दोनों नपुंसकवेदी क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१२ ॥

क्योंकि, यह अप्रशस्त वेद है (और अप्रशस्त वेदसे क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीव बहुत नहीं होते)।

उक्त दोनों नपुंसकवेदी क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २१३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरण उपशामक और सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त दोनों अपगतवेदी उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१५ ॥

क्योंकि, ये दोनों उपशामक गुणस्थान हैं (और ओघमें उपशामकोंका इतना ही उत्कृष्ट अन्तर बतलाया गया है)।

---

१ द्वयोः क्षपकयोः स्त्रीवेदवत् । स. सि. १, ८.

२ अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादरोपशमसूक्ष्मसाम्परायोपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २१६ ॥

कुदो ? उवरि चढिय हेट्ठा ओदिण्णस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१७ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ २१८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१९ ॥

कुदो ? एगवारमुवसमसेढिं चढिय ओदरिदूण हेट्ठा पडिय अंतरिदे उक्कस्सेण उवसमसेढीए वासपुधत्तंतरुवलंभा ।

उक्त दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१६ ॥

क्योंकि, ऊपर चढ़कर नीचे उतरनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २१८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१९ ॥

क्योंकि, एकवार उपशमश्रेणीपर चढ़कर तथा उतर नीचे गिरकर उत्कर्षसे उपशमश्रेणीका वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ २२० ॥

उवरि उवसंतकसायस्स चडणाभावा । हेट्ठा पडिदे वि अवगदवेदत्तणेण चेय उवसंतगुणट्ठाणपडिवज्जणे संभवाभावा ।

अणियट्टिखवा सुहुमखवा खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं[2] ॥ २२१ ॥

कुदो ? अवगदवेदत्तं पडि उहयत्थ अत्थविसेसाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २२२ ॥

सुगममेदं ।

एवं वेदमग्गणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोहकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा त्ति मणजोगिभंगो[3] ॥ २२३ ॥

उपशान्तकषायका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२० ॥

क्योंकि, उपशान्तकषायवीतरागके ऊपर चढ़नेका अभाव है । तथा नीचे गिरने पर भी अपगतवेदरूपसे ही उपशान्तकषाय गुणस्थानको प्राप्त होना सम्भव नहीं है ।

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरणक्षपक, सूक्ष्मसाम्परायक्षपक, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ और अयोगिकेवली जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २२१ ॥

क्योंकि, अपगतवेदत्वके प्रति ओघप्ररूपणा और वेदमार्गणाकी प्ररूपणा, इन दोनोंमें कोई अर्थकी विशेषता नहीं है ।

सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान है ॥ २२३ ॥

१ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.   २ शेषाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ कषायानुवादेन क्रोधमानमायालोभकषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्तानां मनोयोगिवत् । द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण संवत्सरः सातिरेकः । केवललोभस्य सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । क्षपकस्य तस्य सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणं मणजोगिभंगो होदु, णाणेगजीवं पडि अंतराभावेण साधम्मादो। सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो होदु णाम, णाणाजीवजहण्णुक्कस्स-एगसमय-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागंतरेहि, एगजीवं पडि अंतराभावेण च साधम्मादो। तिण्हमुवसामगाणं पि मणजोगिभंगो होदु णाम, णाणाजीवजहण्णुक्कस्सेण एगसमयवासपुधत्तंतरेहि, एगजीवस्संतराभावेण च साधम्मादो। किंतु तिण्हं खवाणं मणजोगिभंगो ण घडदे। कुदो? मणजोगस्सेव कसायाणं छम्मासांतराभावा। तं हि कधं णव्वदे? अप्पिदकसायवदिरित्तेहि तिहि कसाएहि एग-दु-ति-संजोगकमेण खवगसेढिं चढमाणाणं बहुवंतरुवलंभा? ण एस दोसो, ओघेण सहप्पिदमणजोगिभंगण्णहाणुववत्तीदो। चदुण्हं कसायाणमुक्कस्संतरस्स छम्मासमेत्तस्सेव सिद्धीदो। ण पाहुडसुत्तेण वियहिचारो, तस्स भिण्णोवदेसत्तादो।

शंका—मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर भले ही मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी अन्तर मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागकी अपेक्षा, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है। तीनों उपशामकोंका भी अन्तर मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक समय और वर्षपृथक्त्वकालसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है। किन्तु तीनों क्षपकोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान घटित नहीं होता है, क्योंकि, मनोयोगियोंके समान कषायोंका अन्तर छह मास नहीं पाया जाता है?

प्रतिशंका—यह कैसे जाना जाता है?

प्रतिसमाधान—विवक्षित कषायसे व्यतिरिक्त शेष तीन कषायोंके द्वारा एक, दो और तीन संयोगके क्रमसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंका बहुत अन्तर पाया जाता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ओघके साथ विवक्षित मनोयोगियोंके समान कथन अन्यथा बन नहीं सकता है, तथा चारों कषायोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मासमात्र ही सिद्ध होता है। ऐसा माननेपर पाहुडसूत्रके साथ व्यभिचार भी नहीं आता है, क्योंकि, उसका उपदेश भिन्न है।

अकसाईसु उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २२५ ॥

उवसमसेडिविसयत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २२६ ॥

हेट्ठा ओदरिय अकसायत्ताविणासेण पुणो उवसंतपज्जाएण परिणमणाभावा ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ॥ २२७ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ २२८ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

अकषायियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २२४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, यह गुणस्थान उपशमश्रेणीका विषयभूत है (और उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर इतना ही बतलाया गया है) ।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२६ ॥

क्योंकि, नीचे उतरकर अकषायताका विनाश हुए विना पुनः उपशान्तपर्यायके परिणमनका अभाव है ।

अकषायी जीवोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ और अयोगिकेवली जिनोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २२७ ॥

सयोगिकेवली जिनोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २२८ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ अकषायिषु उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि, १, ८.

३ शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ २२९ ॥

अच्छिण्णपवाहत्तादो गुणसंकंतीए अभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[2] ॥ २३० ॥

कुदो ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमय-पलिदोवमासंखेज्जदिभागेहि साधम्मादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ २३१ ॥

कुदो ? णाणंतरगमणे मग्गणविणासादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[4] ॥ २३२ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२९ ॥

क्योंकि, इन तीनों अज्ञानवाले मिथ्यादृष्टियोंका अविच्छिन्न प्रवाह होनेसे गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

तीनों अज्ञानवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २३० ॥

क्योंकि, जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागकी अपेक्षा समानता है ।

तीनों अज्ञानवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, प्ररूपणा किए जानेवाले ज्ञानोंसे भिन्न ज्ञानोंको प्राप्त होने पर विवक्षित मार्गणाका विनाश हो जाता है ।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानवालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३२ ॥

---

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभंगज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एक जीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.   २ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

४ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिषु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

कुदो ? सव्वकालमविच्छिण्णपवाहत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २३३ ॥

तं जहा– एक्को असंजदसम्मादिट्ठी संजमासंजमं पडिवण्णो । तत्थ सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं[2] ॥ २३४ ॥

तं जहा– जो कोई जीवो अट्ठावीससंतकम्मिओ पुव्वकोडाउट्ठिदिसण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) अंतोमुहुत्तेण विसुद्धो संजमासंजमं गंतूणंतरिदो । पुव्वकोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूण मदो देवो जादो । लद्धं चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं ।

ओधिणाणिअसंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) । तदो अंतोमुहुत्तेण ओधिणाणी जादो ।

क्योंकि, तीनों ज्ञानवाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका सर्वकाल अविच्छिन्न प्रवाह रहता है ।

तीनों ज्ञानवाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

जैसे– एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्व लघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके फिर भी असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥२३४॥

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव पूर्वकोटीकी आयुस्थितिवाले संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) और अन्तर्मुहूर्तसे विशुद्ध हो संयमासंयमको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । पूर्वकोटीकालप्रमाण संयमासंयमको परिपालन कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीप्रमाण मति-श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर लब्ध हुआ ।

अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे अवधिज्ञानी होगया । अन्तर्मुहूर्त अवधिज्ञानके साथ रह

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८.

अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) संजमासंजमं पडिवण्णो। पुव्वकोडिं संजमासंजममणुपालिदूण मदो देवो जादो। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी लद्धमंतरं।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३५ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३६ ॥

एदं पि सुगमं, ओघादो एदस्स भेदाभावा।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ २३७ ॥

तं जहा- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ मणुसेसु उववण्णो। अट्ठवस्सिओ संजमासंजमं वेदगसम्मत्तं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अंतोमुहुत्तेण संजमं गंतूणंतरिय संजमेण पुव्वकोडिं गमिय अणुत्तरदेवेसु तेत्तीसाउट्ठिदिएसु उववण्णो (३३)। तदो चुदो पुव्वकोडाउगेसु मणुसेसु उववण्णो। खइयं पट्ठविय संजममणुपालिय पुणो समऊणतेत्तीस-

---

कर (५) संयमासंयमको प्राप्त हुआ। पूर्वकोटीप्रमाण संयमासंयमको परिपालनकर मरा और देव होगया। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीकालप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ।

मतिज्ञानादि तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघप्ररूपणासे इसका कोई भेद नहीं है।

तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागरोपम है ॥ २३७ ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। आठ वर्षका होकर संयमासंयम और वेदकसम्यक्त्वको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे संयमको प्राप्त करके अन्तरको प्राप्त हो, संयमके साथ पूर्वकोटीप्रमाण काल बिता कर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ (३३)। वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। तब क्षायिकसम्यक्त्वको धारणकर और संयमको परिपालनकर पुनः एक समय कम तेतीस

---

१ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

सागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउगेसु मणुसेसु उववण्णो। दीहकालमच्छिदूण संजमासंजमं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं। तदो संजमं पडिवण्णो (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) खवगसेढीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (५)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठवस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणियाहि तीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं। एवमोहिणाणिसंजदासंजदस्स वि। णवरि आभिणिबोहियणाणस्स आदीदो अंतोमुहुत्तेण आदिं कादूण अंतराविय वारसअंतोमुहुत्तेहि समहियअट्ठवस्सूण-तीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि त्ति वत्तव्वं।

एदं वक्खाणं ण भद्दयं, अप्पंतरपरूवणादो। तदो दीहंतरट्ठमण्णा परूवणा कीरदे। एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तमच्छिय (४) असंजदसम्मादिट्ठी जादो। पुव्वकोडिं गमिय

....

सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां दीर्घकाल तक रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् संयमको प्राप्त हुआ (३) और प्रमत्त-अप्रमत्त-गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (५)। इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे अधिक छयासठ सागरोपम तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इसी प्रकारसे अवधिज्ञानी संयतासंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि आभिनिबोधिकज्ञानीके आदिके अन्तर्मुहूर्तसे प्रारम्भ करके अन्तरको प्राप्त कराकर बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे साधिक छयासठ सागरोपमकाल अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए।

शंका—उपर्युक्त व्याख्यान ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार अल्प अन्तरकी प्ररूपणा होती है। अतः दीर्घ अन्तरके लिए अन्य प्ररूपणा की जाती है— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव, संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ। संयमासंयमके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर (४) असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। पुनः पूर्वकोटीकाल विताकर तेरह सागरो-

लंतय-काविट्ठदेवेसु तेरससागरोवमाउट्ठिदिएसु उववण्णो (१३)। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। तत्थ संजममणुपालिय बावीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। (२२)। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। तत्थ संजममणुपालिय खइयं पट्ठविय एक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो (३१)। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणसेसु उववण्णो अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमासंजमं गदो। लद्धमंतरं (५)। विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (६)। पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेढीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (८)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं चोद्दसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणचदुपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं। एवमोधिणाणिसंजदासंजदस्स वि अंतरं वत्तव्वं। णवरि आभिणिबोहियणाणस्स आदिदो अंतोमुहुत्तेण आदिं कादूण अंतरावेदव्वो। पुणो पण्णारसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि चदुहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उप्पादेदव्वाणि ? णेदं घडदे, सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु संजमासंजमस्सेव ओहिणाणुवसमसम्मत्ताणं संभवाभावादो। तं कधं णव्वदे ? 'पंचिंदिएसु उवसामेंतो

....

पमकी आयुवाले लांतव-कापिष्ट देवोंमें उत्पन्न हुआ। पश्चात् वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर संयमको परिपालन कर बाईस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ (२२)। वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर संयमको परिपालन कर और क्षायिकसम्यक्त्वको धारणकर इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ (३१)। तत्पश्चात् वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जानेपर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (५)। पश्चात् विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (८)। इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक छयासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे अवधिज्ञानी संयतासंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि आभिनिबोधिकज्ञानके आदिके अन्तर्मुहूर्तसे आदि करके अन्तरको प्राप्त कराना चाहिए। पुनः पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक छयासठ सागरोपम उत्पन्न करना चाहिए ?

समाधान—उपर्युक्त शंकामें बतलाया गया यह अन्तरकाल घटित नहीं होता है, क्योंकि, संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें संयमासंयमके समान अवधिज्ञान और उपशमसम्यक्त्वकी संभवताका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें अवधिज्ञान और उपशमसम्यक्त्वका अभाव है ?

गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु' त्ति चूलियासुत्तादो। ओहिणाणाभावो कुदो णव्वदे? सम्मुच्छिमेसु ओहिणाणमुप्पाइय अंतरपरूवयआइरियाणमणुवलंभा। भवदु णाम सण्णिसम्मुच्छिमेसु ओहिणाणाभावो, कहमोघम्मि उत्ताणमाभिणिबोहिय-सुदणाणाणं तेसु संभवंताणमेवेदमंतरं ण उच्चदे? ण, तत्थुप्पण्णाणमेवंविहंतरासंभवादो। तं कुदो णव्वदे? तहा अवक्खाणादो। अहवा जाणिय वत्तव्वं। गब्भोवक्कंतिएसु गमिद-अट्ठेतालीस (-पुव्वकोडि-) वस्सेसु ओहिणाणमुप्पादिय किण्ण अंतराविदो? ण, तत्थ वि ओहिणाणसंभवं परूवयंतवक्खाणाइरियाणमभावादो।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ २३८ ॥

समाधान—' पंचेन्द्रियोंमें दर्शनमोहका उपशमन करता हुआ गर्भोत्पन्न जीवोंमें ही उपशमन करता है, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं,' इस प्रकारके चूलिकासूत्रसे जाना जाता है।

शंका—संज्ञी सम्मूर्च्छिम जीवोंमें अवधिज्ञानका अभाव कैसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि, अवधिज्ञानको उत्पन्न कराके अन्तरके प्ररूपण करनेवाले आचार्योंका अभाव है। अर्थात् किसी भी आचार्यने इस प्रकार अन्तरकी प्ररूपणा नहीं की।

शंका—संज्ञी सम्मूर्च्छिम जीवोंमें अवधिज्ञानका अभाव भले ही रहा आवे, किन्तु ओघप्ररूपणामें कहे गये, और संज्ञी सम्मूर्च्छिम जीवोंमें सम्भव आभिनिबोधिक-ज्ञान और श्रुतज्ञानका ही यह अन्तर है, ऐसा क्यों नहीं कहते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके इस प्रकार अन्तर सम्भव नहीं है।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि, इस प्रकारका व्याख्यान नहीं पाया जाता है। अथवा, जान करके इसका व्याख्यान करना चाहिए।

शंका—गर्भोत्पन्न जीवोंमें व्यतीत की गई अड़तालीस पूर्वकोटी वर्षोंमें अवधि-ज्ञान उत्पन्न करके अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें भी अवधिज्ञानकी सम्भवताको प्ररूपण करने-वाले व्याख्यानाचार्योंका अभाव है।

तीनों ज्ञानवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३८ ॥

१ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २३९ ॥

तं जहा– पमत्तापमत्तसंजदा अप्पिदणाणेण सह अण्णगुणं गंतूण पुणो पल्लट्टिय सव्वजहण्णेण कालेण तं चेव गुणमागदा । लद्धमंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[2] ॥ २४० ॥

तं जहा– एक्को पमत्तो अप्पमत्तो (१) अपुव्वो (२) अणियट्टी (३) सुहुमो (४) उवसंतो (५) होदूण पुणो वि सुहुमो (६) अणियट्टी (७) अपुव्वो (८) अप्पमत्तो जादो (९) । अद्धाखएण कालं गदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो । तत्तो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए पमत्तो जादो (१) । लद्धमंतरं । तदो अप्पमत्तो (२) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । अंतरस्स अब्भंतरिमेसु नवसु अंतोमुहुत्तेसु बाहिरिल्लअट्ठअंतोमुहुत्तेसु सोहिदेसु एगो अंतोमुहुत्तो अवचिट्ठदे । तेत्तीसं सागरोवमाणि एगेणंतोमुहुत्तेण अब्भहियपुव्वकोडीए

यह सूत्र सुगम है ।

तीनों ज्ञानवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३९ ॥

जैसे– प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव विवक्षित ज्ञानके साथ अन्य गुणस्थानको जाकर और पुनः पलटकर सर्वजघन्य कालसे उसी ही गुणस्थानको आये । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ २४० ॥

जैसे– कोई एक प्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिवृत्तिकरण (३) सूक्ष्मसाम्पराय (४) और उपशान्तकषाय हो करके (५) फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (६) अनिवृत्तिकरण (७) अपूर्वकरण (८) और अप्रमत्तसंयत हुआ (९) । तथा गुणस्थानका कालक्षय हो जानेसे मरणको प्राप्त हो एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । पश्चात् वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और जीवनके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रहने पर प्रमत्तसंयत हुआ (१) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पश्चात् अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । अन्तरके भीतरी नौ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे बाहरी आठ अन्तर्मुहूर्तोंके घटा देने पर एक अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहता है । ऐसे एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पूर्वकोटीसे साधिक

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

सादिरेयाणि उक्कस्संतरं। एवं विसेसमजोएदूण उत्तं। विसेसे जोइज्जमाणे अंतरब्भंतरादो अप्पमत्तद्धाओ तासिं अंतर-बाहिरिया एक्का खवगसेढीपाओग्गअप्पमत्तद्धा तत्थेगद्धादो दुगुणा सरिसा त्ति अवणेदव्वा। पुणो अंतरब्भंतराओ छ उवसामगद्धाओ अत्थि, तासिं बाहिरिल्लएसु अवसिट्ठसत्तसु अंतोमुहुत्तेसु तिण्णि खवगद्धाओ अवणेदव्वा। एक्किस्से उवसंतद्धाए एगखवगद्धद्धं विसोहिदे अवसिट्ठेहि अद्धुट्ठंतोमुहुत्तेहि ऊणियाए पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अंतरं होदि। ओधिणाणिपमत्तसंजदमप्पमत्तादिगुणं णेदूण अंतराविय पुव्वं व उक्कस्संतरं वत्तव्वं, णत्थि एत्थ विसेसो।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अप्पमत्तो अपुव्वो (१) अणियट्टी (२) सुहुमो (३) उवसंतो (४) होदूण पुणो वि सुहुमो (५) अणियट्टी (६) अपुव्वो होदूण (७) कालं गदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। तत्तो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (१)। तदो पमत्तो (२) अप्पमत्तो (३)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। अंतरस्स अब्भंतरिमाओ छ उवसामगद्धाओ अत्थि, तासिं अंतरबाहिरिल्लाओ तिण्णि खवगद्धाओ अवणेदव्वा। अंतर-

....

तेतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। इस प्रकारसे यह अन्तर विशेपको नहीं जोड़ करके कहा है। विशेपके जोड़े जाने पर अन्तरके आभ्यन्तरसे अप्रमत्तसंयतका काल और उनके अन्तरका बाहिरी एक क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयतका काल होता है। उनमेंसे एक गुणस्थानके कालसे दुगुणा सदृशकाल निकाल देना चाहिए। पुनः अन्तरके आभ्यन्तर छह उपशामककाल होते हैं। उनके बाहिरी अवशिष्ट सात अन्तर्मुहूर्तोंसे तीन क्षपक गुणस्थानोंवाले क्षपककाल निकाल देना चाहिए। एक उपशान्तकालमेंसे एक क्षपककालका आधा भाग घटा देनेपर अवशिष्ट साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। अवधिज्ञानी प्रमत्तसंयतको अप्रमत्त आदि गुणस्थानमें ले जाकर और अन्तरको प्राप्त कराकर पूर्वके समान ही उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए, इसमें और कोई विशेषता नहीं है।

तीनों ज्ञानवाले अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण (१) अनिवृत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (३) उपशान्तकषाय (४) हो करके फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिवृत्तिकरण (६) और अपूर्वकरण हो कर (७) मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेप रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (१)। पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) अप्रमत्तसंयत हुआ (३)। इनमें क्षपकश्रेणीसम्बन्धी ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त मिलाये। अन्तरके आभ्यन्तर उपशामकसम्बन्धी छह काल होते हैं। उनके अन्तरसे बाहिरी तीन क्षपककाल कम कर देना चाहिए। अन्तरके आभ्यन्तरवाले उपशान्त

ब्भंतरिमाए उवसंतद्धाए अंतर-बाहिरखवगद्धाए अद्धमवणेदव्वं। अवसिट्ठेहि अद्धछट्ठंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि। सरिसपक्खे अंतरस्सब्भंतरसत्तअंतोमुहुत्तेसु अंतर-बाहिरणवअंतोमुहुत्तेसु सोहिदेसु अवसेसा वे अंतोमुहुत्ता। एदेहि ऊणाए पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि। एवमोहिणाणिणो वि वत्तव्वं, विसेसाभावा।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २४१ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २४२ ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २४३ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि[3] ॥ २४४ ॥

कालमेंसे अन्तरसे बाहिरी क्षपककालका आधा काल निकालना चाहिए। अवशिष्ट बचे हुए साढ़े पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है। सदृश पक्षमें अन्तरके भीतरी सात अन्तर्मुहूर्तोंको अन्तरके बाहरी नौ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे घटा देने पर अवशेष दो अन्तर्मुहूर्त रहते हैं। इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे अवधिज्ञानीका भी अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है।

तीनों ज्ञानवाले चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥२४२॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥२४३॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागरोपम है ॥ २४४ ॥

---

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ पुव्वकोडाउअमणुसेसु उववण्णो। अट्ठवस्सिओ वेदगसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१)। तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (२) उवसमसेढीपाओग्गविसोहीए विसुद्धो (३) अपुव्वो (४) अणियट्टी (५) सुहुमो (६) उवसंतो (७) पुणो वि सुहुमो (८) अणियट्टी (९) अपुव्वो (१०) होदूण हेट्ठा पडिय अंतरिदो। देसूणपुव्वकोडिं संजममणुपालेदूण मदो तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। खइयं पट्ठविय संजमं कादूण कालं गदो तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउओ मणुसो जादो संजमं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अपुव्वो जादो। लद्धमंतरं (११)। अणियट्टी (१२) सुहुमो (१३) उवसंतो (१४) भूओ सुहुमो (१५) अणियट्टी (१६) अपुव्वो (१७) अप्पमत्तो (१८) पमत्तो (१९) अप्पमत्तो (२०)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। अट्ठहि वस्सेहि छव्वीसंतोमुहुत्तेहि य ऊणा तीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि। अधवा चत्तारि पुव्वकोडीओ तेरस-बावीस-एक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिदेवेसु उप्पाइय

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। आठ वर्षका होकर वेदकसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। तत्पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) उपशमश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ (३) अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशान्तकषाय (७) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०) होकर तथा नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ। कुछ कम पूर्वकोटीकालप्रमाण संयमको परिपालन कर मरा और तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। पश्चात् च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और क्षायिकसम्यक्त्वको धारण कर और संयम धारण करके मरणको प्राप्त हो तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटी आयुवाला मनुष्य हुआ और यथासमय संयमको प्राप्त हुआ। पुनः संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (११)। पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१२) सूक्ष्मसाम्पराय (१३) उपशान्तकषाय (१४) होकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१५) अनिवृत्तिकरण (१६) अपूर्वकरण (१७) अप्रमत्तसंयत (१८) प्रमत्तसंयत हुआ (१९)। पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (२०)। इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी और भी छह अन्तर्मुहूर्त मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और छब्बीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे साधिक छयासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है। अथवा, तेरह, बाईस और इकतीस

वत्तव्वाओ। एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं। णवरि चदुवीस बावीस वीस अंतोमुहुत्ता ऊणा कादव्वा। एवमोहिणाणीणं पि वत्तव्वं, विसेसाभावा।

चदुण्हं खवगाणमोघं। णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं[1] ॥ २४५ ॥

कुदो? ओधिणाणीणं पाएण[2] संभवाभावा।

मणपज्जवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ २४६ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[4] ॥ २४७ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[4] ॥ २४८ ॥

सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराकर मनुष्यभवसम्बन्धी चार पूर्वकोटियां कहना चाहिए। इसी प्रकारसे शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरणके चौवीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्परायके बाईस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकषायके वीस अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए। इसी प्रकारसे उपशामक अवधिज्ञानियोंका भी अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें भी कोई विशेषता नहीं है।

तीनों ज्ञानवाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है। विशेष बात यह है कि अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४५ ॥

क्योंकि, अवधिज्ञानियोंके प्रायः होनेका अभाव है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २४६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४८ ॥

---

१ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत्। किन्तु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः, उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८. २ प्रतिषु 'उप्पाएण' इति पाठः।

३ मनःपर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

४ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

तं जहा– एक्को पमत्तो मणपज्जवणाणी अप्पमत्तो होदूण उवरि चडिय हेट्ठा ओदरिदूण पमत्तो जादो। लद्धमंतरं। अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अप्पमत्तो मणपज्जवणाणी पमत्तो होदूणंतरिय सव्वचिरेण कालेण अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं। उवसमसेढिं चढाविय किण्णंतराविदो ? ण, उवसमसेढिसव्वद्धाहिंतो पमत्तद्धा एक्का चेव संखेज्जगुणा त्ति गुरूवदेसादो।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २४९ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५० ॥

एदं पि सुगमं।

....

जैसे– एक मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो ऊपर चढ़कर और नीचे उतर कर प्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं– एक मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अति दीर्घकालसे अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ।

शंका—मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतको उपशमश्रेणी पर चढ़ाकर पुनः अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसम्बन्धी सभी अर्थात् चार चढ़नेके और तीन उतरनेके, इन सब गुणस्थानोंसम्बन्धी कालोंसे अकेले प्रमत्तसंयतका काल ही संख्यातगुणा होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

....

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २५१ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं[2] ॥ २५२ ॥

तं जहा– एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेहि संजमं पडिवण्णो (१)। पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सादासादबंधपरावत्तसहस्सं कादूण (२) विसुद्धो मणपज्जवणाणी जादो (३)। उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण सेडीमुवगदो (४)। अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) उवसंतो (८) पुणो वि सुहुमो (९) अणियट्टी (१०) अपुव्वो (११) पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे (१२) पुव्वकोडिमच्छिदूण अणुदिसादिसु आउअं बंधिदूण अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए विसुद्धो अपुव्वुवसामगो जादो। णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो। अट्ठवस्सेहि बारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं। एवं तिण्हमुवसामगाणं। णवरि जहाक्कमेण दस णव अट्ठ अंतोमुहुत्ता समओ य पुव्वकोडीदो ऊणा त्ति वत्तव्वं।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥२५२॥

जैसे– कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षके द्वारा संयमको प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असाताप्रकृतियोंके सहस्रों बंध-परिवर्तनोंको करके (२) विशुद्ध हो मनःपर्ययज्ञानी हुआ (३)। पश्चात् उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर श्रेणीको प्राप्त हुआ (४)। तब अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशान्तकषाय (८) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण (११) होकर प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें (१२) पूर्वकोटीकाल तक रहकर अनुदिश आदि विमानवासी देवोंमें आयुको बांधकर जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विशुद्ध हो अपूर्वकरण उपशामक हुआ। पुनः निद्रा तथा प्रचला, इन दो प्रकृतियोंके बंध-विच्छेद हो जाने पर मरणको प्राप्त हो देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार शेष तीन मनःपर्ययज्ञानी उपशामकोंका भी अन्तर होता है। विशेषता यह है कि उनके यथाक्रमसे दश, नौ और आठ अन्तर्मुहूर्त तथा एक समय पूर्वकोटीसे कम कहना चाहिए।

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना। स. सि. १, ८.

चदुण्हं खवगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २५३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५४ ॥

कुदो ? मणपज्जवणाणेण खवगसेढिं चढमाणाणं पउरं संभवाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २५५ ॥

एदं पि सुगमं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं[2] ॥ २५६ ॥

णाणेगजीवअंतराभावेण साधम्मादो ।

अजोगिकेवली ओघं[2] ॥ २५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २५५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानी जीवोंमें सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता है ।

अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

२ द्वयोः केवलज्ञानिनोः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति मणपज्जवणाणिभंगो ॥ २५८ ॥

पमत्तापमत्तसंजदाणं णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । चदुण्हमुवसामगाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण देसूणपुव्वकोडी अंतरमिदि तदो विसेसाभावा ।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ २५९ ॥

सुगमं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २६० ॥

एदं पि सुगमं ।

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥२६१॥

गयत्थं ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतको आदि लेकर उपशान्तकषाय-वीतरागछद्मस्थ तक संयतोंका अन्तर मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ २५८ ॥

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । चारों उपशामकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटीप्रमाण अन्तर है, इसलिए उससे यहांपर कोई विशेषता नहीं है ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥२५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त तथा अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६१ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

---

१ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २६२ ॥

तं जहा— पमत्तो अप्पमत्तगुणं गंतूण सव्वजहण्णेण कालेण पुणो पमत्तो जादो। लद्धमंतरं। एवमप्पमत्तस्स वि वत्तव्वं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २६३ ॥

तं जहा— एक्को पमत्तो अप्पमत्तो होदूण चिरकालमच्छिय पमत्तो जादो। लद्धमंतरं। अप्पमत्तस्स उच्चदे— एक्को अप्पमत्तो पमत्तो होदूण सव्वचिरमंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं।

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ २६४ ॥

अवगयत्थं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २६५ ॥

सुगममेदं।

उक्त संयतोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६२ ॥

जैसे— एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तगुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः प्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। इसी प्रकार अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर कहना चाहिए।

उक्त संयतोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

जैसे— एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर और दीर्घ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके प्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं— एक अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत हो करके सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २६५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

१ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २६६ ॥

तं जहा– एक्को ओदरमाणो अपुव्वो अप्पमत्तो पमत्तो पुणो अप्पमत्तो होदूण अपुव्वो जादो। लद्धमंतरं। एवमणियट्टिस्स वि। णवरि पंच अंतोमुहुत्ता जहण्णंतरं होदि।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं[2] ॥ २६७ ॥

तं जहा– एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। अट्ठवस्साणमुवरि संजमं पडिवण्णो (१)। पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सादासादबंधपरावत्तिसहस्सं कादूण (२) उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो (३) अपुव्वो (४) अणियट्टी (५) सुहुमो (६) उवसंतो (७) पुणो वि सुहुमो (८) अणियट्टी (९) अपुव्वो (१०) हेट्ठा पडिय अंतरिदो। पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे पुव्वकोडिमच्छिदूण अणुद्दिसादिसु आउअं बंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए अपुव्वुवसामगो जादो। णिद्दा-पयलाणं बंधे वोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो। अट्ठहि वस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं। एवमणियट्टिस्स वि।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६६ ॥

जैसे– उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला एक अपूर्वकरणसंयत, अप्रमत्तसंयत व प्रमत्तसंयत होकर पुनः अप्रमत्तसंयत हो अपूर्वकरणसंयत होगया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणसंयतका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनके पांच अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २६७ ॥

जैसे– कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ वर्षके पश्चात् संयमको प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असातावेदनीयके सहस्रों बंध-परावर्तनोंको करके (२) उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (३)। पश्चात् अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशान्तकषाय (७) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०) हो नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ। प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें पूर्वकोटी काल तक रहकर अनुदिश आदि विमानोंमें आयुको बांधकर जीवनके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रहनेपर अपूर्वकरण उपशामक हुआ और निद्रा तथा प्रचला प्रकृतियोंके बंधसे व्युच्छिन्न होनेपर मरणको प्राप्त हो देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीप्रमाण सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी उत्कृष्ट अन्तर है। विशेषता यह है कि

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८. २ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना। स. सि. १, ८.

णवरि समयाहियणवअंतोमुहुत्ता ऊणा कादव्वा ।

दोण्हं खवाणमोघं[1] ॥ २६८ ॥

सुगममेदं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ २६९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ २७० ॥

तं जहा– एक्को पमत्तो परिहारसुद्धिसंजदो अप्पमत्तो होदूण सव्वलहुं पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । एवमप्पमत्तस्स वि पमत्तगुणेण अंतराविय वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ २७१ ॥

एदस्सत्थो जधा जहण्णस्स उत्तो, तधा वत्तव्वो । णवरि सव्वचिरेण कालेण पल्लट्टावेदव्वो ।

इनका अन्तर एक समय अधिक नौ अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७० ॥

जैसे– परिहारशुद्धिसंयमवाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर सर्वलघु कालसे प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयमी अप्रमत्तसंयतको भी प्रमत्तगुणस्थानके द्वारा अन्तरको प्राप्त कराकर अन्तर कहना चाहिए ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७१ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा जघन्य अन्तर बतलाते हुए कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेषता यह है कि इसे यहां पर सर्व दीर्घकालसे पलटाना चाहिए ।

---

१ द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २७२ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २७३ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ २७४ ॥

कुदो ? अधिगदसंजमाविणासेण अंतरावणे उवायाभावा[3] ।

खवाणमोघं[4] ॥ २७५ ॥

कुदो ? णाणाजीवगदजहण्णुक्कस्सेगसमय-छम्मासेहि एगजीवस्संतराभावेण य साधम्मादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो[5] ॥ २७६ ॥

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २७३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७४ ॥

क्योंकि, प्राप्त किये गये संयमके विनाश हुए विना अन्तरको प्राप्त होनेके उपायका अभाव है ।

सूक्ष्मसाम्परायसंयमी क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मासके साथ, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें चारों गुणस्थानोंके संयमी जीवोंका अन्तर अकपायी जीवोंके समान है ॥ २७६ ॥

---

१ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेपूपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि, १, ८.

३ अ प्रतौ 'अंतरावणो उव्वाया-' आ-कप्रत्योः 'अंतरावणो उव्वाया-' इति पाठः ।

४ तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत् । स. सि. १, ८.　　५ यथाख्याते अकषायवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? अकसायाणं जहाक्खादसंजमेण विणा अण्णसंजमाभावा ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ २७७ ॥

कुदो ? गुणंतरग्गहणे मग्गणाविणासा, गुणंतरग्गहणेण विणा अंतरकरणे उवायाभावा ।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ २७८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिप्पवाहवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ २७९ ॥

कुदो ? गुणंतरं गंतूणंतरिय अविणट्ठअसंजमेण जहण्णकालेण पल्लट्टिय मिच्छत्तं पडिवण्णस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

क्योंकि, अकषायी जीवोंके यथाख्यातसंयमके विना अन्य संयमका अभाव है ।

संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, अपने गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानके ग्रहण करने पर मार्गणाका विनाश होता है और अन्य गुणस्थानको ग्रहण किये विना अन्तर करनेका कोई उपाय नहीं है ।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७८ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता ।

असंयमी मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७९ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर असंयमभावके नहीं नष्ट होनेके साथ ही जघन्य कालसे पलटकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

---

१ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ असंयतेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ २८० ॥

तं जहा– एक्को अट्ठावीसमोहसंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी सत्तमाए पुढवीए उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए मिच्छत्तं गदो (४)। लद्धमंतरं। तिरिक्खाउअं बंधिय (५) विस्समिय (६) मदो तिरिक्खो जादो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्संतरं ।

सासणसम्मादिट्ठि–सम्मामिच्छादिट्ठि–असंजदसम्मादिट्ठीणमोघं[2] ॥ २८१ ॥

कुदो ? सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। असंजदसम्मादिट्ठीसु णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणमिच्चदेहि तदो भेदाभावा ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २८० ॥

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और जीवनके अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पीछे तिर्यंच आयुको बांधकर (५) विश्राम ले (६) मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

असंयमी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २८१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल है। असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है; इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है।

---

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

२ शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं णादमवि[1] मंदमेहाविजणाणुग्गहट्ठं परूवेमो– एक्को अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि वि करणाणि कादूण अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तं पडिवण्णो (१)। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। अंतरिदो अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे असंजदसम्मादिट्ठी जादो। लद्धमंतरं (२)। तदो अणंताणुबंधी विसंजोइय (३) विस्संतो (४) दंसणमोहं खविय (५) विस्संतो (६) अप्पमत्तो[2] जादो (७)। पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (८) खवगसेढीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (९)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं पण्णारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टमसंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं।

एवं संजममग्गणा समत्ता।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं[3]॥ २८२ ॥

कुदो? णाणाजीवे[4] पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवगयअंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णंतरेण

असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर यद्यपि ज्ञात है, तथापि मंदबुद्धि जनोंके अनुग्रहार्थ प्ररूपण करते हैं– एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणोंको करके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१)। उपशामसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ। पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिवर्तन करके अन्तिम भवमें असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया (२)। तत्पश्चात् अन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५) विश्राम ले (६) अप्रमत्तसंयत हुआ (७)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (८) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (९)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २८२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, तथा एक जीवगत

---

१ प्रतिषु 'णादमदि' इति पाठः। २ प्रतिषु 'पमत्तो' इति पाठः।

३ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

४ अ प्रतौ '-जीवेसु' इति पाठः।

देसूण-बे-छावट्ठिसागरोवममेत्तउक्कस्संतरेण य तदो भेदाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[1] ॥ २८३ ॥

कुदो ? णाणाजीवगयएगसमय-पलिदोवमासंखेज्जदिभागजहण्णुक्कस्संतरेहि साधम्मुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २८४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि[3] ॥ २८५ ॥

तं जहा- एक्को भमिदअचक्खुदंसणट्ठिदिओ असण्णिपंचिंदिएसु उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु

अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर होनेसे और कुछ कम दो छयासठ सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होनेकी अपेक्षा ओघसे कोई भेद नहीं है ।

चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २८३ ॥

क्योंकि, नाना जीवगत जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है; इस प्रकार इन दोनोंकी अपेक्षा ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २८५ ॥

जैसे- अचक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण किया हुआ कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५)

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने । स. सि. १, ८.

आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९) सासणं गदो। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय चक्खुदंसणिट्ठिदिं परिभमिय अवसाणे सासणं गदो। लद्धमंतरं। अचक्खु-दंसणिपाओग्गमावलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदूण मदो अचक्खुदंसणी जादो। एवं णवहि अंतोमुहुत्तेहि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण य ऊणिया चक्खुदंसणिट्ठिदी सासणुक्कस्संतरं।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो असण्णिपंचिं-दिएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो २) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९) सम्मामिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो चक्खुदंसणिट्ठिदिं परिभमिय अवसाणे सम्मामिच्छत्तं गदो (११)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं गंतूण (१२) अचक्खु-दंसणीसु उववण्णो। एवं बारसअंतोमुहुत्तेहि ऊणिया चक्खुदंसणिट्ठिदी उक्कस्संतरं।

देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सासादनगुणस्थानको गया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तमें सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः अचक्षु-दर्शनीके बंध-प्रायोग्य आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल रह कर मरा और अचक्षु-दर्शनी होगया। इस प्रकार नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे और आवलीके असंख्यातवें भागसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर है।

चक्षुदर्शनी सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं- अचक्षुदर्शनकी स्थितिको प्राप्त हुआ एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर(४) विश्राम ले (५) मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सम्य-ग्मिथ्यात्वको गया (१०) और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। चक्षु-दर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (११)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर (१२) अचक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति चक्षुदर्शनी सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर है।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ २८६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २८७ ॥

कुदो ? एदेसिं सव्वेसिं पि अण्णगुणं गंतूण जहण्णकालेण अप्पिदगुणं गदाणमंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि[3] ॥ २८८ ॥

तं जधा– एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो असण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कालं गदो देवेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९)। उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गंतूणंतरिदो। मिच्छत्तं गंतूण

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चक्षुदर्शनियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८७ ॥

क्योंकि, इन सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर पुनः जघन्य कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २८८ ॥

जैसे– अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ । पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तरोंमें आयुको बांध कर (४) विश्राम ले (५) मरणको प्राप्त हुआ और देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनको जाकर अन्तरको प्राप्त

---

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने । स. सि. १, ८.

चक्खुदंसणिट्ठिदिं भमिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०)। लद्धमंतरं। पुणो सासणं गदो अचक्खुदंसणीसु उववण्णो। दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी असंजदसम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं।

संजदासंजदस्स उच्चदे। तं जहा– एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो गब्भोवक्कंतियपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो। सण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पादिदो ? ण, सम्मुच्छिमेसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीए असंभवादो। ण च असंखेज्जलोगमणंतं[1] वा कालमचक्खुदंसणीसु परिभमियाण वेदगसम्मत्तग्गहणं संभवदि, विरोहा। ण च थोवकालमच्छिदो चक्खुदंसणिट्ठिदीए समाणणक्खमा। तिण्णि पक्ख तिण्णि दिवस अंतोमुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (२)। पढमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिवण्णो (३)। लद्धमंतरं। अप्पमत्तो

हुआ। पुनः मिथ्यात्वको जाकर चक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पुनः सासादनको गया और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

चक्षुदर्शनी संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं। जैसे– अचक्षुदर्शनकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव गर्भोपक्रान्तिक पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ।

शंका—उक्त जीवको संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति असम्भव है। तथा असंख्यात लोकप्रमाण या अनन्तकाल तक अचक्षुदर्शनियोंमें परिभ्रमण किये हुए जीवोंके वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसे जीवोंके सम्यक्त्वोत्पत्तिका विरोध है। और न अल्पकाल तक रहा हुआ जीव चक्षुदर्शनकी स्थितिके समाप्त करनेमें समर्थ है।

पुनः वह जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (२)। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रह जाने पर सासादनको प्राप्त हुआ। पुनः अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तिम भवमें कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पुनः अप्रमत्तसंयत (४)

---

१ प्रतिषु 'असंखेज्जा लोगमणंतं' इति पाठः।

(४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमडदालीसदिवसेहि वारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणा सगट्ठिदी संजदासंजदुक्कस्संतरं।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो गब्भादि-अट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो। (१)। पुणो पमत्तो जादो (२)। हेट्ठा पडिदूणंतरिदो। चक्खुदंसणिट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसो जादो। कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो (३)। लद्धमंतरं। भूओ अप्पमत्तो (४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठवस्सेहि दसअंतो-मुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी पमत्तस्सुक्कस्संतरं।

(अप्पमत्तस्स उच्चदे–) एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१)। हेट्ठा पडिदूण अंतरिदो चक्खुदंसणिट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसेसु उववण्णो। कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (२)। लद्धमंतरं। तदो पमत्तो

प्रमत्तसंयत (५) और अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार अड़तालीस दिवस और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे उपशम-सम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पश्चात् नीचेके गुणस्थानोंमें गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ। चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ। पश्चात् कृतकृत्यवेदक होकर जीवनके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ (३)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है।

चक्षुदर्शनी अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। फिर नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हो अचक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वी होकर संसारके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण अवशिष्ट रहने पर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त

(३) अप्पमत्तो (४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठवस्सेहि दसअंतोमुहुत्तेहि ऊणिया चक्खुदंसणिट्ठिदी अप्पमत्तुक्कस्संतरं होदि।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[1] ॥ २८९ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २९० ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि[3] ॥ २९१ ॥

तं जहा- एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तं गदो (२)। तदो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिं विसंजोजिदो (३)। दंसणमोहणीयमुवसामिय (४) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (५) उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (६)। अपुव्वो (७) अणियट्टी (८) सुहुमो (९) उवसंतो (१०) सुहुमो

हुआ। पुनः प्रमत्तसंयत हो (३) अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति ही चक्षुदर्शनी अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

चक्षुदर्शनी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २८९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २९१ ॥

जैसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२)। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन किया (३)। पुनः दर्शनमोहनीयको उपशमा कर (४) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (५) उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८)

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने। स. सि. १, ८.

(११) अणियट्टी (१२) अपुव्वो (१३) हेट्ठा ओदरिय अंतरिदो चक्खुदंसणिट्ठिदिं परिभमिय अंतिमे भवे मणुसेसु उववण्णो। कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो। सादासादबंधपरावत्तसहस्सं कादूण उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण अपुव्वुवसामगो जादो (१४)। लद्धमंतरं। तदो अणियट्टी (१५) सुहुमो (१६) उवसंतो (१७) पुणो वि सुहुमो (१८) अणियट्टी (१९) अपुव्वो (२०) अप्पमत्तो (२१) पमत्तो (२२) अप्पमत्तो (२३) होदूण खवगसेढीमारूढो। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठवस्सेहि एगूणत्तीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगट्ठिदी अपुव्वकरणुक्कस्संतरं। एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं। णवरि सत्तावीस पंचवीस तेवीस अंतोमुहुत्ता ऊणा कायव्वा।

चदुण्हं खवाणमोघं[1] ॥ २९२ ॥

सुगममेदं।

सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तमोह (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत होकर (१३) तथा नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहांपर कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वी होकर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ। वहांपर साता और असाता वेदनीयके बंध-परावर्तन-सहस्रोंको करके उपशामश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१४)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया। तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१५) सूक्ष्मसाम्पराय (१६) उपशान्तकषाय (१७) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (१८) अनिवृत्तिकरण (१९) अपूर्वकरण (२०) अप्रमत्तसंयत (२१) प्रमत्तसंयत (२२) और अप्रमत्तसंयत होकर (२३) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और उनतीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है।

इसी प्रकार चक्षुदर्शनी शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सत्ताईस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके पच्चीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकषायके तेवीस अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए।

चक्षुदर्शनी चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २९२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तम्। स. सि. १, ८.

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं[1] ॥ २९३ ॥

कुदो? ओघादो भेदाभावा।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो[2] ॥ २९४ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो[3] ॥ २९५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[4] ॥ २९६ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[5] ॥ २९७ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २९३ ॥

क्योंकि, ओघसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

अवधिदर्शनी जीवोंका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २९४ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका अन्तर केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोत लेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥२९७॥

१ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तमन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत्। स. सि. १, ८. ३ केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत्। स. सि. १, ८.

४ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

५ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

तं जहा– सत्तम-पंचम-पढमपुढविमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणो किण्ह-णील-काउलेस्सिया अण्णगुणं गंतूण थोवकालेण पडिणियत्तिय तं चेव गुणमागदा। लद्धं दोण्हं जहण्णंतरं।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ २९८ ॥

तं जहा– तिण्णि मिच्छादिट्ठिणो किण्ह-णील-काउलेस्सिया सत्तम-पंचम-तदिय-पुढवीसु कमेण उववण्णा। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३) सम्मत्तं पडिवण्णा अंतरिदा अवसाणे मिच्छत्तं गदा। लद्धमंतरं (४)। मदा मणुसेसु उववण्णा। णवरि सत्तमपुढवीणेरइओ तिरिक्खाउअं बंधिय (५) विस्समिय (६) तिरिक्खेसु उववज्जदि त्ति घेत्तव्वं। एवं छ-चदु-चदुअंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीस-सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठिउक्कस्संतरं होदि। एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि वत्तव्वं। णवरि अट्ठ-पंच-पंचअंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीस-सत्तारस-

जैसे– सातवीं पृथिवीके कृष्णलेश्यावाले, पांचवीं पृथिवीके नीललेश्यावाले और प्रथम पृथिवीके कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव अन्य गुणस्थानको जाकर अल्प कालसे ही लौटकर उसी गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपम है ॥ २९८ ॥

जैसे– कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमसे सातवीं, पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हो आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (४)। पश्चात् मरण कर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए। विशेषता यह है कि सातवीं पृथिवीका नारकी तिर्यंच आयुको बांध कर (५) विश्राम ले (६) तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अन्तर है। चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह सागरोपम नीललेश्याका उत्कृष्ट अन्तर है। तथा चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सात सागरोपम कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टिका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेषता यह है कि कृष्णलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम, नीललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

सत्त-सागरोवमाणि उक्कस्संतरं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[1] ॥ २९९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३०० ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि[3] ॥ ३०१ ॥

तं जहा– तिण्णि मिच्छादिट्ठी जीवा सत्तम-पंचम-तदियपुढवीसु किण्ह-णील-काउलेस्सिया उववण्णा । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा (४) सासणं गदा । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदा । अंतोमुहुत्तावसेसे

सागरोपम और कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सात सागरोपम होता है ।

उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥२९९॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे– कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः सातवीं, पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए (४) । पुनः सासादनगुणस्थानको गये । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । पुनः जीवनके अन्तर्मुहूर्त

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

जीविए उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा । सासणं गंतूण विदियसमए मदा मणुसेसु उववण्णा । णवरि सत्तमपुढवीए सासणा मिच्छत्तं गंतूण (५) तिरिक्खेसुववज्जंति त्ति वत्तव्वं । एवं पंच-चदु-चदुअंतोमुहुत्तेहि उणाणि तेत्तीस-सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियसासणुक्कस्संतरं होदि । एगसमओ अंतोमुहुत्तब्भंतरे पविट्ठो त्ति पुध ण उत्तो। एवं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वि । णवरि छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीस-सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियसम्मामिच्छादिट्ठिउक्कस्संतरं ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिअसंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ३०२ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३०३ ॥

तं जहा- चत्तारि जीवा मिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठिणो तेउ-पम्मलेस्सिया अण्णगुणं

अवशिष्ट रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनगुणस्थानमें जाकर द्वितीय समयमें मरे और मनुष्योंमें उत्पन्न हुए । विशेषता यह है कि सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यात्वको प्राप्त होकर (५) तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहना चाहिए । इस प्रकार पांच, चार और चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम क्रमशः तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपम कालप्रमाण कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । सासादनगुणस्थानमें जाकर रहनेका एक समय अन्तर्मुहूर्तके ही भीतर प्रविष्ट है, इसलिए पृथक् नहीं कहा । इसी प्रकार तीनों अशुभ-लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि यहांपर छह-छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपमकाल क्रमशः कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०३ ॥

जैसे- तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि चार जीव

---

१ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

गंतूण सव्वजहण्णकालेण पडिणियत्तिय तं चेव गुणमागदा। लद्धमंतरं।

उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ॥ ३०४ ॥

तं जहा– वे मिच्छादिट्ठिणो तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरेय-वे-अट्ठारससागरोवमाउ-ट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णा। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३) सम्मत्तं घेत्तूणंतरिदा। सगट्ठिदिं जीविय अवसाणे मिच्छत्तं गदा (४)। लद्धं सादिरेय-वे-अट्ठारससागरोवममेत्तंतरं। एवं सम्मादिट्ठिस्स वि। णवरि पंचहि अंतोमुहुत्तेहिं ऊणियाओ सगट्ठिदीओ अंतरं।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[2] ॥ ३०५ ॥

सुगममेदं।

अन्य गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे लौटकर उसी ही गुणस्थानको आगये। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपम है ॥ ३०४ ॥

जैसे– तेज और पद्म लेश्यावाले दो मिथ्यादृष्टि जीव साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) और सम्यक्त्वको ग्रहण कर अन्तरको प्राप्त हुये। पुनः अपनी स्थितिप्रमाण जीवित रहकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए (४)। इस प्रकार साधिक दो सागरोपमकाल तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टिका और साधिक अट्ठारह सागरोपमकाल पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होगया। इसी प्रकार तेज और पद्म लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेषता यह है कि पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर होता है।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३०६ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि[2] ॥ ३०७ ॥

तं जहा– बे सासणा तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरेय-बे-अट्ठारससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णा । एगसमयमच्छिय विदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदा । अवसाणे बे वि उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा । पुणो सासणं गंतूण विदियसमए मदा । एवं सादिरेय-बे-अट्ठारस-सागरोवमाणि दुसमऊणाणि सासणुक्कस्संतरं होदि । एवं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वि । णवरि छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणियाओ उत्तट्ठिदीओ अंतरं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ ३०८ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः साधिक दो सागरोपम और अट्ठारह सागरोपम है ॥ ३०७ ॥

जैसे– तेज और पद्म लेश्यावाले दो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए। वहां एक समय रहकर दूसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए। आयुके अन्तमें दोनों ही उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए। पश्चात् सासादनगुणस्थानको जाकर दूसरे समयमें मरे। इस प्रकार दो समय कम साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपम उक्त दोनों लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार उक्त दोनों लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इनके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उक्त स्थितियोंप्रमाण अन्तर होता है।

तेज और पद्म लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०८ ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

३ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवपवाहवोच्छेदाभावा। एगजीवस्स वि, लेस्सद्धादो गुणद्धाए बहुत्तुवदेसा।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ३०९ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३१० ॥

तं जहा– वे देवा मिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठिणो सुक्कलेस्सिया गुणंतरं गंतूण जहण्णेण कालेण अप्पिदगुणं पडिवण्णा। लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[3] ॥ ३११ ॥

तं जहा– वे जीवा सुक्कलेस्सिया मिच्छादिट्ठी दव्वलिंगिणो एक्कत्तीससागरोवमिएसु देवेसु उववण्णा। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३) सम्मत्तं पडिवण्णा। तत्थेगो मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो (४) अवरो सम्मत्तेणेव। अवसाणे

क्योंकि, उक्त गुणस्थानवाले नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है। तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेश्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है।

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१० ॥

जैसे– शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दो देव अन्य गुणस्थानको जाकर जघन्य कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अन्तर लब्ध होगया।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम है ॥ ३११ ॥

जैसे– शुक्ललेश्यावाले दो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी जीव इकतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त हुए। उनमेंसे एक मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको

---

१ शुक्ललेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

जहाकमेण बे वि मिच्छत्त-सम्मत्ताणि पडिवण्णा (५)। चदु-पंचअंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[1] ॥ ३१२ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३१३ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[3] ॥ ३१४ ॥

एदं पि सुगमं।

प्राप्त हुआ (४)। दूसरा जीव सम्यक्त्वके साथ ही रहा। आयुके अन्तमें यथाक्रमसे दोनों ही जीव मिथ्यात्व और सम्यक्त्वको प्राप्त हुए (५)। इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है और पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है।

शुक्लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३१२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम है ॥ ३१४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेग-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ३१५ ॥

कुदो ? णाणाजीवपवाहस्स वोच्छेदाभावा, एगजीवस्स लेस्सद्धादो गुणद्धाए बहुत्तुवदेसादो ।

अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ ३१६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३१७ ॥

तं जहा– एक्को अप्पमत्तो सुक्कलेस्साए अच्छिदो उवसमसेढिं पडिदूणंतरिय सव्वजहण्णकालेण पडिणियत्तिय अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३१८ ॥

शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, उक्त गुणस्थानवर्ती नाना जीवोंके प्रवाहका कभी व्युच्छेद नहीं होता है । तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेश्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

शुक्ललेश्यावाले अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१७ ॥

जैसे– शुक्ललेश्यामें विद्यमान कोई एक अप्रमत्तसंयत उपशमश्रेणीपर चढ़कर अन्तरको प्राप्त हो सर्वजघन्य कालसे लौटकर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१८ ॥

---

१ संयतासंयतप्रमत्तसंयतयोस्तेजोलेश्यावत् । स. सि. १, ८.

२ अप्रमत्तसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

एदस्स जहण्णभंगो। णवरि सव्वाचिरेण कालेण उवसमसेढीदो ओदिण्णस्स वत्तव्वं।

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३१९ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२० ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३२१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३२२ ॥

एदेसिं दोण्हं सुत्ताणमत्थे भण्णमाणे खिप्प-चिरकालेहि उवसमसेढिं चडिय ओदिण्णाणं[3] जहण्णुक्कस्सकाला वत्तव्वा।

इसका अन्तर भी जघन्य अन्तरप्ररूपणाके समान है। विशेषता यह है कि सर्वदीर्घकालात्मक अन्तर्मुहूर्त द्वारा उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए।

शुक्ललेश्यावाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती तीनों उपशामक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३१९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शुक्ललेश्यावाले तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

इन दोनों सूत्रोंका अर्थ कहने पर क्षिप्र (लघु) कालसे उपशमश्रेणी पर चढ़कर उतरे हुए जीवोंके जघन्य अन्तर कहना चाहिए, तथा चिर (दीर्घ) कालसे उपशमश्रेणी पर चढ़कर उतरे हुए जीवोंके उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए।

---

१ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि, १, ८.

३ प्रतिपु 'ओधिणाणं' इति पाठः।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] **॥ ३२३ ॥**

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] **॥ ३२५ ॥**

उवसंतादो उवरि उवसंतकसाएण पडिवज्जमाणगुणट्ठाणाभावा, हेट्ठा ओदिण्णस्स वि लेस्संतरसंकंतिमंतरेण पुणो उवसंतगुणग्गहणाभावा ।

चदुण्हं खवगा ओघं[4] **॥ ३२६ ॥**

शुक्ललेश्यावाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३२३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२५ ॥

क्योंकि, उपशान्तकषाय गुणस्थानसे ऊपर उपशान्तकषायी जीवके द्वारा प्रतिपद्यमान गुणस्थानका अभाव है, तथा नीचे उतरे हुए जीवके भी अन्य लेश्याके संक्रमणके विना पुनः उपशान्तकषाय गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता है ।

विशेषार्थ—उपशान्तकषायगुणस्थानके अन्तरका अभाव बतानेका कारण यह है कि ग्यारहवें गुणस्थानसे ऊपर तो वह चढ़ नहीं सकता है, क्योंकि, वहांपर क्षपकोंका ही गमन होता है । और यदि नीचे उतरकर पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़े, तो नीचेके गुणस्थानोंमें शुक्ललेश्यासे पीत पद्मादि लेश्याका परिवर्तन हो जायगा, क्योंकि, वहांपर एक लेश्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत बताया गया है ।

शुक्ललेश्यावाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३२६ ॥

---

१ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु 'लेस्संतरं' इति पाठः ।

४ चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३२७ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं लेस्सामग्गणा[1] समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[2] ॥ ३२८ ॥

कुदो ? सव्वपयारेण ओघपरूवणादो भेदाभावा ।

अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ ३२९ ॥

कुदो ? अभव्वपवाहवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३० ॥

कुदो ? गुणंतरसंकंतीए तत्थाभावा ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

शुक्ललेश्यावाले सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३२७ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

क्योंकि, सर्व प्रकार ओघप्ररूपणासे भव्यमार्गणाकी अन्तरप्ररूपणामें कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, अभव्य जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

अभव्य जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३० ॥

क्योंकि, अभव्योंमें अन्य गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ प्रतिषु ' लेस्समग्गणा ' इति पाठः ।

२ भव्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३१ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जहा– एगो असंजदसम्मादिट्ठी संजमासंजमगुणं गंतूणं सव्वजहण्णेण कालेण पुणो असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३३ ॥

तं जहा– एगो मिच्छादिट्ठी अट्ठावीससंतकम्मिओ पंचिंदियतिरिक्खसण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) । संजमासंजमगुणं गंतूणंतरिदो पुव्वकोडिं जीविय मदो देवो जादो । एवं चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं ।

[1]संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो ॥ ३३४ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३२ ॥

जैसे– एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त होकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ ३३३ ॥

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव पंचेन्द्रिय संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः संयमासंयम गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो पूर्वकोटी वर्षतक जीवित रह कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी वर्ष असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टियोंका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३४ ॥

---

१ प्रतिषु 'संजदप्पहुडि' इति पाठः ।

जधा ओधिणाणमग्गणाए संजदासंजदादीणमंतरपरूवणा कदा, तधा कादव्वा, णत्थि एत्थ कोइ विसेसो।

चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३३५ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३३६ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ३३७ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३३८ ॥

तं जहा– एक्को असंजदसम्मादिट्ठी अण्णगुणं गंतूण सव्वजहण्णकालेण असंजदसम्मादिट्ठी जादो। लद्धमंतरं।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं[3] ॥ ३३९ ॥

जिस प्रकारसे अवधिज्ञानमार्गणामें संयतासंयत आदिकोंके अन्तरकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, उससे यहां पर कोई विशेषता नहीं है।

सम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३५ ॥

सम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

जैसे– एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अन्य (संयतासंयतादि) गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी वर्ष है ॥ ३३९ ॥

---

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८. ३ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना। स. सि. १, ८.

तं जहा– एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववज्जिय गब्भादिअट्ठवस्सिओ जादो । दंसणमोहणीयं खविय खइयसम्मादिट्ठी जादो (१)। अंतोमुहुत्तमच्छिदूण (२) संजमासंजमं संजमं वा पडिवज्जिय पुव्वकोडिं गमिय कालं गदो देवो जादो । अट्ठवस्सेहि वि-अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं ।

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणा-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ३४० ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३४१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[3] ॥ ३४२ ॥

तं जहा– एक्को पुव्वकोडाउगेसु मणुसेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि अंतोमुहुत्तेण (१) खइयं पट्ठविय[4] (२) विस्समिय (३) संजमासंजमं पडिवज्जिय (४)

जैसे– एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भसे लेकर आठ वर्षका हुआ और दर्शनमोहनीयका क्षय करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगया (१)। वहां अन्तर्मुहूर्त रह करके (२) संयमासंयम या संयमको प्राप्त होकर और पूर्वकोटी वर्ष विताकर मरणको प्राप्त हो देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी वर्ष असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३४० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३४२ ॥

जैसे– एक जीव पूर्वकोटि वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भको आदि लेकर आठ वर्षोंके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे (१) क्षायिकसम्यक्त्वका प्रस्थापनकर (२) विश्राम ले (३) संयमासंयमको प्राप्त कर (४) संयमको प्राप्त हुआ। संयमसहित

---

१ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८. ४ प्रतिषु 'पट्ठमियं' इति पाठः ।

संजमं पडिवण्णो। पुव्वकोडिं गमिय मदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु उववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो। थोवावसेसे जीविए संजमासंजमं गदो (५)। तदो अप्पमत्तादिणवहि अंतोमुहुत्तेहि सिद्धो जादो। अट्ठवस्सेहि चोद्दस-अंतोमुहुत्तेहि य ऊणदोपुव्वकोडीहिं सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं संजदासंजदस्स।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को पमत्तो अप्पमत्तो (१) अपुव्वो (२) अणियट्टी (३) सुहुमो (४) उवसंतो (५) पुणो वि सुहुमो (६) अणियट्टी (७) अपुव्वो (८) अप्पमत्तो (९) अद्धाखएण कालं गदो। समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (१)। तदो अप्पमत्तो (२)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। अंतरस्स बाहिरा[1] अट्ठ अंतोमुहुत्ता, अंतरस्स अब्भंतरिमा वि णव, तेणेगंतोमुहुत्तब्भहियपुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं।

पूर्वकोटीकाल विताकर मरा और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। जीवनके अल्प अवशेप रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (५)। इसके पश्चात् अप्रमत्तादि गुणस्थानसम्बन्धी नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे (श्रेण्यारोहण करता हुआ) सिद्ध होगया। इस प्रकार आठ वर्ष और चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिवृत्तिकरण (३) सूक्ष्मसाम्पराय (४) उपशान्तकषाय (५) पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (६) अनिवृत्तिकरण (७) अपूर्वकरण (८) अप्रमत्तसंयत (९) होकर (गुणस्थान और आयुके) कालक्षयसे मरणको प्राप्त हो एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१)। पश्चात् अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाए। अन्तरके बाहरी आठ अन्तर्मुहूर्त हैं और अन्तरके भीतरी नौ अन्तर्मुहूर्त हैं, इसलिए नौमेंसे आठके घटा देने पर शेष बचे हुए एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

---

१ प्रतिषु 'बाहिए' इति पाठः।

अथवा अंतरस्सब्भंतराओ दो अप्पमत्तद्धाओ, तासिं बाहिरिया एक्का पमत्तद्धा सुद्धा। अंतरब्भंतराओ छ उवसामगद्धाओ, तासिं बाहिरियाओ तिण्णि खवगद्धाओ सुद्धाओ। अंतरब्भंतरिमाए उवसंतद्धाए एक्किक्किस्से खवगद्धाए अद्धं सुद्धं। अवसेसा अद्धुट्ठा अंतोमुहुत्ता। तेहि ऊणियाए पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तस्सुक्कस्संतरं।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अप्पमत्तो खइयसम्मादिट्ठी अपुव्वो (१) अणियट्टी (२) सुहुमो (३) उवसंतो (४) पुणो वि सुहुमो (५) अणियट्टी (६) अपुव्वो होदूण (७) कालं गदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो, अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (१)। तदो पमत्तो (२) पुणो अप्पमत्तो (३)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। अंतरस्स अब्भंतरिमाओ छ उवसामगद्धाओ बाहिरिल्लियासु तिसु खवगद्धासु सुद्धाओ। अब्भं-

अथवा, अन्तरके आभ्यन्तरी दो अप्रमत्तकाल हैं और उनके बाहरी एक प्रमत्तकाल शुद्ध है। (अतएव घटाने पर शून्य शेष रहा, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतके कालसे प्रमत्तसंयतका काल दूना होता है।) तथा अन्तरके भीतरी छह उपशामककाल हैं, और उनके बाहरी तीन क्षपककाल शुद्ध हैं। (अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा, क्योंकि उपशमश्रेणीके कालसे क्षपकश्रेणीका काल दुगुना होता है।) अन्तरके भीतरी उपशामककालमेंसे एक क्षपककालके आधा घटाने पर क्षपककालका आधा शेष रहता है। इस प्रकार सब मिलाकर साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहे। उन साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक अप्रमत्तसंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अपूर्वकरण (१) अनिवृत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (३) उपशान्तकषाय (४) होकर पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिवृत्तिकरण (६) अपूर्वकरण (७) होकर मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१)। पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) पुनः अप्रमत्तसंयत (३) हुआ। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। अन्तरके आभ्यन्तरी छह उपशामककाल हैं और बाहरी तीन क्षपककाल हैं, अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा।

१ प्रतिषु 'लद्धं' इति पाठः।

तरिमाए उवसंतद्धाए खवगद्धाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा एअद्धछट्ठअंतोमुहुत्ता । एदेहि ऊण-पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अप्पमत्तुक्कस्संतरं ।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३४३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३४४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३४५ ॥

एदं पि अवगदत्थं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[4] ॥ ३४६ ॥

तं जहा– एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अट्ठवस्सेहि अंतोमुहुत्त-ब्भहिएहि (१) अप्पमत्तो जादो (२) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण तम्हि चेव

अन्तरके भीतरी उपशान्तकालमेंसे क्षपककालका आधा घटाने पर आधा काल शेष रहा। अवशिष्ट साढ़े पांच अन्तर्मुहूर्त रहे। उनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम-काल क्षायिकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३४३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३४४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४५ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ ज्ञात है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३४६ ॥

जैसे– एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके द्वारा (१) अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत-संबंधी सहस्रों परिवर्तनोंको करके उसी कालमें क्षायिकसम्यक्त्वको भी प्रस्थापनकर (३)

१ प्रतिषु 'चद्व' इति पाठः।

२ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

४ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

खइयं पट्ठविय (३) उवसमसेडीपाओग्गविसोहीए विसुद्धो (४) अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) उवसंतो (८) पुणो सुहुमो (९) अणियट्टी (१०) अपुव्वो जादो (११) अंतरिदो । पुव्वकोडिं संजममणुपालिय तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिगेसु देवेसु उववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाउगेसु मणुसेसु उववण्णो । अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए अपुव्वो जादो (१२) । लद्धमंतरं । तदो अणियट्टी (१३) सुहुमो (१४) उवसंतो (१५) पुणो सुहुमो (१६) अणियट्टी (१७) अपुव्वो जादो (१८) । उवरि अप्पमत्तादिणवअंतोमुहुत्तेहि सिद्धिं गदो । एवमट्ठवस्सेहि सत्तावीसअंतोमुहुत्तेहि ऊणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अंतरं । एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं । णवरि पंचवीस तेवीस एक्कवीस मुहुत्ता ऊणा कादव्वा ।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ३४७ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३४८ ॥

उपशमश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो (४) अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशान्तकषाय (८) हो, पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण हुआ (११) और अन्तरको प्राप्त होगया । पुनः पूर्वकोटि तक संयमको परिपालनकर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अपूर्वकरण हुआ (१२) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः अनिवृत्तिकरण (१३) सूक्ष्मसाम्पराय (१४) उपशान्तकषाय (१५) पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१६) अनिवृत्तिकरण (१७) और अपूर्वकरण (१८) हुआ । पश्चात् ऊपरके अप्रमत्तादि गुणस्थानसम्बन्धी नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे सिद्धिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्षोंसे और सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरणसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि अनिवृत्तिसंयत उपशामकके पच्चीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके तेवीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकषायके इक्कीस अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३४७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३४८ ॥

---

१ शेषाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं सम्मादिट्ठिभंगो[1] ॥ ३४९ ॥

सम्मत्तमग्गणाए ओघम्हि जधा असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं परूविदं तधा एत्थ वि परूविदव्वं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ ३५० ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३५१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि[4] ॥ ३५२ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर सम्यग्दृष्टिसामान्यके समान है ॥ ३४९ ॥

जिस प्रकारसे सम्यक्त्वमार्गणाके ओघमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर भी कहना चाहिए ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागरोपम है ॥ ३५२ ॥

---

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८.

२ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

४ उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

तं जहा— एक्को मिच्छादिट्ठी वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तमच्छिय संजमं पडिवण्णो अंतरिदो। जत्तियं कालं संजमासंजमेण संजमेण च अच्छिदो तेत्तियमेत्तेणूणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिदेवेसु उववण्णो। तदो चुदो मणुसेसु उववण्णो। तत्थ जत्तियं कालं असंजमेण संजमेण वा अच्छदि, पुणो सग्गादो मणुसगदिमागंतूण जं वासपुधत्तादिकालमच्छिस्सदि तेहि दोहि वि कालेहि ऊणतेत्तीससागरोवमआउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। तदो चुदो मणुसो जादो। वे अंतोमुहुत्तावसेसे वेदगसम्मत्तकाले परिणामपच्चएण संजमासंजमं पडिवण्णो। लद्धमंतरं। तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयं खविय खइयसम्मादिट्ठी जादो। आदिल्लमेक्कं अंतिल्ला दुवे[1] अंतोमुहुत्ता, एदेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि छावट्ठिसागरोवमाणि संजदासंजदुक्कस्संतरं।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ ३५२ ॥

सुगममेदं।

. . . .

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ। अन्तर्मुहूर्त रह कर पुनः संयमको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः मरणकर जितने काल संयमासंयम और संयमके साथ रहा था उतने ही कालसे कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। यहां पर जितने काल असंयमके अथवा संयमके साथ रहा है और स्वर्गसे मनुष्यगतिमें आकर जितने वर्षपृथक्त्वादि काल असंयम अथवा संयमके साथ रहेगा उन दोनों ही कालोंसे कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो मनुष्य हुआ। इस प्रकार वेदकसम्यक्त्वके कालमें दो अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ। तब अन्तर लब्ध हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षपणकर क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगया। इस प्रकार आदिका एक और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त, इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम छयासठ सागरोपमकाल वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है।

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

१ मप्रतौ 'दुमे' इति पाठः। २ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[2] ॥ ३५५ ॥

तं जहा– एक्को पमत्तो अप्पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो । अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । खइयं पट्ठविय खवगसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण (२) खवगसेढिमारूढो अपुव्वादि छअंतोमुहुत्तेहि णिव्वुदो । अंतरस्स आदिल्लमेक्कमंतोमुहुत्तं अंतरबाहिरेसु अट्ठअंतोमुहुत्तेसु सोहिदे अवसेसा सत्त अंतोमुहुत्ता । एदेहि ऊणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तसंजदुक्कस्संतरं ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अप्पमत्तो पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिदेवेसु उववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाएसु मणुसेसु उव-

---

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३५५ ॥

जैसे– एक प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । संसारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः क्षायिकसम्यक्त्वको प्रस्थापितकर क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हो (२) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और अपूर्वकरणादि छह अन्तर्मुहूर्तोंसे निर्वाणको प्राप्त हुआ । अन्तरके आदिके एक अन्तर्मुहूर्तको अन्तरके बाहिरी आठ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे कम कर देने पर अवशिष्ट सात अन्तर्मुहूर्त रहते हैं, इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं– एक अप्रमत्तसंयत जीव, प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ ।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

वण्णो। अंतोमुहुत्तावसेसे आउए अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (१)। पमत्तापमत्तसंजद-ट्ठाणे खइयं पट्ठविय (२) खवगसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण (३) खवगसेढीमारूढो अपुव्वादिछहि अंतोमुहुत्तेहि णिव्वुदो। अंतरस्सादिल्लमेक्कं बाहिरेसु णवसु अंतोमुहुत्तेसु सोहिदे अवसेसा अट्ठ। एदेहि ऊणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अप्पमत्तुक्कस्संतरं।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३५६ ॥

णिरंतरमुवसमसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवाभावा।

उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि[2] ॥ ३५७ ॥

किमत्थो सत्तरादिंदियविरहणियमो? सभावदो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३५८ ॥

तं जहा– एक्को उवसमसेढीदो ओदरिय असंजदो जादो। अंतोमुहुत्तमच्छिदूण

आयुके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१)। तत्पश्चात् प्रमत्त या अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वको प्रस्थापितकर (२) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत होकर (३) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और अपूर्वकरणादि छह अन्तर्मुहूर्तोंसे निर्वाणको प्राप्त हुआ। अन्तरके आदिका एक अन्तर्मुहूर्त बाहरी नौ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे घटा देने पर अवशिष्ट आठ अन्तर्मुहूर्त रहे। इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३५६ ॥

क्योंकि, निरन्तर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन (अहोरात्र) है ॥ ३५७ ॥

शंका—सात रात दिनोंके अन्तरका नियम किसलिए है?

समाधान—स्वभावसे ही है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५८ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ और अन्तर्मुहूर्त

१ औपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण सप्त रात्रिदिनानि। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

संजमासंजमं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तेण पुणो असंजदो जादो। लद्धं जहण्णंतरं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५९ ॥

तं जहा— एक्को सेडीदो ओदरिय असंजदो जादो। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय संजमासंजमं पडिवण्णो। तदो अप्पमत्तो पमत्तो होदूण असंजदो जादो। लद्धमुक्कस्संतरं।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३६० ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण चोद्दस रादिंदियाणि[2] ॥ ३६१ ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३६२ ॥

तं जहा— एक्को उवसमसेढीदो ओदरिय संजमासंजमं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्त-

---

रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। अन्तर्मुहूर्तसे पुनः असंयत होगया। इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५९ ॥

जैसे— एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ। वहां अन्तर्मुहूर्त रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। पश्चात् अप्रमत्त और प्रमत्तसंयत होकर असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर चौदह रात-दिन है ॥ ३६१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६२ ॥

जैसे— एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ और अन्त-

---

१ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिदिनानि। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

मच्छिय असंजदो जादो। पुणो वि अंतोमुहुत्तेण संजमासंजमं पडिवण्णो। लद्धं जहण्णंतरं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६३ ॥

तं जहा– एक्को सेडीदो ओदरिय संजदासंजदो जादो। अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो पमत्तो असंजदो च होदूण संजदासंजदो जादो। लद्धमुक्कस्संतरं।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३६४ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण पण्णारस रादिंदियाणि[2] ॥ ३६५ ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३६६ ॥

तं जहा– एक्को उवसमसेढीदो ओदरिय पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्प-

---

मुहूर्त रहकर असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। फिर भी अन्तर्मुहूर्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६३ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर संयतासंयत हुआ। अन्तर्मुहूर्त रहकर अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि होकर संयतासंयत होगया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह रात-दिन है ॥ ३६५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६६ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रह कर

---

१ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पंचदश रात्रिदिनानि। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

मत्तो जादो। पुणो वि पमत्तत्तं गदो। लद्धमंतरं। एवं चेव अप्पमत्तस्स वि जहण्णंतरं वत्तव्वं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६७ ॥

तं जहा– एक्को उवसमसेढीदो ओदरिय पमत्तो होदूण पुणो संजदासंजदो असंजदो अप्पमत्तो च होदूण पमत्तो जादो। लद्धमंतरं। अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को सेडीदो ओदरिय अप्पमत्तो जादो। पुणो पमत्तो असंजदो संजदासंजदो च होदूण भूओ अप्पमत्तो जादो। लद्धमुक्कस्संतरं।

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३६८ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं[2] ॥ ३६९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

अप्रमत्तसंयत हुआ। फिर भी प्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। इसी प्रकारसे उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिए।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६७ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर प्रमत्तसंयत होकर पुनः संयतासंयत, असंयत और अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर अप्रमत्तसंयत हुआ। पुनः प्रमत्तसंयत, असंयत और संयतासंयत होकर फिर भी अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ।

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३६८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३६९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

---

१ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्।। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३७० ॥

तं जहा– उवसमसेढिं चढिय आदिं करिय पुणो उवरिं गंतूण ओदरिय अप्पिद-गुणं पडिवण्णस्स अंतोमुहुत्तमंतरं होदि।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७१ ॥

एदस्स जहण्णभंगो। णवरि विसेसा विदियवारं चढमाणस्स जहण्णंतरं, पढमवारं चढिय ओदिण्णस्स उक्कस्संतरं वत्तव्वं।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ ३७२ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३७३ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ ३७४ ॥

उक्त तीनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३७० ॥

जैसे– उपशमश्रेणीपर चढ़कर आदि करके फिर भी ऊपर जाकर और उतरकर विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३७१ ॥

इस उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा भी जघन्य अन्तरकी प्ररूपणाके समान जानना चाहिए। किन्तु विशेषता यह है कि उपशमश्रेणिपर द्वितीय वार चढ़नेवाले जीवके जघन्य अन्तर होता है और प्रथम वार चढ़कर उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३७२ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३७३ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७४ ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

हेट्ठिमगुणट्ठाणेसु अंतराविय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो उवसंतकसायभावं गयस्स जहण्णंतरं किण्ण उच्चदे ? ण, हेट्ठा ओइण्णस्स वेदगसम्मत्तमपडिवज्जिय पुव्युवसमसम्मत्तेणुवसमसेढीसमारुहणे संभवाभावादो। तं पि कुदो ? उवसमसेढीसमारुहणपाओग्गकालादो सेसुवसमसम्मत्तद्धाए त्थोवत्तुवलंभादो। तं पि कुदो णव्वदे ? उवसंतकसायएगजीवस्संतराभावण्णहाणुववत्तीदो।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमयं[1] ॥ ३७५ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ ३७६ ॥

एदं पि सुगमं।

शंका—नीचेके गुणस्थानमें अन्तरको प्राप्त कराकर सर्वजघन्य कालसे पुनः उपशान्तकषायताको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे नीचे उतरे हुए जीवके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुए विना पहलेवाले उपशमसम्यक्त्वके द्वारा पुनः उपशमश्रेणीपर समारोहणकी सम्भावनाका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, उपशमश्रेणीके समारोहणयोग्य कालसे शेष उपशमसम्यक्त्वका काल अल्प पाया जाता है।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थके एक जीवके अन्तरका अभाव अन्यथा बन नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि उपशान्तकषाय गुणस्थान एक जीवकी अपेक्षा अन्तर रहित है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३७५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ३७६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ३७७ ॥

गुणसंकंतीए असंभवादो ।

मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ ३७८ ॥

कुदो ? णाणाजीवपवाहस्स वोच्छेदाभावा, गुणंतरसंकंतीए अभावादो ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं[3] ॥ ३७९ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवं पडुच्च अंतोमुहुत्तं देसूणवेछावट्ठिसागरोवममेत्तजहण्णुक्कस्संतरेहि य साधम्मुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति पुरिसवेदभंगो[4] ॥ ३८० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७७ ॥

क्योंकि, इन दोनोंके गुणस्थानका परिवर्तन असम्भव है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है । तथा एक जीवका अन्य गुणस्थानोंमें संक्रमण भी नहीं होता है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३७९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सागरोपममात्र अन्तरोंकी अपेक्षा ओघसे समानता पाई जाती है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ तक संज्ञी जीवोंका अन्तर पुरुषवेदियोंके अन्तरके समान है ॥ ३८० ॥

---

१ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

३ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमा-

कुदो ? सागरोवमसदपुधत्तट्ठिदिं पडि दोण्हं साधम्मुवलंभा । णवरि असण्णिट्ठिदि-मच्छिय सण्णीसुप्पण्णस्स उक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा ।

चदुण्हं खवाणमोघं[1] **॥ ३८१ ॥**

सुगममेदं ।

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] **॥ ३८२ ॥**

कुदो ? असण्णिपवाहस्स वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८३ ॥

कुदो ? गुणसंकंतीए अभावादो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

क्योंकि, सागरोपमशतपृथक्त्वस्थितिकी अपेक्षा दोनोंके अन्तरोंमें समानता पाई जाती है । विशेषता यह है कि असंज्ञी जीवोंकी स्थितिमें रहकर संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उत्कृष्ट स्थिति कहना चाहिए ।

संज्ञी चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८२ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

असंज्ञी जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८३ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंमें गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

संख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

१ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ असंज्ञिनां नानाजीवापेक्षयैकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठीणमोघं[1] ॥ ३८४ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[2] ॥ ३८५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३८६ ॥

एदं पि अवगयत्थं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ[4] ॥ ३८७ ॥

तं जहा– एक्को सासणद्धाए दो समया अत्थि त्ति कालं गदो । एगविग्गहं

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३८५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८६ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्याता-संख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल है ॥ ३८७ ॥

जैसे– एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानके कालमें दो समय

---

१ आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

४ उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः । स. सि. १, ८.

कादूण विदियसमए आहारी होदूण तदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे आहारकाले उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । एगसमयावसेसे आहारकाले सासणं गंतूण विग्गहं गदो । दोहि समएहि ऊणो आहारुक्कस्सकालो सासणुक्कस्संतरं ।

एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण देवेसुववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (५) । लद्धमंतरं । तदो सम्मत्तेण वा मिच्छत्तेण वा अंतोमुहुत्तमच्छिदूण (६) विग्गहं गदो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं ।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं॥ ३८८॥

सुगममेदं ।

अवशिष्ट रहने पर मरणको प्राप्त हुआ । एक विग्रह (मोड़ा) करके द्वितीय समयमें आहारक होकर और तीसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों तक परिभ्रमणकर आहारककालमें अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः आहारककालके एक समयमात्र अवशिष्ट रहने पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दो समयोंसे कम आहारकका उत्कृष्ट काल ही आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) और मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । अंगुलके असंख्यातवें भाग कालप्रमाण परिभ्रमण कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पीछे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रह कर (६) विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक आहारक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३८९ ॥

कुदो ? गुणंतरं गंतूण सव्वजहण्णकालेण पुणो अप्पिदगुणपडिवण्णस्स जहण्णंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ[2] ॥ ३९० ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण देवेसुववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (५) । लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए सासणं गंतूण विग्गहं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८९ ॥

क्योंकि, विवक्षित गुणस्थानसे अन्य गुणस्थानको जाकर और सर्वजघन्य कालसे लौटकर पुनः अपने विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल है ॥ ३९० ॥

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पीछे मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रह जाने पर सासादनमें जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः । स. सि. १, ८.

संजदासंजदस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण सम्मुच्छिमेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो (४) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो (५) । लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए सासणं गंतूण विग्गहं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण मणुसेसुववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्सेहि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (३) । कालं कादूण विग्गहं गदो । तिहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि य ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

अप्पमत्तस्स एवं चेव । णवरि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण अंतरिदो सगट्ठिदिं परिभमिय अप्पमत्तो होदूण (२) पुणो पमत्तो जादो (३) । कालं करिय विग्गहं

आहारक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिमोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक परिभ्रमणकर अन्तमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि ले आठ वर्षोंसे अप्रमत्तसंयत (१) और प्रमत्तसंयत हो (२) मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम आहारककाल ही आहारक प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर इसी प्रकार है । विशेषता यह है कि अप्रमत्तसंयत जीव (१) प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अप्रमत्तसंयत हो (२) पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहको प्राप्त

गदो। तिहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघभंगो[1] ॥ ३९१ ॥

सुगममेदं, बहुसो उत्तत्तादो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३९२ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ[3] ॥ ३९३ ॥

तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण मणुसेसुववण्णो। अट्ठवस्सिओ सम्मत्तं अप्पमत्तभावेण संजमं च समगं पडिवण्णो (१)। अणंताणुबंधी विसंजोएदूण (२) दंसणमोहणीयमुवसामिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) तदो अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) उवसंतो (८) पुणो वि परिवडमाणगो

हुआ। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है।

आहारक चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३९१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसका अर्थ पहले बहुत वार कहा जा चुका है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

आहारक चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है ॥ ३९३ ॥

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। आठ वर्षका होकर सम्यक्त्वको और अप्रमत्तभावके साथ संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके (२) दर्शनमोहनीयका उपशमनकर (३) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (४) पश्चात् अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) और उप-

---

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः। स. सि. १, ८.

सुहुमो (९) अणियट्टी (१०) अपुव्वो जादो (११)। हेट्ठा ओदरिदूणंतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते अपुव्वो जादो। लद्धमंतरं। तदो णिद्दा-पयलाणं बंधे वोच्छिण्णे मरिय विग्गहं गदो। अट्ठवस्सेहि वारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं। एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं। णवरि दस णव अट्ठ अंतोमुहुत्ता समयाहिया ऊणा कादव्वा।

चदुण्हं खवाणमोघं[1] ॥ ३९४ ॥

सुगममेदं।

सजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ३९५ ॥

एदं पि सुगमं।

अणाहारा[2] कम्मइयकायजोगिभंगो[3] ॥ ३९६ ॥

शान्तकषाय होकर (८) फिर भी गिरता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) और अपूर्वकरण हुआ (११)। पुनः नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवें भाग कालप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें अपूर्वकरण उपशामक हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। तत्पश्चात् निद्रा और प्रचला, इन दोनों प्रकृतियोंके बंधसे व्युच्छिन्न होनेपर मरकर विग्रहको प्राप्त हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेषता यह है कि आहारककालमें अनिवृत्तिकरण उपशामकके दश, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके नौ और उपशान्तकषाय उपशामकके आठ अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम करना चाहिए।

आहारक चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

आहारक सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३९५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

अनाहारक जीवोंका अन्तर कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३९६ ॥

---

१ चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनां च सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'अणाहार' इति पाठः।

३ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। सयोगिकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

मिच्छादिट्ठीणं णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण, सासणसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च एगसमयपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागजहण्णुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, असंजदसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च एगसमय-मासपुधत्तंतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, सजोगिकेवलीणं णाणाजीवं पडुच्च एगसमय-वासपुधत्त-जहण्णुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य दोण्हं साधम्मुवलंभादो ।

विसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

णवरि विसेसा, अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ३९७ ॥

सुगममेदं ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता ।)

एवमंतराणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं[2] ।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तरोंसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मासपृथक्त्व अन्तरोंके द्वारा, और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, सयोगिकेवलियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तरसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोंमें समानता पाई जाती है ।

अनाहारक जीवोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।

इस प्रकार अन्तरानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

---

१ अयोगिकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षण्मासाः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ अन्तरमवगतम् । स. सि. १, ८.

भाषापुराणों



सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

भावाणुगमो

अवगयअसुद्धभावे उवगयकम्मक्खउच्चउब्भावे ।
पणमिय सव्वरहंते भावणिओगं परूवेमो ॥

भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[1] ॥ १ ॥

णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावो त्ति चउव्विहो भावो । भावसद्दो बज्झत्थणिरवेक्खो अप्पाणम्हि चेव पयट्टो णामभावो होदि । तत्थ ठवणभावो सब्भावासब्भावभेएण दुविहो । विराग-सरागादिभावे अणुहरंती ठवणा सब्भावट्ठवणभावो । तव्विवरीदो असब्भावट्ठवण-

....

अशुद्ध भावोंसे रहित, कर्मक्षयसे प्राप्त हुए हैं चार अनन्तभाव जिनको, ऐसे सर्व अरहंतोंको प्रणाम करके भावानुयोगद्वारका प्ररूपण करते हैं ।

भावानुगमद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भावकी अपेक्षा भाव चार प्रकारका है । बाह्य अर्थसे निरपेक्ष अपने आपमें प्रवृत्त 'भाव' यह शब्द नामभावनिक्षेप है । उन चार निक्षेपोंमेंसे स्थापनाभावनिक्षेप, सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे विरागी और सरागी आदि भावोंका अनुकरण करनेवाली स्थापना सद्भावस्थापना भावनिक्षेप है । उससे विपरीत असद्भावस्थापना भावनिक्षेप है । द्रव्यभावनिक्षेप आगम और

....

१ भावो विभाव्यते । स द्विविधः, सामान्येन विशेषेण च । स. सि. १, ८.

भावो । तत्थ दव्वभावो दुविहो आगम-णोआगमभेएण । भावपाहुडजाणओ अणुव-जुत्तो आगमदव्वभावो होदि । जो णोआगमदव्वभावो सो तिविहो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण । तत्थ णोआगमजाणुगसरीरदव्वभावो तिविहो भविय-वट्टमाण-समुज्झाद-भेएण । भावपाहुडपज्जायपरिणदजीवस्स आहारो जं होसदि सरीरं तं भवियं णाम । भावपाहुडपज्जायपरिणदजीवेण जमेगीभूदं सरीरं तं वट्टमाणं णाम । भावपाहुडपज्जाएण परिणदजीवेण एगत्तमुवगमिय जं पुधभूदं सरीरं तं समुज्झादं णाम । भावपाहुडपज्जय-सरूवेण जो जीवो परिणमिस्सदि सो णोआगमभवियदव्वभावो णाम । तव्वदिरित्त-णोआगमदव्वभावो तिविहो सचित्ताचित्त-मिस्सभेएण । तत्थ सचित्तो जीवदव्वं । अचित्तो पोग्गल-धम्माधम्म-कालागासदव्वाणि । पोग्गल-जीवदव्वाणं संजोगो कथंचि जच्चंतरत्तमा-वण्णो णोआगममिस्सदव्वभावो णाम । कधं दव्वस्स भावव्ववएसो ? ण, भवनं भावः, भूतिर्वा भाव इति भावसद्दस्स विउप्पत्तिअवलंबणादो । जो भावभावो सो दुविहो आगम-णोआगमभेएण । भावपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावभावो णाम । णोआगमभावभावो पंचविहं ओदइओ ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ चेदि । तत्थ कम्मोदय-

---

नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । भावप्राभृतज्ञायक किन्तु वर्तमानमें अनुपयुक्त जीव आगमद्रव्यभाव कहलाता है । जो नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप है वह ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार होता है । उनमें नोआगमज्ञायकशरीर द्रव्यभाव-निक्षेप भव्य, वर्तमान और समुज्झितके भेदसे तीन प्रकारका है । भावप्राभृतपर्यायसे परिणत जीवका जो शरीर आधार होगा, वह भव्यशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-णत जीवके साथ जो एकीभूत शरीर है, वह वर्तमानशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-णत जीवके साथ एकत्वको प्राप्त होकर जो पृथक् हुआ शरीर है वह समुज्झितशरीर है। भावप्राभृतपर्यायस्वरूपसे जो जीव परिणत होगा, वह नोआगमभव्यद्रव्य भावनिक्षेप है । तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप, सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । उनमें जीवद्रव्य सचित्तभाव है । पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल और आकाश द्रव्य अचित्तभाव हैं । कथंचित् जात्यन्तर भावको प्राप्त पुद्गल और जीव द्रव्योंका संयोग नोआगममिश्रद्रव्य भावनिक्षेप है ।

शंका—द्रव्यके 'भाव' ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'भवनं भावः' अथवा 'भूतिर्वा भावः' इस प्रकार भावशब्दकी व्युत्पत्तिके अवलंबनसे द्रव्यके भी 'भाव' ऐसा व्यपदेश बन जाता है ।

जो भावनामक भावनिक्षेप है, वह आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। भाव प्राभृतका ज्ञायक और उपयुक्त जीव आगमभावनामक भावनिक्षेप है । नोआगम-भाव भावनिक्षेप औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे

जणिदो भावो ओदइओ णाम। कम्मुवसमेण समुब्भूदो ओवसमिओ णाम। कम्माणं खवेण पयडीभूदजीवभावो खइओ णाम। कम्मोदए संते वि जं जीवगुणक्खंडमुवलंभदि सो खओवसमिओ भावो णाम। जो चउहि भावेहि पुव्वुत्तेहि वदिरित्तो जीवाजीवगओ सो पारिणामिओ णाम[1] (५)।

एदेसु चदुसु भावेसु केण भावेण अहियारो? णोआगमभावभावेण। तं कधं णव्वदे? णामादिसेसभावेहि चोद्दसजीवसमासाणमणप्पभूदेहि इह पओजणाभावा। तिण्णि चेव इह णिक्खेवा होंतु, णाम-ट्ठवणाणं विसेसाभावादो? ण, णामे णामवंत-दव्वज्झारोवणियमाभावादो, णामस्स ट्ठवणणियमाभावा, ट्ठवणाए इव आयरा[3]णुग्गहाणम-

पांच प्रकारका है। उनमेंसे कर्मोदयजनित भावका नाम औदयिक है। कर्मोंके उपशमसे उत्पन्न हुए भावका नाम औपशमिक है। कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेवाला जीवका भाव क्षायिक है। कर्मोंके उदय होते हुए भी जो जीवगुणका खंड (अंश) उपलब्ध रहता है, वह क्षायोपशमिकभाव है। जो पूर्वोक्त चारों भावोंसे व्यतिरिक्त जीव और अजीवगत भाव हैं, वह पारिणामिक भाव है।

शंका—उक्त चार निक्षेपरूप भावोंमेंसे यहां पर किस भावसे अधिकार या प्रयोजन है?

समाधान—यहां नोआगमभावभावसे अधिकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—चौदह जीवसमासोंके लिए अनात्मभूत नामादि शेष भावनिक्षेपोंसे यहां पर कोई प्रयोजन नहीं है, इसीसे जाना जाता है कि यहां नोआगमभाव भाव-निक्षेपसे ही प्रयोजन है।

शंका—यहां पर तीन ही निक्षेप होना चाहिए, क्योंकि, नाम और स्थापनामें कोई विशेषता नहीं है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नामनिक्षेपमें नामवंत द्रव्यके अध्यारोपका कोई नियम नहीं है इसलिए, तथा नामवाली वस्तुकी स्थापना होनी ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है इसलिए, एवं स्थापनाके समान नामनिक्षेपमें आदर और अनुग्रहका भी

१ प्रतिषु 'जीवगुणं खंड-' इति पाठः।

२ कम्मुवसमम्मि उवसमभावो खीणम्मि खइयभावो दु। उदयो जीवस्स गुणो खओवसमिओ हवे भावो॥ कम्मुदयजकम्मिगुणो ओदयियो तत्थ होदि भावो दु। कारणणिरवेक्खभवो सभावियो होदि परिणामो॥ गो. क. ८१४-८१५.

३ प्रतिषु 'आयारा' इति पाठः।

भावादो च[1]। भणिदं च—

अप्पिदआदरभावो अणुग्गहभावो य धम्मभावो ।
ठवणाए कीरंते ण होंति णामम्मि एए दु ॥ १ ॥
णामिणि धम्मुवयारो णामं ट्ठवणा य जस्स तं ठविदं ।
तद्धम्मे ण वि जादो सुणाम-ठवणाणमविसेसं ॥ २ ॥

तम्हा चउव्विहो चेव णिक्खेवो त्ति सिद्धं । तत्थ पंचसु भावेसु केण भावेण इह पओजणं ? पंचहिं मि । कुदो ? जीवेसु पंचभावाणमुवलंभा । ण च सेसदव्वेसु पंच भावा अत्थि, पोग्गलदव्वेसु ओदइय-पारिणामियाणं दोण्हं चेव भावाणमुवलंभा, धम्मा-धम्म-कालागासदव्वेसु एक्कस्स पारिणामियभावस्सेवुवलंभा । भावो णाम जीवपरिणामो तिव्व-मदणिज्जराभावादिरूवेण अणेयपयारो । तत्थ तिव्व-मंदभावो णाम—

सम्मत्तुप्पत्तीय वि सावयविरदे अणंतकम्मंसे ।
दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते ॥ ३ ॥
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा ।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेडीए[2] ॥ ४ ॥

अभाव है, इसलिए दोनों निक्षेपोंमें भेद है ही । कहा भी है–

विवक्षित वस्तुके प्रति आदरभाव, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापनामें किया जाता है । किन्तु ये बातें नामनिक्षेपमें नहीं होती हैं ॥ १ ॥

नाममें धर्मका उपचार करना नामनिक्षेप है, और जहां उस धर्मकी स्थापना की जाती है, वह स्थापनानिक्षेप है । इस प्रकार धर्मके विषयमें भी नाम और स्थापनाकी अविशेषता अर्थात् एकता सिद्ध नहीं होती ॥ २ ॥

इसलिए निक्षेप चार प्रकारका ही है, यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—पूर्वोक्त पांच भावोंमेंसे यहां किस भावसे प्रयोजन है ?

समाधान—पांचों ही भावोंसे प्रयोजन है, क्योंकि, जीवोंमें पांचों भाव पाये जाते हैं । किन्तु शेष द्रव्योंमें तो पांच भाव नहीं हैं, क्योंकि, पुद्गल द्रव्योंमें औदयिक और पारिणामिक, इन दोनों ही भावोंकी उपलब्धि होती है, और धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्योंमें केवल एक पारिणामिक भाव ही पाया जाता है ।

शंका—भावनाम जीवके परिणामका है, जो कि तीव्र, मंद निर्जराभाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका है । उनमें तीव्र मंदभाव नाम है–

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें, श्रावकमें, विरतमें, अनन्तानुबन्धी कषायके विसंयोजनमें, दर्शनमोहके क्षपणमें, कषायोंके उपशामकोंमें, उपशान्तकषायमें, क्षपकोंमें, क्षीणमोहमें, और जिन भगवान्में नियमसे असंख्यातगुणीनिर्जरा होती है । किन्तु कालका प्रमाण उक्त गुणश्रेणी निर्जरामें संख्यात गुणश्रेणी क्रमसे विपरीत अर्थात् उत्तरोत्तर हीन है ॥३–४॥

---

१ नामस्थापनयोरेकत्वं, संज्ञाकर्माविशेषादिति चेन्न, आदरानुग्रहाकांक्षित्वात्स्थापनायाम् । त. रा. वा. १, ५.
२ गो. जी. ६६–६७.

एदेसिं सुत्तुद्दिट्ठपरिणामाणं पगरिसापगरिसत्तं तिव्व-मंदभावो णाम। एदेहि चेव परिणामेहि असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मसडणं कम्मसडणजणिदजीवपरिणामो वा णिज्जरा-भावो णाम। तम्हा पंचेव जीवभावा इदि णियमो ण जुज्जदे? ण एस दोसो, जदि जीवादिदव्वादो तिव्व-मंदादिभावा अभिण्णा होंति, तो ण तेसिं पंचभावेसु अंतब्भावो, दव्वत्तादो। अह भेदो अवलंबेज्ज, पंचण्हमण्णदरो होज्ज, एदेहिंतो पुधभूदछट्ठभावाणु-वलंभा। भणिदं च–

ओदइओ उवसमिओ खइओ तह वि य खओवसमिओ य।
परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोग्गलाणं तु ॥ ५ ॥

भावो णाम किं? दव्वपरिणामो पुव्वावरकोडिवदिरित्तवट्टमाणपरिणामुवलक्खिय-दव्वं वा। कस्स भावो? छण्हं दव्वाणं। अधवा ण कस्सइ, परिणामि-परिणामाणं

इन सूत्रोद्दिष्ट परिणामोंकी प्रकर्षताका नाम तीव्रभाव और अप्रकर्षताका नाम मंदभाव है। इन्हीं परिणामोंके द्वारा असंख्यात गुणश्रेणीरूपसे कर्मोंका झरना, अथवा कर्म-झरनेसे उत्पन्न हुए जीवके परिणामोंको निर्जराभाव कहते हैं। इसलिए पांच ही जीवके भाव हैं, यह नियम युक्तिसंगत नहीं है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यदि जीवादि द्रव्यसे तीव्र, मंद आदि भाव अभिन्न होते हैं, तो उनका पांच भावोंमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, वे स्वयं द्रव्य हो जाते हैं। अथवा, यदि भेद माना जाय, तो पांचों भावोंमेंसे कोई एक होगा, क्योंकि, इन पांच भावोंसे पृथग्भूत छठा भाव नहीं पाया जाता है। कहा भी है—

औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और पारिणामिकभाव, ये पांच भाव होते हैं। इनमें पुद्गलोंके उदयसे (औदयिकभाव) होता है ॥५॥

(अब निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे भावनामक पदार्थका निर्णय किया जाता है—)

शंका—भाव नाम किस वस्तुका है?

समाधान—द्रव्यके परिणामको अथवा पूर्वापर कोटिसे व्यतिरिक्त वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव कहते हैं।

शंका—भाव किसके होता है, अर्थात् भावका स्वामी कौन है?

समाधान—छहों द्रव्योंके भाव होता है, अर्थात् भावोंके स्वामी छहों द्रव्य हैं। अथवा, किसी भी द्रव्यके भाव नहीं होता है, क्योंकि, पारिणामी और पारिणामके संग्रह-

संगहणयादो भेदाभावा। केण भावो? कम्माणमुदएण खएण खओवसमेण कम्माणमुवसमेण सभावदो वा। तत्थ जीवदव्वस्स भावा उत्तपंचकारणेहिंतो होंति। पोग्गलदव्वभावा पुण कम्मोदएण विस्ससादो वा उप्पज्जंति। सेसाणं चदुण्हं दव्वाणं भावा सहावदो उप्पज्जंति। कत्थ भावो? दव्वम्हि चेव, गुणिव्वदिरेगेण गुणाणमसंभवा। केवचिरं भावो? अणादिओ अपज्जवसिदो जहा– अभव्वाणमसिद्धदा, धम्मत्थिअस्स गमणहेदुत्तं, अधम्मत्थिअस्स ठिदिहेउत्तं, आगासस्स ओगाहणलक्खणत्तं, कालदव्वस्स परिणामहेदुत्तमिच्चादि। अणादिओ सपज्जवसिदो जहा– भव्वस्स असिद्धदा भव्वत्तं मिच्छत्तमसंजमो इच्चादि। सादिओ अपज्जवसिदो जहा– केवलणाणं केवलदंसणमिच्चादि। सादिओ सपज्जवसिदो जहा– सम्मत्तसंजमपच्छायदाणं मिच्छत्तासंजमा इच्चादि। कदिविधो भावो? ओदइओ उवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ त्ति पंचविहो[1]। तत्थ जो सो ओदइओ जीवदव्वभावो

नयसे कोई भेद नहीं है।

शंका—भाव किससे होता है, अर्थात् भावका साधन क्या है?

समाधान—भाव, कर्मोंके उदयसे, क्षयसे, क्षयोपशमसे, कर्मोंके उपशमसे, अथवा स्वभावसे होता है। उनमेंसे जीवद्रव्यके भाव उक्त पांचों ही कारणोंसे होते हैं, किन्तु पुद्गलद्रव्यके भाव कर्मोंके उदयसे, अथवा स्वभावसे उत्पन्न होते हैं। तथा शेष चार द्रव्योंके भाव स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं।

शंका—भाव कहां पर होता है, अर्थात् भावका अधिकरण क्या है?

समाधान—भाव द्रव्यमें ही होता है, क्योंकि गुणीके विना गुणोंका रहना असम्भव है।

शंका—भाव कितने काल तक होता है?

समाधान—भाव अनादि-निधन है। जैसे– अभव्यजीवोंके असिद्धता, धर्मास्तिकायके गमनहेतुता, अधर्मास्तिकायके स्थितिहेतुता, आकाशद्रव्यके अवगाहनस्वरूपता, और कालद्रव्यके परिणमनहेतुता, इत्यादि। अनादि-सान्तभाव, जैसे– भव्यजीवकी असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम, इत्यादि। सादि-अनन्तभाव जैसे– केवलज्ञान, केवलदर्शन, इत्यादि। सादि-सान्त भाव, जैसे– सम्यक्त्व और संयम धारणकर पीछे आए हुए जीवोंके मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि।

शंका—भाव कितने प्रकारका होता है?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे भाव पांच प्रकारका है। उनमेंसे जो औदयिकभाव नामक जीवद्रव्यका भाव

१ औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च। त. सू. २, १.

सो ठाणदो अट्ठविहो, वियप्पदो एक्कवीसविहो। किं ठाणं? उप्पत्तिहेऊ ट्ठाणं। उत्तं च–

गदि-लिंग-कसाया वि य मिच्छादंसणमसिद्धदण्णाणं।
लेस्सा असंजमो चिय होंति उदयस्स ट्ठाणाइं ॥ ६ ॥

संपहि एदेसिं वियप्पो उच्चदे– गई चउव्विहो णिरय-तिरिय-णर-देवगई चेदि। लिंगमिदि तिविहं त्थी-पुरिस-णवुंसयं चेदि। कसाओ चउव्विहो कोहो माणो माया लोहो चेदि। मिच्छादंसणमेयविहं। असिद्धत्तमेयविहं। किमसिद्धत्तं? अट्ठकम्मोदयसामण्णं। अण्णाणमेअविहं। लेस्सा छव्विहा। असंजमो एयविहो। एदे सव्वे वि एक्कवीस वियप्पा होंति[1] (२१)। पंचजादि-छसंठाण-छसंघडणादिओदइया भावा कत्थ णिवदंति? गदीए, एदेसिमुदयस्स गदिउदयाविणाभावित्तादो। ण लिंगादीहि वियहिचारो, तत्थ तहाविह-विवक्खाभावादो।

है, वह स्थानकी अपेक्षा आठ प्रकारका और विकल्पकी अपेक्षा इक्कीस प्रकारका है।

शंका—स्थान क्या वस्तु है?

समाधान—भावकी उत्पत्तिके कारणको स्थान कहते हैं। कहा भी है–

गति, लिंग, कषाय, मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लेश्या और असंयम, ये औदयिक भावके आठ स्थान होते हैं ॥ ६ ॥

अब इन आठ स्थानोंके विकल्प कहते हैं। गति चार प्रकारकी है– नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। लिंग तीन प्रकारका है– स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग और नपुंसकलिंग। कषाय चार प्रकारका है– क्रोध, मान, माया और लोभ। मिथ्यादर्शन एक प्रकारका है। असिद्धत्व एक प्रकारका है।

शंका—असिद्धत्व क्या वस्तु है?

समाधान—अष्ट कर्मोंके सामान्य उदयको असिद्धत्व कहते हैं।

अज्ञान एक प्रकारका है। लेश्या छह प्रकारका है। असंयम एक प्रकारका है। इस प्रकार ये सब मिलकर औदयिकभावके इक्कीस विकल्प होते हैं (२१)।

शंका—पांच जातियां, छह संस्थान, छह संहनन आदि औदयिकभाव कहां, अर्थात् किस भावमें अन्तर्गत होते हैं?

समाधान—उक्त जातियों आदिका गतिनामक औदयिकभावमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, इन जाति, संस्थान आदिका उदय गतिनामकर्मके उदयका अविनाभावी है। इस व्यवस्थामें लिंग, कषाय आदि औदयिकभावोंसे भी व्यभिचार नहीं आता है, क्योंकि, उन भावोंमें उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है।

---

१ गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः। त. सू. २, ६.

उवसमिओ भावो ठाणदो दुविहो । वियप्पदो अट्ठविहो । भणिदं च–

सम्मत्तं चारित्तं दो चेय ट्ठाणाइमुवसमे होंति ।
अट्ठवियप्पा य तहा कोहाईया मुणेदव्वा ॥ ७ ॥

ओवसमियस्स भावस्स सम्मत्तं चारित्तं चेदि दोण्णि ट्ठाणाणि[1] । कुदो ? उवसमसम्मत्तं उवसमचारित्तमिदि दोण्हं चे उवलंभा । उवसमसम्मत्तमेयविहं । ओवसमियं चारित्तं सत्तविहं । तं जहा– णवुंसयवेदुवसामणद्धाए एयं चारित्तं, इत्थिवेदुवसामणद्धाए विदियं, पुरिस-छण्णोकसायउवसामणद्धाए तदियं, कोहुवसामणद्धाए चउत्थं, माणुवसामणद्धाए पंचमं, माओवसामणद्धाए छट्ठं, लोहुवसामणद्धाए सत्तममोवसमियं चारित्तं । भिण्णकज्जलिंगेण कारणभेदसिद्धीदो उवसमियं चारित्तं सत्तविहं उत्तं । अण्णहा पुण अणेयपयारं, समयं पडि उवसमसेडिम्हि पुध पुध असंखेज्जगुणसेडिणिज्जराणिमित्तपरिणामुवलंभा । खइओ भावो ठाणदो पंचविहो । वियप्पादो णवविहो । भणिदं च–

औपशमिकभावस्थानकी अपेक्षा दो प्रकार और विकल्पकी अपेक्षा आठ प्रकारका है । कहा भी है–

औपशमिकभावमें सम्यक्त्व और चारित्र ये दो ही स्थान होते हैं । तथा औपशमिकभावके विकल्प आठ होते हैं, जो कि क्रोधादि कषायोंके उपशमनरूप जानना चाहिए ॥ ७ ॥

औपशमिकभावके सम्यक्त्व और चारित्र, ये दो ही स्थान होते हैं, क्योंकि, औपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिकचारित्र ये दो ही भाव पाये जाते हैं । इनमेंसे औपशमिकसम्यक्त्व एक प्रकारका है और औपशमिकचारित्र सात प्रकारका है । जैसे– नपुंसकवेदके उपशमनकालमें एक चारित्र, स्त्रीवेदके उपशमनकालमें दूसरा चारित्र, पुरुषवेद और छह नोकषायोंके उपशमनकालमें तीसरा चारित्र, क्रोधसंज्वलनमें उपशमनकालमें चौथा चारित्र, मानसंज्वलनके उपशमनकालमें पांचवां चारित्र, मायासंज्वलनके उपशमनकालमें छठा चारित्र और लोभसंज्वलनके उपशमनकालमें सातवां औपशमिकचारित्र होता है । भिन्न-भिन्न कार्योंके लिंगसे कारणोंमें भी भेदकी सिद्धि होती है, इसलिए औपशमिकचारित्र सात प्रकारका कहा है । अन्यथा, अर्थात् उक्त प्रकारकी विवक्षा न की जाय तो, वह अनेक प्रकारका है, क्योंकि, प्रति समय उपशमश्रेणीमें पृथक् पृथक् असंख्यातगुणश्रेणी निर्जराके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं ।

क्षायिकभाव स्थानकी अपेक्षा पांच प्रकारका है, और विकल्पकी अपेक्षा नौ प्रकारका है । कहा भी है–

१ सम्यक्त्वचारित्रे । त. सू. २, ३.

लद्धीओ सम्मत्तं चारित्तं दंसणं तहा णाणं ।
ठाणाइं पंच खइए भावे जिणभासियाइं तु ॥ ८ ॥

लद्धी सम्मत्तं चारित्तं णाणं दंसणमिदि पंच ठाणाणि । तत्थ लद्धी पंच वियप्पा दाण-लाह-भोगुवभोग-वीरियमिदि । सम्मत्तमेयवियप्पं । चारित्तमेयवियप्पं । केवलणाणमेयवियप्पं । केवलदंसणमेयवियप्पं । एवं खइओ भावो णववियप्पो[1] । खओवसमिओ भावो ठाणदो सत्तविहो । वियप्पदो अट्ठारसविहो । भणिदं च—

णाणण्णाणं च तहा दंसण-लद्धी तहेव सम्मत्तं ।
चारित्तं देसजमो सत्तेव य होंति ठाणाइं ॥ ९ ॥

णाणमण्णाणं दंसणं लद्धी सम्मत्तं चारित्तं संजमासंजमो चेदि सत्त ट्ठाणाणि । तत्थ णाणं चउव्विहं मदि-सुद-ओधि-मणपज्जवणाणमिदि । केवलणाणं किण्ण गहिदं ? ण, तस्स खाइयभावादो । अण्णाणं तिविहं मदि-सुद-विहंगअण्णाणमिदि । दंसणं तिविहं चक्खु-अचक्खु-ओधिदंसणमिदि । केवलदंसणं ण गहिदं । कुदो ? अप्पणो विरोहिकम्मस्स

....

दानादि लब्धियां, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन, तथा क्षायिक ज्ञान, इस प्रकार क्षायिक भावमें जिन-भाषित पांच स्थान होते हैं ॥ ८ ॥

लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, ये पांच स्थान क्षायिकभावमें होते हैं। उनमें लब्धि पांच प्रकारकी है– क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, और क्षायिक वीर्य । क्षायिक सम्यक्त्व एक विकल्पात्मक है । क्षायिक चारित्र एक भेदरूप है । केवलज्ञान एक विकल्पात्मक है और केवलदर्शन एक विकल्परूप है । इस प्रकारसे क्षायिक भावके नौ भेद हैं । क्षायोपशमिकभाव स्थानकी अपेक्षा सात प्रकार और विकल्पकी अपेक्षा अठारह प्रकारका है । कहा भी है—

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और देशसंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिक भावमें होते हैं ॥ ९ ॥

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिकभावके हैं । उनमें मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययके भेदसे ज्ञान चार प्रकारका है ।

शंका—यहांपर ज्ञानोंमें केवलज्ञानका ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वह क्षायिक भाव है ।

कुमति, कुश्रुत और विभंगके भेदसे अज्ञान तीन प्रकारका है । चक्षु, अचक्षु और अवधिके भेदसे दर्शन तीन प्रकारका है । यहांपर दर्शनोंमें केवलदर्शनका ग्रहण नहीं

....

१ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च । त. सू. २, ४.

खएण समुब्भवादो। लद्धी पंचविहा दाणादिभेएण। सम्मत्तमेयविहं वेदगसम्मत्तवदिरेकेण अण्णसम्मत्ताणमणुवलंभा। चारित्तमेयविहं, सामाइयछेदोवट्ठावण-परिहारसुद्धिसंजम-विवक्खाभावा। संजमासंजमो एयविहो। एवमेदे सव्वे वि वियप्पा अट्ठारस होंति[1] (१८)। पारिणामिओ तिविहो भव्वाभव्व-जीवत्तमिदि[2]। उत्तं च–

एयं ठाणं तिण्णि वियप्पा तह पारिणामिए होंति।
भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो[3] चेव बोद्धव्वा[4] ॥ १० ॥

एदेसिं पुव्वुत्तभाववियप्पाणं संगहगाहा–

इगिवीस अट्ठ तह णव अट्ठारस तिण्णि चेव बोद्धव्वा।
ओदइयादी भावा वियप्पदो आणुपुव्वीए[5] ॥ ११ ॥

किया गया है, क्योंकि, वह अपने विरोधी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है। दानादिकके भेदसे लब्धि पांच प्रकारकी है। सम्यक्त्व एक प्रकारका है, क्योंकि, इस भावमें वेदक-सम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्वोंका अभाव है। चारित्र एक विकल्परूप ही है, क्योंकि, यहांपर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिसंयमकी विवक्षाका अभाव है। संयमासंयम एक भेदरूप है। इस प्रकार मिलकर ये सब विकल्प अठारह होते हैं (१८)। पारिणामिकभाव, भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे तीन प्रकारका है। कहा भी है–

पारिणामिकभावमें स्थान एक तथा भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे विकल्प तीन प्रकारके होते हैं। ये विकल्प आत्माके असाधारण भाव होनेसे ग्रहण किये गये जानना चाहिए ॥ १० ॥

इन पूर्वोक्त भावोंके विकल्पोंको बतलानेवाली यह संग्रह-गाथा है–

औदयिक आदि भाव विकल्पोंकी अपेक्षा आनुपूर्वीसे इक्कीस, आठ, नौ, अट्ठारह और तीन भेदवाले हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ११ ॥

---

१ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च। त. सू. २, ५.

२ जीवभव्याभव्यत्वानि च। त. सू, २, ७.

३ अ-कप्रत्योः 'अट्ठवणदो' आप्रतौ 'अट्ठणवदो' मप्रतौ 'अथवणदो' सप्रतौ 'अधवणदो' इति पाठः।

४ असाधारणा जीवस्य भावाः पारिणामिकास्त्रय एव। स. सि. २, ७. अन्यद्रव्यासाधारणास्त्रयः पारिणामिकाः। ××× अस्तित्वादयोऽपि पारिणामिकाः भावाः सन्ति ×× सूत्रे तेषां ग्रहणं कस्मान्न कृतं? अन्यद्रव्यसाधारणत्वादसूत्रिताः। त. रा. वा. २, ७.

५ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्। त. सू. २, २.

अधवा सण्णिवादियं पडुच्च छत्तीसभंगा[1]। सण्णिवादिए त्ति का सण्णा? एकम्हि गुणट्ठाणे जीवसमासे वा वहवो भावा जम्हि सण्णिवदंति तेसिं भावाणं सण्णिवादिए त्ति सण्णा। एग-दु-ति-चदु-पंचसंजोगेण भंगा परूविज्जंति। एगसंजोगेण जधा- ओदइओ ओदइओ त्ति 'मिच्छादिट्ठी असंजदो य'। दंसणमोहणीयस्स उदएण मिच्छादिट्ठि त्ति भावो, असंजदो त्ति संजमघादीणं कम्माणमुदएण। एदेण कमेण सव्वे वियप्पा परूवेदव्वा। एत्थ सुत्तगाहा-

> एकोत्तरपदवृद्धो रूपाद्यैर्भाजितं च पदवृद्धैः।
> गच्छः संपातफलं समाहतः सन्निपातफलं[2] ॥ १२ ॥

एदस्स भावस्स अणुगमो भावाणुगमो। तेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण संगहिदो, आदेसेण असंगहिदो त्ति णिद्देसो दुविहो होदि, तदियस्स णिद्देसस्स संभवाभावा।

अथवा, सांनिपातिककी अपेक्षा भावोंके छत्तीस भंग होते हैं।

शंका—सांनिपातिक यह कौनसी संज्ञा है?

समाधान—एक ही गुणस्थान या जीवसमासमें जो वहुतसे भाव आकर एकत्रित होते हैं, उन भावोंकी सांनिपातिक ऐसी संज्ञा है।

अब उक्त भावोंके एक, दो, तीन, चार और पांच भावोंके संयोगसे होनेवाले भंग कहे जाते हैं। उनमेंसे एकसंयोगी भंग इस प्रकार है- औदयिक-औदयिकभाव, जैसे- यह जीव मिथ्यादृष्टि और असंयत है। दर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे मिथ्यादृष्टि यह भाव उत्पन्न होता है। संयमघाती कर्मोंके उदयसे 'असंयत' यह भाव उत्पन्न होता है। इसी क्रमसे सभी विकल्पोंकी प्ररूपणा करना चाहिए। इस विषयमें सूत्र-गाथा है-

एक एक उत्तर पदसे वढ़ते हुए गच्छको रूप (एक) आदि पदप्रमाण वढ़ाई हुई राशिसे भाजित करे, और परस्पर गुणा करे, तव सम्पातफल अर्थात् एकसंयोगी, द्विसंयोगी आदि भंगोंका प्रमाण आता है। तथा इन एक, दो, तीन आदि भंगोंको जोड़ देने पर सन्निपातफल अर्थात् सान्निपातिकभंग प्राप्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

(इस करणगाथाका विशेष अर्थ और भंग निकालनेका प्रकार समझनेके लिए देखो भाग ४, पृष्ठ १४३ का विशेषार्थ।)

इस उक्त प्रकारके भावके अनुगमको भावानुगम कहते हैं। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका होता है। ओघसे संगृहीत और आदेशसे असंगृहीत, इस प्रकार निर्देश दो प्रकारका होता है, क्योंकि, तीसरे निर्देशका होना संभव नहीं है।

---

१ अथार्षोक्तः सान्निपातिकभावः कतिविध इत्यत्रोच्यते—षड्विंशतिविधः षट्त्रिंशद्विधः एकचत्वारिंशद्विध इत्येवमादिरागमे उक्तः। त. रा. वा. २, ७.

२ छप्पंचादेयंतं रूवुत्तरभाजिदे कमेण हदे। लद्धं मिच्छचउक्के देसे संजोगगुणगारा॥ गो. क. ७९९.

ओघेण मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ २ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति जाणावणट्ठमोघेणेत्ति भणिदं। अत्थाहिहाण-पच्चया तुल्लणामधेया इदि णायादो इदि-करणपरो[2] मिच्छादिट्ठिसद्दो मिच्छत्तभावं भणदि। पंचसु भावेसु एसो को भावो त्ति पुच्छिदे ओदइओ भावो त्ति तित्थयरवयणादो दिव्व-ज्झुणी विणिग्गया। को भावो, पंचसु भावेसु कदमो भावो त्ति भणिदं होदि। उदये भवो ओदइओ, मिच्छत्तकम्मस्स उदएण उप्पण्णमिच्छत्तपरिणामो कम्मोदयजणिदो त्ति ओदइओ। णणु मिच्छादिट्ठिस्स अण्णे वि भावा अत्थि, णाण-दंसण-गदि-लिंग-कसाय-भव्वाभव्वादिभावाभावे जीवस्स संसारिणो अभावप्पसंगा। भणिदं च—

मिच्छत्ते दस भंगा आसादण-मिस्सए वि बोद्धव्वा।
तिगुणा ते चदुहीणा अविरदसम्मस्स एमेव ॥ १३ ॥
देसे खओवसमिए विरदे खवगाण ऊणवीसं तु।
ओसामगेसु पुध पुध पणतीसं भावदो भंगा ॥ १४ ॥

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है? औदयिक भाव है ॥ २ ॥

'जैसा उद्देश होता है उसी प्रकार निर्देश होता है' इस न्यायके ज्ञापनार्थ सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा। अर्थ, अभिधान (शब्द) और प्रत्यय (ज्ञान) तुल्य नामवाले होते हैं, इस न्यायसे 'इति' करणपरक अर्थात् जिसके पश्चात् हेतुवाचक इति शब्द आया है, ऐसा 'मिथ्यादृष्टि' यह शब्द मिथ्यात्वके भावको कहता है। पांचों भावोंमेंसे यह कौन भाव है? ऐसा पूछनेपर यह औदयिक भाव है, इस प्रकार तीर्थंकरके मुखसे दिव्यध्वनि निकली है। यह कौन भाव है, अर्थात् पांचों भावोंमेंसे यह कौनसा भाव है, यह तात्पर्य होता है। उदयसे जो हो, उसे औदयिक कहते हैं। मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला मिथ्यात्वपरिणाम कर्मोदयजनित है, अतएव औदयिक है।

शंका—मिथ्यादृष्टिके अन्य भी भाव होते हैं, उन ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कषाय, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि भावोंके अभाव माननेपर संसारी जीवके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। कहा भी है—

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उक्त भावोंसम्बन्धी दश भंग होते हैं। सासादन और मिश्र-गुणस्थानमें भी इसी प्रकार दश दश भंग जानना चाहिए। अविरतसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानमें वे ही भंग त्रिगुणित और चतुर्हीन अर्थात् (१० × ३ − ४ = २६) छब्बीस होते हैं। इसी प्रकार ये छब्बीस भंग क्षायोपशमिक देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं। क्षपकश्रेणीवाले चारों क्षपकोंके उन्नीस उन्नीस भंग होते हैं।

---

१ सामान्येन तावत्-मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भावः। स. सि. १, ८. मिच्छे खलु ओदइओ। गो. जी. ११.
२ प्रतिषु 'इदिकरणपरे' इति पाठः।

उपशमश्रेणीवाले चारों उपशामकोंमें पृथक् पृथक् पैंतीस भंग भावकी अपेक्षा होते हैं ॥ १३-१४ ॥

विशेषार्थ—ऊपर बतलाये गये भंगोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– औदयिकादि पांचों मूल भावोंमेंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, ये तीन भाव होते हैं। अतः असंयोगी या प्रत्येकसंयोगकी अपेक्षा ये तीन भंग हुए। इनके द्विसंयोगी भंग भी तीन ही होते हैं– औदयिक-क्षायोपशमिक, औदयिक-पारिणामिक और क्षायोपशमिक-पारिणामिक। तीनों भावोंका संयोगरूप त्रिसंयोगी भंग एक ही होता है। इन सात भंगोंके सिवाय स्वसंयोगी तीन भंग और होते हैं। जैसे– औदयिक-औदयिक, क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक और पारिणामिक-पारिणामिक। इस प्रकार ये सब मिलाकर (३ + ३ + १ + ३ = १०) मिथ्यात्वगुणस्थानमें दश भंग होते हैं। ये ही दश भंग सासादन और मिश्र गुणस्थानमें भी जानना चाहिए। अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पांचों मूलभाव होते हैं, इसलिए यहां प्रत्येकसंयोगी पांच भंग होते हैं। पांचों भावोंके द्विसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे इस गुणस्थानमें औपशमिक और क्षायिकभावका संयोगी भंग सम्भव नहीं, क्योंकि, वह उपशमश्रेणीमें ही सम्भव है। अतः दशमेंसे एक घटा देने पर द्विसंयोगी भंग नौ ही पाये जाते हैं। पांचों भावोंके त्रिसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे यहांपर क्षायिक-औपशमिक-औदयिक, क्षायिक-औपशमिक-पारिणामिक और क्षायिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक, ये तीन भंग सम्भव नहीं हैं, अतएव शेष सात ही भंग होते हैं। पांचों भावोंके चतुःसंयोगी पांच भंग होते हैं। उनमेंसे यहांपर औदयिक-क्षायोपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक, तथा औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-पारिणामिक, ये दो ही भंग सम्भव हैं, शेष तीन नहीं। इसका कारण यह है कि यहांपर क्षायिक और औपशमिकभाव साथ साथ नहीं पाये जाते हैं। इसी कारण पंचसंयोगी भंगका भी यहां अभाव है। इनके अतिरिक्त स्वसंयोगी भंगोंमेंसे क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक, औदयिक-औदयिक और पारिणामिक-पारिणामिक, ये तीन भंग और भी होते हैं। औपशमिक और क्षायिकके स्वसंयोगी भंग यहां सम्भव नहीं हैं। इस प्रकार प्रत्येकसंयोगी पांच, द्विसंयोगी नौ, त्रिसंयोगी सात, चतुःसंयोगी दो और स्वसंयोगी तीन, ये सब मिलाकर (५ + ९ + ७ + २ + ३ = २६) असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें छब्बीस भंग होते हैं। ये ही छब्बीस भंग देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं। क्षपकश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें औपशमिकभावके विना शेष चार भाव ही होते हैं। अतएव उनके प्रत्येकसंयोगी भंग चार, द्विसंयोगी भंग छह, त्रिसंयोगी भंग चार और चतुःसंयोगी भंग एक होता है। तथा चारों भावोंके स्वसंयोगी चार भंग और भी होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर (४ + ६ + ४ + १ + ४ = १९) उन्नीस भंग क्षपकश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं। उपशमश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें पांचों ही मूल भाव सम्भव हैं, क्योंकि, यहांपर क्षायिकसम्यक्त्वके साथ औपशमिकचारित्र भी पाया जाता है। अतएव पांचों भावोंके प्रत्येकसंयोगी पांच भंग, द्विसंयोगी दश भंग, त्रिसंयोगी दश भंग, चतुःसंयोगी पांच

तदो मिच्छादिट्ठिस्स ओदइओ चेव भावो अत्थि, अण्णे भावा णत्थि त्ति णेदं घडदे ? ण एस दोसो, मिच्छादिट्ठिस्स अण्णे भावा णत्थि त्ति सुत्ते पडिसेहाभावा। किंतु मिच्छत्तं मोत्तूण जे अण्णे गदि-लिंगादओ साधारणभावा ते मिच्छादिट्ठित्तस्स कारणं ण होंति। मिच्छत्तोदओ एक्को चेव मिच्छत्तस्स कारणं, तेण मिच्छादिट्ठि त्ति भावो ओदइओ त्ति परूविदो।

सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो[1] ॥ ३ ॥

एत्थ चोदओ भणदि– भावो पारिणामिओ त्ति णेदं घडदे, अण्णेहिंतो अणुप्पण्णस्स परिणामस्स अत्थित्तविरोहा। अह अण्णेहिंतो उप्पत्ती इच्छिज्जदि, ण सो पारिणामिओ, णिक्कारणस्स सकारणत्तविरोहा इदि। परिहारो उच्चदे। तं जहा– जो कम्माणमुदय-उवसम-खइय-खओवसमेहि विणा अण्णेहिंतो उप्पण्णो परिणामो सो पारिणामिओ भण्णदि, ण णिक्कारणो कारणमंतरेणुप्पण्णपरिणामाभावा। सत्त-पमेयत्तादओ

भंग होते हैं और पंचसंयोगी एक भंग होता है। तथा स्वसंयोगी भंग चार ही होते हैं, क्योंकि यहांपर क्षायिकसम्यक्त्वके साथ क्षायिकभावका अन्य भेद सम्भव नहीं है। इस प्रकार सब मिलाकर (५ + १० + १० + ५ + १ + ४ = ३५) पैंतीस भंग उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं।

इसलिए मिथ्यादृष्टि जीवके केवल एक औदयिक भाव ही होता है, और अन्य भाव नहीं होते हैं, यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मिथ्यादृष्टिके औदयिक भावके अतिरिक्त अन्य भाव नहीं होते हैं, इस प्रकारका सूत्रमें प्रतिषेध नहीं किया गया है। किन्तु मिथ्यात्वको छोड़कर जो अन्य गति, लिंग आदिक साधारण भाव हैं, वे मिथ्यादृष्टित्वके कारण नहीं होते हैं। एक मिथ्यात्वका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण है, इसलिए 'मिथ्यादृष्टि' यह भाव औदयिक कहा गया है।

सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३ ॥

शंका—यहां पर शंकाकार कहता है कि 'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नहीं होती है, क्योंकि, दूसरोंसे नहीं उत्पन्न होनेवाले पारिणामके अस्तित्वका विरोध है। यदि अन्यसे उत्पत्ति मानी जावे तो पारिणामिक नहीं रह सकता है, क्योंकि, निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है— जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपमके विना अन्य कारणोंसे उत्पन्न हुआ परिणाम है, वह पारिणामिक कहा जाता है। न कि निष्कारण भावको पारिणामिक कहते हैं, क्योंकि,

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिरिति पारिणामिको भावः। स. सि. १, ८. विदिये पुण पारिणामिओ भावो। गो. जी. ११.

भावा णिक्कारणा उवलब्भंतीदि चे ण, विसेससत्तादिसरूवेण अपरिणमंतसत्तादिसामण्णाणुवलंभा। सासणसम्मादिट्ठित्तं पि सम्मत्त-चारित्तुभयविरोहिअणंताणुबंधिचउक्कस्सुदयमंतरेण ण होदि त्ति ओदइयमिदि किण्णेच्छिज्जदि ? सच्चमेयं, किंतु ण तधा अप्पणा अत्थि, आदिमचदुगुणट्ठाणभावपरूवणाए दंसणमोहवदिरित्तसेसकम्मेसु विवक्खाभावा[1]। तदो अप्पिदस्स दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण उवसमेण खएण खओवसमेण वा ण होदि त्ति णिक्कारणं सासणसम्मत्तं, अदो चेव पारिणामियत्तं पि। अणेण णाएण सव्वभावाणं पारिणामियत्तं पसज्जदीदि चे होदु, ण कोइ दोसो, विरोहाभावा। अण्णभावेसु पारिणामियववहारो किण्ण कीरदे ? ण, सासणसम्मत्तं मोत्तूण अप्पिदकम्मादो णुप्पण्णस्स अण्णस्स भावस्स अणुवलंभा।

....

कारणके विना उत्पन्न होनेवाले परिणामका अभाव है।

शंका—सत्त्व, प्रमेयत्व आदिक भाव कारणके विना भी उत्पन्न होनेवाले पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेष सत्त्व आदिके स्वरूपसे नहीं परिणत होनेवाले सत्त्वादि सामान्य नहीं पाये जाते हैं।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनोंके विरोधी अनन्तानुबन्धी चतुष्कके उदयके विना नहीं होता है, इसलिए इसे औदयिक क्यों नहीं मानते हैं ?

समाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु उस प्रकारकी यहां विवक्षा नहीं है, क्योंकि, आदिके चार गुणस्थानोंसम्बन्धी भावोंकी प्ररूपणामें दर्शनमोहनीय कर्मके सिवाय शेष कर्मोंके उदयकी विवक्षाका अभाव है। इसलिए विवक्षित दर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे अथवा क्षयोपशमसे नहीं होता है, अतः यह सासादनसम्यक्त्व निष्कारण है और इसीलिए इसके पारिणामिकपना भी है।

शंका—इस न्यायके अनुसार तो सभी भावोंके पारिणामिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—यदि उक्त न्यायके अनुसार सभी भावोंके पारिणामिकपनेका प्रसंग आता है, तो आने दो, कोई दोष नहीं है, क्योंकि, इसमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—यदि ऐसा है, तो फिर अन्य भावोंमें पारिणामिकपनेका व्यवहार क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वको छोड़कर विवक्षित कर्मसे नहीं उत्पन्न होनेवाला अन्य कोई भाव नहीं पाया जाता।

....

१ एदे भावा णियमा दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु। चारित्तं णत्थि जदो अविरदअंतेसु ठाणेसु॥ गो. जी. १२.

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[1] ॥ ४ ॥

पडिबंधिकम्मोदए संते वि जो उवलब्भइ जीवगुणावयवो सो खओवसमिओ उच्चइ। कुदो ? सव्वघादणसत्तीए अभावो खओ उच्चदि। खओ चेव उवसमो खओवसमो, तम्हि जादो भावो खओवसमिओ। ण च सम्मामिच्छत्तुदए संते सम्मत्तस्स कणिया वि उव्वरदि, सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादित्तण्णहाणुववत्तीदो। तदो सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि ण घडदे ? एत्थ परिहारो उच्चदे- सम्मामिच्छत्तुदए संते सद्दहणासद्दहणप्पओ करंचिओ जीवपरिणामो उप्पज्जइ। तत्थ जो सद्दहणंसो सो सम्मत्तावयवो। तं सम्मामिच्छत्तुदओ ण विणासेदि त्ति सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं। असद्दहणभागेण विणा सद्दहणभागस्सेव सम्मामिच्छत्तववएसो णत्थि त्ति ण सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि चे एवंविहविवक्खाए सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं मा होदु, किंतु अवयव्यवयवनिराकरणानिराकरणं पडुच्च खओवसमियं[2] सम्मामिच्छत्तदव्वकम्मं पि सव्वघादी चेव होदु, जच्चंतरस्स

सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ४ ॥

शंका—प्रतिबंधी कर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके गुणका अवयव (अंश) पाया जाता है, वह गुणांश क्षायोपशमिक कहलाता है, क्योंकि, गुणोंके सम्पूर्णरूपसे घातनेकी शक्तिका अभाव क्षय कहलाता है। क्षयरूप ही जो उपशम होता है, वह क्षयोपशम कहलाता है। उस क्षयोपशममें उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायोपशमिक कहलाता है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय रहते हुए सम्यक्त्वकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं रहती है, अन्यथा, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वघातीपना बन नहीं सकता है। इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक है, यह कहना घटित नहीं होता ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं- सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होने पर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक करंचित अर्थात् शवलित या मिश्रित जीवपरिणाम उत्पन्न होता है, उसमें जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वका अवयव है। उसे सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय नहीं नष्ट करता है, इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक है।

शंका—अश्रद्धान भागके विना केवल श्रद्धान भागके ही 'सम्यग्मिथ्यात्व' यह संज्ञा नहीं है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक नहीं है ?

समाधान—उक्त प्रकारकी विवक्षा होने पर सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक भले ही न होवे, किन्तु अवयवीके निराकरण और अवयवके अनिराकरणकी अपेक्षा वह क्षायोपशमिक है। अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वके उदय रहते हुए अवयवीरूप शुद्ध आत्माका तो निराकरण रहता है, किन्तु अवयवरूप सम्यक्त्वगुणका अंश प्रगट रहता है। इस प्रकार क्षायोपशमिक भी वह सम्यग्मिथ्यात्व द्रव्यकर्म सर्वघाती ही होवे, क्योंकि,

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति क्षायोपशमिको भावः। स. सि. १, ८. मिस्से खओवसमिओ। गो. जी. ११.
२ प्रतिषु 'तं ओवसमियं' इति पाठः।

सम्मामिच्छत्तस्स सम्मत्ताभावादो। किंतु सद्दहणभागो असद्दहणभागो ण होदि, सद्दहणा-सद्दहणाणमेयत्तविरोहा। ण च सद्दहणभागो कम्मोदयजणिओ, तत्थ विवरीयत्ताभावा। ण य तत्थ सम्मामिच्छत्तववएसाभावो, समुदाएसु पयट्टाणं तदेगदेसे वि पउत्तिदंसणादो। तदो सिद्धं सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि। मिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण सम्मामिच्छत्तभावो होदि त्ति सम्मामिच्छत्तस्स खओवसमियत्तं केई परूवयंति, तण्ण घडदे, मिच्छत्तभावस्स वि खओवसमियत्तप्पसंगा। कुदो? सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा मिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण मिच्छत्तभावुप्पत्तीए उवलंभा।

असंजदसम्माइट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो[1] ॥ ५ ॥

जात्यन्तरभूत सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सम्यक्त्वताका अभाव है। किन्तु श्रद्धानभाग अश्रद्धानभाग नहीं हो जाता है, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धानके एकताका विरोध है। और श्रद्धानभाग कर्मोदय-जनित भी नहीं हैं, क्योंकि, इसमें विपरीतताका अभाव है। और न उनमें सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञाका ही अभाव है, क्योंकि, समुदायोंमें प्रवृत्त हुए शब्दोंकी उनके एक देशमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सम्यग्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक भाव है।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके क्षायोपशमिकता सिद्ध होती है। किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर तो मिथ्यात्वभावके भी क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त होगा, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यक्त्वदेशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति पाई जाती है।

असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ५ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टिरिति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भावः। स. सि. १, ८. अविरदसम्मम्हि तिण्णेव ॥ गो. जी. ११.

तं जहा– मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तसव्वघादिफद्दयाणं सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणं च उवसमेण उदयाभावलक्खणेण उवसमसम्मत्तमुप्पज्जदि त्ति तमोवसमियं। एदेसिं चेव खएण उप्पण्णो खइओ भावो। सम्मत्तस्स देसघादिफद्दयाणमुदएण सह वट्टमाणो सम्मत्त-परिणामो खओवसमिओ। मिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुद-ओवसमेण वा सम्मत्तस्स देसघादिफद्दयाणमुदएण खओवसमिओ भावो त्ति केई भणंति, तण्ण घडदे, अइवत्तिदोसप्पसंगादो। कधं पुण घडदे ? जहट्ठियट्ठसद्दहणघायणसत्ती सम्मत्तफद्दएसु खीणा त्ति तेसिं खइयसण्णा। खयाणमुवसमो पसण्णदा[१] खओवसमो। तत्थुप्पण्णत्तादो खओवसमियं वेदगसम्मत्तमिदि घडदे। एवं सम्मत्ते तिण्णि भावा, अण्णे णत्थि। गदिलिंगादओ भावा तत्थुवलंभंत इदि चे होदु णाम तेसिमत्थित्तं, किंतु ण तेहिंतो सम्मत्तमुप्पज्जदि। तदो सम्मादिट्ठी वि ओदइयादिववएसं ण लहदि त्ति घेत्तव्वं।

जैसे– मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके तथा सम्यक्त्व-प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप लक्षणवाले उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होता है, इसलिए 'असंयतसम्यग्दृष्टि' यह भाव औपशमिक है। इन्हीं तीनों प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावको क्षायिक कहते हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिके देश-घाती स्पर्धकोंके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्वपरिणाम क्षायोपशमिक कहलाता है। मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमनसे, और सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भाव कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैसा मानने पर अतिव्याप्ति दोषका प्रसंग आता है।

शंका—तो फिर क्षायोपशमिकभाव कैसे घटित होता है ?

समाधान—यथास्थित अर्थके श्रद्धानको घात करनेवाली शक्ति जब सम्यक्त्व-प्रकृतिके स्पर्धकोंमें क्षीण हो जाती है, तब उनकी क्षायिकसंज्ञा है। क्षीण हुए स्पर्धकोंके उपशमको अर्थात् प्रसन्नताको क्षयोपशम कहते हैं। उसमें उत्पन्न होनेसे वेदकसम्यक्त्व क्षायोपशमिक है, यह कथन घटित हो जाता है। इस प्रकार सम्यक्त्वमें तीन भाव होते हैं, अन्य भाव नहीं होते हैं।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टिमें गति, लिंग आदि भाव पाये जाते हैं, फिर उनका ग्रहण यहां क्यों नहीं किया ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टिमें भले ही गति, लिंग आदि भावोंका अस्तित्व रहा आवे, किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि भी औदयिक आदि भावोंके व्यपदेशको नहीं प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

१ प्रतिषु 'पसण्णदो' इति पाठः।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[1] ॥ ६ ॥

सम्मादिट्ठीए तिण्णि भावे भणिऊण असंजदत्तस्स कदमो भावो होदि त्ति जाणावणट्ठमेदं सुत्तमागदं । संजमघादीणं कम्माणमुदएण जेणेसो असंजदो तेण असंजदो त्ति ओदइओ भावो । हेट्ठिल्लाणं गुणट्ठाणाणमोदइयमसंजदत्तं किण्ण परूविदं ? ण एस दोसो, एदेणेव तेसिमोदइयअसंजदभावोवलद्धीदो । जेणेदमंतदीवयं सुत्तं तेणंते ठाइदूण अइक्कंतसव्वसुत्ताणमवयवसरूवं पडिवज्जदि, तत्थ अप्पणो अत्थित्तं वा पयासेदि, तेण अदीदगुणट्ठाणाणं सव्वेसिमोदइओ असंजमभावो अत्थि त्ति सिद्धं । एदमादीए अभणिय एत्थ भणंतस्स को अभिप्पाओ ? उच्चदे— असंजमभावस्स पज्जवसाणपरूवणट्ठमुवरिमाणमसंजमभावपडिसेहट्ठं चेत्थेदं उच्चदे ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[2] ॥ ७ ॥

किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ ६ ॥

सम्यग्दृष्टिके तीनों भाव कहकर असंयतके उसके असंयतत्वकी अपेक्षा कौनसा भाव होता है, इस बातके बतलानेके लिए यह सूत्र आया है । चूंकि संयमके घात करनेवाले कर्मोंके उदयसे यह असंयतरूप होता है, इसलिए 'असंयत' यह औदयिकभाव है ।

शंका—अधस्तन गुणस्थानोंके असंयतपनेको औदयिक क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इसी ही सूत्रसे उन अधस्तन गुणस्थानोंके औदयिक असंयतभावकी उपलब्धि होती है । चूंकि यह सूत्र अन्तदीपक है, इसलिए असंयतभावको अन्तमें रख देनेसे वह पूर्वोक्त सभी सूत्रोंका अंग बन जाता है । अथवा, अतीत सर्व सूत्रोंमें अपने अस्तित्वको प्रकाशित करता है, इसलिए सभी अतीत गुणस्थानोंका असंयमभाव औदयिक होता है, यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—यह 'असंयत' पद आदिमें न कहकर यहांपर कहनेका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—यहां तकके गुणस्थानोंके असंयमभावकी अन्तिम सीमा बतानेके लिए और ऊपरके गुणस्थानोंके असंयमभावके प्रतिषेध करनेके लिए यह असंयत पद यहांपर कहा है ।

संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत, यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ७ ॥

१ असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन । स. सि. १, ८.

२ संयतासंयतः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयत इति च क्षायोपशमिको भावः । स. सि. १, ८. देसविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु । सो खलु चरित्तमोहं पडुच्च भणियं तहा उवरिं । गो. जी. १३.

तं जहा– चारित्तमोहणीयकम्मोदए खओवसमसण्णिदे संते जदो संजदासंजद-पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजदत्तं च उप्पज्जदि, तेणेदे तिण्णि वि भावा खओवसमिया। पच्चक्खाणावरण-चदुसंजलण-णवणोकसायाणमुदयस्स सव्वप्पणा चारित्तविणासणसत्तीए अभावादो तस्स खयसण्णा। तेसिं चेव उप्पण्णचारित्तं सेडिं वावारंतस्स उवसमसण्णा। तेहि दोहिंतो उप्पण्णा एदे तिण्णि वि भावा खओवसमिया जादा। एवं संते पच्चक्खाणावरणस्स सव्वघादित्तं फिट्टदि त्ति उत्ते ण फिट्टदि, पच्चक्खाणं सव्वं घादयदि त्ति तं सव्वघादी उच्चदि। सव्वमपच्चक्खाणं ण घादेदि, तस्स तत्थ वावाराभावा। तेण तप्परिणदस्स सव्वघादिसण्णा। जस्सोदए संते जमुप्पज्जमाणमुवलब्भदि ण तं पडि तं सव्वघाइववएसं लहइ, अइप्पसंगादो। अपच्चक्खाणावरणचउक्कस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण चदुसंजलण-णवणोकसायाणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण पच्चक्खाणावरणचदुक्कस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण देससंजमो

चूंकि क्षयोपशमनामक चारित्रमोहनीयकर्मका उदय होने पर संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतपना उत्पन्न होता है, इसलिए ये तीनों ही भाव क्षायोपशमिक हैं। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, संज्वलनचतुष्क और नव नोकपायोंके उदयके सर्व प्रकारसे चारित्र विनाश करनेकी शक्तिका अभाव है, इसलिए उनके उदयकी क्षय संज्ञा है। उन्हीं प्रकृतियोंकी उत्पन्न हुए चारित्रको अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करनेके कारण उपशम संज्ञा है। क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुए ये उक्त तीनों भाव भी क्षायोपशमिक हो जाते हैं।

शंका—यदि ऐसा माना जाय, तो प्रत्याख्यानावरण कषायका सर्वघातिपना नष्ट हो जाता है?

समाधान—वैसा माननेपर भी प्रत्याख्यानावरण कषायका सर्वघातिपना नष्ट नहीं होता है, क्योंकि, प्रत्याख्यानावरण कषाय अपने प्रतिपक्षी सर्व प्रत्याख्यान (संयम) गुणको घातता है, इसलिए वह सर्वघाती कहा जाता है। किन्तु सर्व अप्रत्याख्यानको नहीं घातता है, क्योंकि, उसका इस विषयमें व्यापार नहीं है। इसलिए इस प्रकारसे परिणत प्रत्याख्यानावरण कषायके सर्वघाती संज्ञा सिद्ध है। जिस प्रकृतिके उदय होने पर जो गुण उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है, उसकी अपेक्षा वह प्रकृति सर्वघाति संज्ञाको नहीं प्राप्त होती है। यदि ऐसा न माना जाय तो अतिप्रसंग दोष आजायगा।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे और उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, तथा चारों संज्वलन और नवों नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षयसे और उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे और प्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसयंम उत्पन्न होता

उप्पज्जदि । बारसकसायाणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण चदु-संजुलण-णवणोकसायाणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादि-फद्दयाणमुदएण पमत्तापमत्तसंजमा[1] उप्पज्जंति, तेणेदे तिण्णि वि भावा खओवसमिया इदि के वि भणंति । ण च एदं समंजसं । कुदो ? उदयाभावो उवसमो त्ति कट्टु उदय-विरहिदसव्वपयडीहि ट्ठिदि-अणुभागफद्दएहि अ उवसमसण्णा लद्धा । संपहि ण क्खओ अत्थि, उदयस्स विज्जमाणस्स खयव्ववएसविरोहादो । तदो एदे तिण्णि भावा उदओव-समियत्तं पत्ता । ण च एवं, एदेसिमुदओवसमियत्तपदुप्पायणसुत्ताभावा । ण च फलं दाऊण णिज्जरियगयकम्मक्खंडाणं खयव्ववएसं काऊण एदेसिं खओवसमियत्तं वोत्तुं जुत्तं, मिच्छादिट्ठिआदि सव्वभावाणं एवं संते खओवसमियत्तप्पसंगा । तम्हा पुव्विल्लो चेय अत्थो घेत्तव्वो, णिरवज्जत्तादो । दंसणमोहणीयकम्मस्स उवसम-खय-खओवसमे अस्सिदूण संजदासंजदादीणमोवसमियादिभावा किण्ण परूविदा ? ण, तदो संजमासंजमादि-भावाणमुप्पत्तीए अभावादो । ण च एत्थ सम्मत्तविसया पुच्छा अत्थि, जेण दंसण-

---

है । अनन्तानुवन्धी आदि वारह कषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-वस्थारूप उपशमसे चारों संज्वलन और नवों नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उदयसे और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी संयम उत्पन्न होता है, इसलिए उक्त तीनों ही भाव क्षायोपशमिक हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु उनका यह कथन युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि, उदयके अभावको उपशम कहते हैं, ऐसा अर्थ करके उदयसे विरहित सर्वप्रकृतियोंको तथा उन्हींके स्थिति और अनुभागके स्पर्धकोंको उपशमसंज्ञा प्राप्त हो जाती है। अभी वर्तमानमें क्षय नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकृतिका उदय विद्यमान है, उसके क्षय संज्ञा होनेका विरोध है। इसलिए ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको प्राप्त होते हैं। किन्तु ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, उक्त तीनों गुणस्थानोंके उदयोपशमिकपना प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है। और, फलको देकर एवं निर्जराको प्राप्त होकर गये हुए कर्मस्कंधोंके 'क्षय' संज्ञा करके उक्त गुणस्थानोंको क्षायोपशमिक कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि सभी भावोंके क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा। इसलिए पूर्वोक्त ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वही निरवद्य (निर्दोष) है।

शंका—दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमका आश्रय करके संयतासंयतादिकोंके औपशमिकादि भाव क्यों नहीं बताये गये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमादिकसे संयमासंयमादि भावोंकी उत्पत्ति नहीं होती। दूसरे, यहां पर सम्यक्त्व-विषयक पृच्छा (प्रश्न) भी नहीं है,

---

१ प्रतिषु '-संजमो' इति पाठः ।

मोहणिबंधणओवसमियादिभावेहि संजदासंजदादीणं ववएसो होज्ज । ण च एवं, तधाणुवलंभा ।

चदुण्हमुवसमा[1] त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो[2] ॥ ८ ॥

तं जहा— एक्कवीसपयडीओ उवसामेंति त्ति चदुण्हं ओवसमिओ भावो । होदु णाम उवसंतकसायस्स ओवसमिओ भावो उवसमिदासेसकसायत्तादो । ण सेसाणं, तत्थ असेसमोहस्सुवसमाभावा ? ण, अणियट्टिबादरसांपराइय-सुहुमसांपराइयाणं उवसमिद-थोवकसायजणिदुवसमपरिणामाणं ओवसमियभावस्स अत्थित्ताविरोहा । अपुव्वकरणस्स अणुवसंतासेसकसायस्स कधमोवसमिओ भावो ? ण, तस्स वि अपुव्वकरणेहि पडि-समयमसंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मक्खंडे णिज्जरंतस्स ट्ठिदि-अणुभागखंडयाणि घादिदूण कमेण ठिदि-अणुभागे संखेज्जाणंतगुणहीणे करेंतस्स पारद्धुवसमणकिरियस्स तदविरोहा ।

जिससे कि दर्शनमोहनीय-निमित्तक औपशमिकादि भावोंकी अपेक्षा संयतासंयतादिकके औपशमिकादि भावोंका व्यपदेश हो सके। ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था नहीं पाई जाती है।

अपूर्वकरण आदि चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

वह इस प्रकार है— चारित्रमोहनीयकर्मकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशमन करते हैं, इसलिए चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंके औपशमिकभाव माना गया है।

शंका—समस्त कषाय और नोकषायोंके उपशमन करनेसे उपशान्तकषायवीत-रागछद्मस्थ जीवके औपशमिक भाव भले ही रहा आवे, किन्तु अपूर्वकरणादि शेष गुण-स्थानवर्ती जीवोंके औपशमिक भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, उन गुणस्थानोंमें समस्त मोहनीयकर्मके उपशमका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कुछ कषायोंके उपशमन किए जानेसे उत्पन्न हुआ है उपशम परिणाम जिनके, ऐसे अनिवृत्तिकरण बादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय-संयतके उपशमभावका अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—नहीं उपशमन किया है किसी भी कषायका जिसने, ऐसे अपूर्वकरण-संयतके औपशमिक भाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अपूर्वकरण-परिणामोंके द्वारा प्रतिसमय असंख्यात-गुणश्रेणीरूपसे कर्मस्कंधोंकी निर्जरा करनेवाले, तथा स्थिति और अनुभागकांडकोंको घात करके क्रमसे कषायोंकी स्थिति और अनुभागको असंख्यात और अनन्तगुणित हीन करनेवाले, तथा उपशमनक्रियाका प्रारंभ करनेवाले, ऐसे अपूर्वकरणसंयतके उपशम-भावके माननेमें कोई विरोध नहीं है।

१ प्रतिषु 'उवसमो' इति पाठः ।

२ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः । स. सि. १, ८. उवसमभावो उवसामगेसु । गो. जी १४.

कम्माणमुवसमेण उप्पण्णो भावो ओवसमिओ भण्णइ। अपुव्वकरणस्स तदभावा णोवसमिओ भावो इदि चे ण, उवसमणसत्तिसमण्णिदअपुव्वकरणस्स तदत्थित्ताविरोहा। तधा च उवसमे जादो उवसमियकम्माणमुवसमणट्ठं जादो वि ओवसमिओ भाओ त्ति सिद्धं। अधवा भविस्समाणे भूदोवयारादो अपुव्वकरणस्स ओवसमिओ भावो, सयलासंजमे पयट्टचक्कहरस्स तित्थयरववएसो व्व।

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो[1] ॥ ९ ॥

सजोगि-अजोगिकेवलीणं खविदघाइकम्माणं होदु णाम खइओ भावो। खीणकसायस्स वि होदु, खविदमोहणीयत्तादो। ण सेसाणं, तत्थ कम्मक्खयाणुवलंभा? ण, बादर-सुहुमसांपराइयाणं पि खवियमोहेयदेसाणं कम्मक्खयजणिदभावोवलंभा। अपुव्व-

शंका—कर्मोंके उपशमनसे उत्पन्न होनेवाला भाव औपशमिक कहलाता है। किन्तु अपूर्वकरणसंयतके कर्मोंके उपशामका अभाव है, इसलिए उसके औपशमिक भाव नहीं मानना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमनशक्तिसे समन्वित अपूर्वकरणसंयतके औपशमिकभावके अस्तित्वको माननेमें कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला और उपशमन होने योग्य कर्मोंके उपशमनार्थ उत्पन्न हुआ भी भाव औपशमिक कहलाता है, यह बात सिद्ध हुई। अथवा, भविष्यमें होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करलेसे अपूर्वकरणके औपशमिक भाव बन जाता है, जिस प्रकार कि सर्व प्रकारके असंयममें प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थंकरके 'तीर्थंकर' यह व्यपदेश बन जाता है।

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, यह कौनसा भाव है? क्षायिक भाव है ॥ ९ ॥

शंका—घातिकर्मोंके क्षय करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिक भाव भले ही रहा आवे। क्षीणकपाय वीतरागछद्मस्थके भी क्षायिक भाव रहा आवे, क्योंकि, उसके भी मोहनीयकर्मका क्षय हो गया है। किन्तु सूक्ष्मसाम्पराय आदि शेष क्षपकोंके क्षायिक भाव मानना युक्ति-संगत नहीं है, क्योंकि, उनमें किसी भी कर्मका क्षय नहीं पाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मोहनीयकर्मके एक देशके क्षपण करनेवाले बादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकोंके भी कर्मक्षय-जनित भाव पाया जाता है।

१ चतुर्षु क्षपकेषु सयोगायोगकेवलिनोश्च क्षायिको भावः। स. सि. १, ८. खवगेसु खइओ भावो णियमा अजोगिचरिमो त्ति सिद्धे य ॥ गो. जी. १४.

करणस्स अविणट्ठकम्मस्स कधं खइओ भावो ? ण, तस्स वि कम्मक्खयणिमित्तपरिणामुवलंभा। एत्थ वि कम्माणं खए जादो खइओ, खयट्ठं जाओ[1] वा खइओ भावो इदि दुविहा सद्दउप्पत्ती घेत्तव्वा। उवयारेण वा अपुव्वकरणस्स खइओ भावो। उवयारे आसइज्जमाणे अइप्पसंगो किण्ण होदीदि चे ण, पच्चासत्तीदो अइप्पसंगपडिसेहादो।

ओघाणुगमो समत्तो।

आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो[2] ॥ १० ॥

कुदो ? मिच्छत्तुदयजणिदअसद्दहणपरिणामुवलंभा। सम्मामिच्छत्तसव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण[3] अणुदओवसमेण वा मिच्छत्तसव्वघादिफद्दयाणमुदएण मिच्छाइट्ठी

शंका—किसी भी कर्मके नष्ट नहीं करनेवाले अपूर्वकरणसंयतके क्षायिकभाव कैसे माना जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उसके भी कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं।

यहां पर भी कर्मोंके क्षय होने पर उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है, तथा कर्मोंके क्षयके लिए उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है, ऐसी दो प्रकारकी शब्द-व्युत्पत्ति ग्रहण करना चाहिए। अथवा उपचारसे अपूर्वकरण संयतके क्षायिक भाव मानना चाहिए।

शंका—इस प्रकार सर्वत्र उपचारके आश्रय करने पर अतिप्रसंग दोष क्यों नहीं प्राप्त होगा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगसे अतिप्रसंग दोषका प्रतिषेध हो जाता है।

इस प्रकार ओघ भावानुगम समाप्त हुआ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है? औदयिक भाव है ॥ १० ॥

क्योंकि, वहां पर मिथ्यात्वके उदयसे उत्पन्न हुआ अश्रद्धानरूप परिणाम पाया जाता है।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे और मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती

१ प्रतिषु 'खयट्ठज्जाओ' इति पाठः।

२ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

३ अप्रतौ 'सम्मत्तदेसघादि... ...संतोवसमेण' इति पाठस्य द्विरावृत्तिः।

उप्पज्जदि त्ति खओवसमिओ सो किण्ण होदि ? उच्चदे– ण ताव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-देसघादिफद्दयाणमुदयक्खओ संतोवसमो अणुदओवसमो वा मिच्छादिट्ठीए कारणं, सव्वहि-चारित्तादो। जं जदो णियमेण उप्पज्जदि तं तस्स कारणं, अण्णहा अणवत्थोप्पसंगादो। जदि मिच्छत्तुप्पज्जणकाले विज्जमाणा तक्कारणत्तं पडिवज्जंति तो णाण-दंसण-असंजमादओ वि तक्कारणं होंति। ण चेवं, तहाविहववहाराभावा। मिच्छादिट्ठीए पुण मिच्छत्तुदओ कारणं, तेण विणा तदणुप्पत्तीए।

सासणसम्माइट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ११ ॥

अणंताणुबंधीणमुदएणेव सासणसम्मादिट्ठी होदि त्ति ओदइओ भावो किण्ण उच्चदे ? ण, आइल्लेसु चदुसु वि गुणट्ठाणेसु चारित्तावरणतिव्वोदएण पत्तासंजमेसु दंसण-मोहणिबंधणेसु चारित्तमोहविवक्खाभावा। अप्पिदस्स दंसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण खएण खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठी ण होदि त्ति पारिणामिओ भावो।

स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यादृष्टिभाव उत्पन्न होता है, इसलिए उसे क्षायोपशमिक क्यों न माना जाय ?

समाधान—न तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंका उदयक्षय, अथवा सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशम मिथ्यादृष्टिभावका कारण है, क्योंकि, उसमें व्यभिचार दोष आता है। जो जिससे नियमतः उत्पन्न होता है, वह उसका कारण होता है। यदि ऐसा न माना जावे, तो अनवस्था दोषका प्रसंग आता है। यदि यह कहा जाय कि मिथ्यात्वके उत्पन्न होनेके कालमें जो भाव विद्यमान हैं, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते हैं। तो फिर ज्ञान, दर्शन, असंयम आदि भी मिथ्यात्वके कारण हो जावेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारका व्यवहार नहीं पाया जाता है। इसलिए यही सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टिका कारण मिथ्यात्वका उदय ही है, क्योंकि, उसके विना मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति नहीं होती है।

नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ११ ॥

शंका—अनन्तानुवन्धी चारों कषायोंके उदयसे ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि होता है, इसलिए उसे औदयिकभाव क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयनिवन्धनक आदिके चारों ही गुणस्थानोंमें चारित्रको आवरण करनेवाले मोहकर्मके तीव्र उदयसे असंयमभावके प्राप्त होनेपर भी चारित्रमोहनीयकी विवक्षा नहीं की गई है। अतएव विवक्षित दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे सासादनसम्यग्दृष्टि नहीं होता है, इसलिए वह पारिणामिक भाव है।

१ अ-कप्रत्योः 'अणवद्धा' इति पाठः।

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ १२ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छत्तुदए संते वि सम्मद्दंसणेगदेसमुवलंभा । सम्मामिच्छत्तभावे पत्तजच्चंतरे अंसंसीभावो णत्थि त्ति ण तत्थ सम्मद्दंसणस्स एगदेस इदि चे, होदु णाम अभेदविवक्खाए जच्चंतरत्तं । भेदे पुण विवक्खिदे सम्मद्दंसणभागो अत्थि चेव, अण्णहा जच्चंतरत्तविरोहा । ण च सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघाइत्तमेवं संते विरुज्झइ, पत्तजच्चंतरे सम्मद्दंसणंसाभावदो तस्स सव्वघाइत्ताविरोहा । मिच्छत्तसव्वघाइफद्दयाणं उदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मामिच्छत्तसव्वघादिफद्दयाणमुदएण सम्मामिच्छत्तं होदि त्ति तस्स खओवसमियत्तं केइं भणंति, तण्ण घडदे । कुदो ? सव्वहिचारित्तादो । विउचारो पुव्वं परूविदो त्ति णेह परूविज्जदे ।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा, खइओ वा, खओवसमिओ वा भावो ॥ १३ ॥

नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है? क्षायोपशमिक भाव है ॥ १२ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर भी सम्यग्दर्शनका एक देश पाया जाता है।

शंका—जात्यन्तरत्व (भिन्न जातीयता) को प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वभावमें अंशांशी (अवयव-अवयवी) भाव नहीं है, इसलिए उसमें सम्यग्दर्शनका एक देश नहीं है ?

समाधान—अभेदकी विवक्षामें सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता भले ही रही आवे, किन्तु भेदकी विवक्षा करनेपर उसमें सम्यग्दर्शनका एक भाग (अंश) है ही। यदि ऐसा न माना जाय, तो उसके जात्यन्तरत्वके माननेमें विरोध आता है। और, ऐसा माननेपर सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघातिपना भी विरोधको प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता प्राप्त होनेपर सम्यग्दर्शनके एक देशका अभाव है; इसलिए उसके सर्वघातिपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

कितने ही आचार्य, मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे और उन्हींके सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, और सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए उसके क्षायोपशमिकता कहते हैं। किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त लक्षण सव्यभिचारी है। व्यभिचार पहले प्ररूपण किया जा चुका है, (देखो पृ. १९९) इसलिए यहां नहीं कहते हैं।

नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है? औपशमिक भाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १३ ॥

तं जहा– तिण्णि वि करणाणि काऊण सम्मत्तं पडिवण्णजीवाणं ओवसमिओ भावो, दंसणमोहणीयस्स तत्थुदयाभावा। खविददंसणमोहणीयाणं सम्मादिट्ठीणं खइयो, पडिवक्खकम्मक्खएणुप्पण्णत्तादो। इदरेसिं सम्मादिट्ठीणं खओवसमिओ, पडिवक्ख-कम्मोदएण सह लद्धप्पसरूवत्तादो। मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वघादिफद्दयाणमुदय-क्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमुदएण सम्मादिट्ठी उप्पज्जदि त्ति तिस्से खओवसमियत्तं केइं भणंति, तण्ण घडदे, विउचार-दंसणादो, अइप्पसंगादो वा।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १४ ॥

संजमघादीणं कम्माणमुदएण असंजमो होदि, तदो असंजदो त्ति ओदइओ भावो। एदेण अंतदीवएण सुत्तेण अइक्कंतसव्वगुणट्ठाणेसु ओदइयमसंजदत्तमत्थि त्ति भणिदं होदि।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं ॥ १५ ॥

कुदो? मिच्छादिट्ठि त्ति ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि त्ति पारिणामिओ, सम्मा-मिच्छादिट्ठि त्ति खओवसमिओ, असंजदसम्मादिट्ठि त्ति उवसमिओ खइओ खओव-

---

जैसे– अधःकरण आदि तीनों ही करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके औपशमिक भाव होता है, क्योंकि, वहांपर दर्शनमोहनीयकर्मके उदयका अभाव है। दर्शनमोहनीयकर्मके क्षपण करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्षायिकभाव होता है, क्योंकि, वह अपने प्रतिपक्षी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है। अन्य सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्षायोपशमिकभाव होता है, क्योंकि, प्रतिपक्षी कर्मके उदयके साथ उसके आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, तथा सम्य-क्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होती है, इसलिए उसके भी क्षायोपशमिकता कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होती है, क्योंकि, वैसा माननेपर व्यभिचार देखा जाता है, अथवा अतिप्रसंग दोष आता है।

किन्तु नारकी असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है॥ १४॥

चूंकि, असंयमभाव संयमको घात करनेवाले कर्मोंके उदयसे होता है, इसलिए 'असंयत' यह औदयिकभाव है। इस अन्तदीपक सूत्रसे अतिक्रान्त सर्व गुणस्थानोंमें असंयतपना औदयिक है, यह सूचित किया गया है।

इस प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंके सर्व गुणस्थानोंसम्बन्धी भाव होते हैं॥ १५॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिक भाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारि-णामिकभाव है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिकभाव है और असंयतसम्यग्दृष्टि यह

समिओ वा भावो; संजमघादीणं कम्माणमुदएण असंजदो त्ति इच्चेदेहि णिरओघादो विसेसाभावा ।

बिदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठि-सासण-सम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमोघं[1] ॥ १६ ॥

सुगममेदं ।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा[2] भावो[3] ॥ १७ ॥

तं जहा– दंसणमोहणीयस्स उवसमेण उदयाभावलक्खणेण जेणुप्पज्जइ उवसमसम्मादिट्ठी तेण सा ओवसमिया । जदि उदयाभावो वि उवसमो उच्चइ, तो देवत्तं पि ओवसमियं होज्ज, तिण्हं गईणमुदयाभावेण उप्पज्जमाणत्तादो ? ण, तिण्हं गईणं त्थिउक्कसंकमेण[4] उदयस्सुवलंभा, देवगइणामाए उदओवलंभादो वा । वेदगसम्मत्तस्स दंसण-

औपशमिकभाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिकभाव भी है, तथा संयमघाती कर्मोंके उदयसे असंयत है । इस प्रकार नारकसामान्यकी भावप्ररूपणासे कोई विशेषता नहीं है ।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके भाव ओघके समान हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त नारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १७ ॥

चूंकि, दर्शनमोहनीयके उदयाभावलक्षणवाले उपशमके द्वारा उपशमसम्यग्दृष्टि उत्पन्न होती है, इसलिए वह औपशमिक है ।

शंका—यदि उदयाभावको भी उपशम कहते हैं तो देवपना भी औपशमिक होगा, क्योंकि, वह शेष तीनों गतियोंके उदयाभावसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है, अथवा देवगतिनामकर्मका उदय पाया जाता है, इसलिए देवपर्यायको औपशमिक नहीं कहा जा सकता ।

१ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'वा' इति पाठो नास्ति ।

३ असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भावः । स. सि. १, ८.

४ पिंडपगईण जा उदयसंगया तीए अणुदयगयाओ । संकामिऊण वेयइ जं एसो थिबुगसंकामो ॥ पं. सं., संक्रम., ८०.

मोहणीयावयवस्स देसघादिलक्खणस्स उदयादो उप्पण्णसम्मादिट्ठिभावो खओवसमिओ। वेदगसम्मत्तफद्दयाणं खयसण्णा, सम्मत्तपडिबंधणसत्तीए तत्थाभावा। मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुदयाभावो उवसमो। तेहि दोहि उप्पण्णत्तादो सम्माइट्ठिभावो खइओवसमिओ। खइओ भावो किण्णोवलब्भदे ? ण, बिदियादिसु पुढवीसु खइयसम्मादिट्ठीणमुप्पत्तीए अभावा।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[1] ॥ १८ ॥

सम्मादिट्ठित्तं दुभावसण्णिदं सोच्चा असंजदभावावगमत्थं पुच्छिदसिस्ससंदेह-

---

विशेषार्थ—गति, जाति आदि पिंड-प्रकृतियोंमेंसे जिस किसी विवक्षित एक प्रकृतिके उदय आने पर अनुदय-प्राप्त शेष प्रकृतियोंका जो उसी प्रकृतिमें संक्रमण होकर उदय आता है, उसे स्तिवुकसंक्रमण कहते हैं। जैसे- एकेन्द्रिय जीवोंके उदय-प्राप्त एकेन्द्रिय जातिनामकर्ममें अनुदय-प्राप्त द्वीन्द्रिय जाति आदिका संक्रमण होकर उदयमें आना। गति-नामकर्म भी पिंड-प्रकृति है। उसके चारों भेदोंमेंसे किसी एकके उदय होने-पर अनुदय-प्राप्त शेष तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा संक्रमण होकर विपाक होता है। प्रकृतमें यही बात देवगतिको लक्ष्यमें रखकर कही गई है कि देवगति नामकर्मके उदयकालमें शेष तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है।

दर्शनमोहनीयकर्मकी अवयवस्वरूप और देशघाती लक्षणवाली वेदकसम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है। वेदक-सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्धकोंकी क्षय संज्ञा है, क्योंकि, उसमें सम्यग्दर्शनके प्रतिवन्धनकी शक्तिका अभाव है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है।

शंका—यहां क्षायिक भाव क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्तिका अभाव है।

किन्तु उक्त नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १८ ॥

द्वितीयादि पृथिवियोंके सम्यग्दृष्टित्वको औपशमिक और क्षायोपशमिक, इन दो भावोंसे संयुक्त सुन कर वहां असंयतभावके परिज्ञानार्थ प्रश्न करनेवाले शिष्यके

---

१ असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन। स. सि. १, ८.

विणासणट्ठमागदमिदं सुत्तं । संजमघादिचारित्तमोहणीयकम्मोदयसमुप्पण्णत्तादो असंजदभावो ओदइओ । अदीदगुणट्ठाणेसु असंजदभावस्स अत्थित्तं एदेण सुत्तेण परूविदं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदाणमोघं[१] ॥ १९ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि त्ति ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि त्ति पारिणामिओ, सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति खओवसमिओ, सम्मादिट्ठि त्ति ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ वा; ओदइएण भावेण पुणो असंजदो, संजदासंजदो त्ति खओवसमिओ भावो इच्चेदेहि ओघादो चउव्विहतिरिक्खाणं भेदाभावा । पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु भेदपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २० ॥

संदेहको विनाश करनेके लिए यह सूत्र आया है । द्वितीयादि पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका असंयतभाव संयमघाती चारित्रमोहनीयकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण औदयिक है । तथा, इस सूत्रके द्वारा अतीत गुणस्थानोंमें असंयतभावके अस्तित्वका निरूपण किया गया है ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ १९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारिणामिकभाव है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिकभाव है, सम्यग्दृष्टि यह औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है, तथा औदयिकभावकी अपेक्षा वह असंयत है; संयतासंयत यह क्षायोपशमिक भाव है । इस प्रकार ओघसे चारों प्रकारके तिर्यंचोंकी भावप्ररूपणामें कोई भेद नहीं है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें भेद प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २० ॥

---

१ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? उवसम-वेदयसम्मादिट्ठीणं चेय तत्थ संभवादो। खइओ भावो किण्ण तत्थ संभवइ ? खइयसम्मादिट्ठीणं बद्धाउआणं त्थीवेदएसु उप्पत्तीए अभावा, मणुसगइ-वदिरित्तसेसगईसु दंसणमोहणीयक्खवणाए अभावादो च।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २१ ॥

सुगममेदं।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ २२ ॥

तिविहमणुससयलगुणट्ठाणाणं ओघसयलगुणट्ठाणेहिंतो भेदाभावा। मणुसअपज्जत्त-तिरिक्खअपज्जत्तमिच्छादिट्ठीणं सुत्ते भावो किण्ण परूविदो ? ण, ओघपरूवणादो चेय तब्भावावगमादो पुध ण परूविदो।

क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका ही पाया जाना सम्भव है।

शंका— उनमें क्षायिकभाव क्यों नहीं सम्भव है ?

समाधान— क्योंकि, बद्धायुष्क क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी स्त्रीवेदियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त शेष गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें क्षायिकभाव नहीं पाया जाता।

किन्तु तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंसम्बन्धी समस्त गुणस्थानोंकी भावप्ररूपणामें ओघके सकल गुणस्थानोंसे कोई भेद नहीं है।

शंका— लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावोंका सूत्रमें प्ररूपण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, ओघसम्बन्धी भावप्ररूपणासे ही उनके भावोंका परिज्ञान हो जाता है, इसलिए उनके भावोंका सूत्रमें पृथक् निरूपण नहीं किया गया।

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं[1] ॥ २३ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदएण, सासणाणं पारिणामिएण, सम्मामिच्छादिट्ठीणं खओवसमिएण, असंजदसम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमिएहि भावेहि ओघ-मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि साधम्मुवलंभा ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २४ ॥

कुदो ? एदेसिं सुत्तुत्तगुणट्ठाणाणं सव्वपयारेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २५ ॥

कुदो ? तत्थ उवसम-वेदगसम्मत्ताणं दोण्हं चेय संभवादो । खइओ भावो एत्थ

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक भाव ओघके समान हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, देवमिथ्यादृष्टियोंकी औदयिकभावसे, देवसासादनसम्यग्दृष्टियोंकी पारिणामिकभावसे, देवसम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी क्षायोपशमिकभावसे और देवअसंयत-सम्यग्दृष्टियोंकी औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव एवं देवियां, तथा सौधर्म ईशान कल्पवासी देवियां, इनके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका सर्व प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त देव और देवियोंके कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २५ ॥

क्योंकि, उनमें उपशमसम्यक्त्व और क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, इन दोनोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

---

१ देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

किण्ण परूविदो ? ण, भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-विदियादिछपुढविणेरइय-सव्व-विगलिंदिय-लद्धिअपज्जत्तित्थीवेदेसु सम्मादिट्ठीणमुववादाभावा, मणुसगइवदिरित्तण्णगईसु दंसणमोहणीयस्स खवणाभावा च ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २६ ॥

सुगममेदं ।

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ॥ २७ ॥

कुदो ? एत्थतणगुणट्ठाणाणं ओघचदुगुणट्ठाणेहिंतो अप्पिदभावेहि भेदाभावा ।

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २८ ॥

शंका—उक्त भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकभाव क्यों नहीं वतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव, द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व लब्ध्यपर्याप्तक और स्त्रीवेदियोंमें सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए उक्त भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकभाव नहीं वतलाया गया ।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ २६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक पर्यंत विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ २७ ॥

क्योंकि, सौधर्मादि विमानवासी चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके ओघसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंकी अपेक्षा विवक्षित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है ।

अनुदिश आदिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भी है, क्षायिक भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २८ ॥

तं जहा– वेदगसम्मादिट्ठीणं खओवसमिओ भावो, खइयसम्मादिट्ठीणं खइओ, उवसमसम्मादिट्ठीणं ओवसमिओ भावो। तत्थ मिच्छादिट्ठीणमभावे संते कधमुवसमसम्मादिट्ठीणं संभवो, कारणाभावे कज्जस्स उप्पत्तिविरोहादो ? ण एस दोसो, उवसमसम्मत्तेण सह उवसमसेडिं चडंत-ओदरंताणं संजदाणं कालं करिय देवेसुप्पण्णाणमुवसमसम्मत्तुवलंभा। तिसु ट्ठाणेसु पउत्तो वासद्दो अणत्थओ, एगेणेव इट्ठकज्जसिद्धीदो ? ण, मंदवुद्धिसिस्साणुग्गहट्टत्तादो।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २९ ॥

सुगममेदं।

एवं गइमग्गणा सम्मत्ता।

इंदियाणुवादेण पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ३० ॥

जैसे– वेदकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायोपशमिक भाव, क्षायिकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायिक भाव और उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके औपशमिक भाव होता है।

शंका— अनुदिश आदि विमानोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अभाव होते हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि, कारणके अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयतोंके उपशमसम्यक्त्व पाया जाता है।

शंका— सूत्रमें तीन स्थानोंपर प्रयुक्त हुआ 'वा' शब्द अनर्थक है, क्योंकि, एक ही 'वा' शब्दसे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मंदबुद्धि शिष्योंके अनुग्रहार्थ सूत्रमें तीन स्थानोंपर 'वा' शब्दका प्रयोग किया गया है।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३० ॥

---

१ इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भावः। पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

कुदो ? एत्थतणगुणट्ठाणाणमोघगुणट्ठाणेहिंतो अप्पिदभावं पडि भेदाभावा। एइंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्तमिच्छादिट्ठीणं भावो किण्ण परूविदो ? ण एस दोसो, परूवणाए विणा वि तत्थ भावोवलद्धीदो। परूवणा कीरदे परावबोहणट्ठं, ण च अवगयअट्ठपरूवणा फलवंता, परूवणाकज्जस्स अवगमस्स पुव्वमेवुप्पण्णत्तादो।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता।

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ३१ ॥

कुदो ? ओघगुणट्ठाणेहिंतो एत्थतणगुणट्ठाणाणमप्पिदभावेहि भेदाभावा। सव्व-पुढवी-सव्वआउ-सव्वतेउ-सव्ववाउ-सव्ववणप्फदि-तसअपज्जत्तमिच्छादिट्ठीणं भावपरूवणा सुत्ते ण कदा, अवगदपरूवणाए फलाभावा। तस-तसपज्जत्तगुणट्ठाणभावो ओघादो चेव णज्जदि त्ति तब्भावपरूवणमणत्थयमिदि तप्परूवणं पि मा किज्जदु त्ति भणिदे ण, तत्थ

क्योंकि, पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें होनेवाले गुणस्थानोंका ओघगुणस्थानोंकी अपेक्षा विवक्षित भावोंके प्रति कोई भेद नहीं है।

शंका—यहांपर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावोंकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, प्ररूपणाके विना भी उनमें होनेवाले भावोंका ज्ञान पाया जाता है। प्ररूपणा दूसरोंके परिज्ञानके लिये की जाती है, किन्तु जाने हुए अर्थकी प्ररूपणा फलवती नहीं होती है, क्योंकि, प्ररूपणाका कार्यभूत ज्ञान प्ररूपणा करनेके पूर्वमें ही उत्पन्न हो चुका है।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, ओघगुणस्थानोंकी अपेक्षा त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें होनेवाले गुणस्थानोंका विवक्षित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है। सर्व पृथिवीकायिक, सर्व जलकायिक, सर्व तेजस्कायिक, सर्व वायुकायिक, सर्व वनस्पतिकायिक और त्रस लब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवोंकी भावप्ररूपणा सूत्रमें नहीं की गई है, क्योंकि, जाने हुए भावोंकी प्ररूपणा करनेमें कोई फल नहीं है।

शंका—त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें सम्भव गुणस्थानोंके भाव ओघसे ही ज्ञात हो जाते हैं, इसलिए उनके भावोंका प्ररूपण करना अनर्थक है, अतः उनका प्ररूपण भी नहीं करना चाहिए ?

---

१ कायानुवादेन स्थावरकायिकानामौदयिको भावः। त्रसकायिकानां सामान्यमेव। स. सि. १, ८.

बहुसु गुणट्ठाणेसु संतेसु किण्णु कस्सइ अण्णो भावो होदि, ण होदि त्ति संदेहो मा होहदि त्ति तप्पडिसेहट्ठं तप्परूवणाकरणादो ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ३२ ॥

सुगममेदं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं ओघं ॥ ३३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ ३४ ॥

कुदो ? खइय-वेदगसम्मादिट्ठीणं देव-णेरइय-मणुसाणं तिरिक्ख-मणुसेसु उप्पज्ज-

---

समाधान — नहीं, क्योंकि, त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें बहुतसे गुणस्थानोंके होनेपर क्या किसी जीवके कोई अन्य भाव होता है, अथवा नहीं होता है, इस प्रकारका सन्देह न होवे, इस कारण उसके प्रतिषेध करनेके लिए उनके भावोंकी प्ररूपणा की गई है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भाव ओघके समान हैं ॥ ३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ३४ ॥

क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा वेदक-

---

१ योगानुवादेन कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्यमेव । स. सि. १, ८.

माणाणमुवलंभा । ओवसमिओ भावो एत्थ किण्ण परूविदो ? ण, चउग्गइउवसमसम्मादिट्ठीणं मरणाभावादो ओरालियमिस्सम्हि उवसमसम्मत्तस्सुवलंभाभावा । उवसमसेडिं चढंत-ओअरंतसंजदाणमुवसमसम्मत्तेण मरणं अत्थि त्ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते उवसमसम्मत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होंति, देवगदिं मोत्तूण तेसिमण्णत्थ उप्पत्तीए अभावा ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ३५ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ॥ ३६ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघभंगो ॥ ३७ ॥

....

सम्यग्दृष्टि देव, नारकी और मनुष्य पाये जाते हैं ।

शंका—यहां, अर्थात् औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें, औपशमिकभाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों गतियोंके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उपशमसम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता ।

शंका—उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए संयत जीवोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ तो मरण पाया जाता है ?

समाधान—यह कथन सत्य है, किन्तु उपशमश्रेणीमें मरनेवाले वे जीव उपशमसम्यक्त्वके साथ औदारिकमिश्रकाययोगी नहीं होते हैं, क्योंकि, देवगतिको छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३७ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणसम्मादिट्ठीणं, पारिणामिएण, असंजदसम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि ओघमिच्छादिट्ठिआदीहि साधम्मुवलंभा ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ३९ ॥

कुदो ? चारित्तावरणचदुसंजलण-सत्तणोकसायाणमुदए संते वि पमादाणुविद्धसंजमुवलंभा । कधमेत्थ खओवसमो ? पत्तोदयएक्कारसचारित्तमोहणीयपयडिदेसघादिफद्दयाणमुवसमसण्णा, णिरवसेसेण चारित्तघायणसत्तीए तत्थुवसमुवलंभा । तेसिं चेव सव्वघादिफद्दयाणं खयसण्णा, णट्ठोदयभावत्तादो । तेहि दोहिं मि उप्पण्णो संजमो खओव-

---

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदयिकभावसे, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके पारिणामिकभावसे, तथा असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ३९ ॥

क्योंकि, यथाख्यातचारित्रके आवरण करनेवाले चारों संज्वलन और सात नोकषायोंके उदय होने पर भी प्रमादसंयुक्त संयम पाया जाता है ।

शंका—यहां पर क्षायोपशमिकभाव कैसे कहा ?

समाधान—आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें क्षायोपशमिकभाव होनेका कारण यह है कि उदयको प्राप्त चार संज्वलन और सात नोकषाय, इन ग्यारह चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंकी उपशमसंज्ञा है, क्योंकि, सम्पूर्णरूपसे चारित्र घातनेकी शक्तिका वहां पर उपशम पाया जाता है । तथा, उन्हीं ग्यारह चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंकी क्षयसंज्ञा है, क्योंकि, वहां पर उनका उदयमें आना नष्ट हो चुका है । इस प्रकार क्षय और उपशम, इन दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला

समिओ । अधवा एक्कारसकम्माणमुदयस्सेव खओवसमसण्णा । कुदो ? चारित्तघायण-सत्तीए अभावस्सेव तव्ववएसादो । तेण उप्पण्ण इदि खओवसमिओ पमादाणुविद्धसंजमो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघं ॥ ४० ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणाणं पारिणामिएण, कम्मइयकायजोगिअसंजदसम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि, सजोगिकेवलीणं खइएण भावेण ओघम्मि[1] गदगुणट्ठाणेहि साधम्मुवलंभा ।

एवं जोगमग्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं[2] ॥ ४१ ॥

सुगममेदं, एदस्सट्ठपरूवणाए विणा वि अत्थोवलद्धीदो ।

....

संयम क्षायोपशमिक कहलता है। अथवा, चारित्रमोहसम्बन्धी उक्त ग्यारह कर्मप्रकृतियोंके उदयकी ही क्षयोपशमसंज्ञा है, क्योंकि, चारित्रके घातनेकी शक्तिके अभावकी ही क्षयोपशमसंज्ञा है । इस प्रकारके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाला प्रमादयुक्त संयम क्षायोपशमिक है ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली ये भाव ओघके समान हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदयिकभावसे, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके पारिणामिकभावसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा, तथा सयोगिकेवलियोंके क्षायिकभावोंकी अपेक्षा ओघमें कहे गये गुणस्थानोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसके अर्थकी प्ररूपणाके विना भी अर्थका ज्ञान हो जाता है ।

....

१ प्रतिषु 'ओघं पि' इति पाठः । २ वेदानुवादेन स्त्रीपुन्नपुंसकवेदानां ×× सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ४२ ॥

एत्थ चोदगो भणदि— जोणि-मेहणादीहि समण्णिदं सरीरं वेदो, ण तस्स विणासो अत्थि, संजदाणं मरणप्पसंगा। ण भाववेदविणासो वि अत्थि, सरीरे अविणट्ठे तब्भावस्स विणासविरोहा। तदो णावगदवेदत्तं जुज्जदे इदि ? एत्थ परिहारो उच्चदे— ण सरीरमित्थि-पुरिसवेदो, णामकम्मजणिदस्स सरीरस्स मोहणीयत्तविरोहा। ण मोहणीय-जणिदमवि सरीरं, जीवविवाइणो मोहणीयस्स पोग्गलविवाइत्तविरोहा। ण सरीरभावो वि वेदो, तस्स तदो पुधभूदस्स अणुवलंभा। परिसेसादो मोहणीयदव्वकम्मक्खंधो तज्जणिद-जीवपरिणामो वा वेदो। तत्थ तज्जणिदजीवपरिणामस्स वा परिणामेण सह कम्मक्खंधस्स वा अभावेण अवगदवेदो होदि त्ति तेण णेस दोसो त्ति सिद्धं। सेसं सुगमं।

एवं वेदमग्गणा समत्ता।

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरणसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४२ ॥

शंका—यहांपर शंकाकार कहता है कि योनि और लिंग आदिसे संयुक्त शरीर वेद कहलाता है। सो अपगतवेदियोंके इस प्रकारके वेदका विनाश नहीं होता है, क्योंकि, यदि योनि, लिंग आदिसे समन्वित शरीरका विनाश माना जाय, तो अपगतवेदी संयतोंके मरणका प्रसंग प्राप्त होगा। इसी प्रकार अपगतवेदी जीवोंके भाववेदका विनाश भी नहीं है, क्योंकि, जब तक शरीरका विनाश नहीं होता, तब तक शरीरके धर्मका विनाश माननेमें विरोध आता है। इसलिए अपगतवेदता युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—अब यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं— न तो शरीर, स्त्री या पुरुषवेद है, क्योंकि, नामकर्मसे उत्पन्न होनेवाले शरीरके मोहनीयपनेका विरोध है। और न शरीर मोहनीयकर्मसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि, जीवविपाकी मोहनीयकर्मके पुद्गलविपाकी होनेका विरोध है। न शरीरका धर्म ही वेद है, क्योंकि, शरीरसे पृथग्भूत वेद पाया नहीं जाता। पारिशेष न्यायसे मोहनीयके द्रव्यकर्मस्कंधको, अथवा मोहनीय-कर्मसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणामको वेद कहते हैं। उनमें वेदजनित जीवके परि-णामका, अथवा परिणामके साथ मोहकर्मस्कंधका अभाव होनेसे जीव अपगतवेदी होता है। इसलिए अपगतवेदता माननेमें उपर्युक्त कोई दोष नहीं आता है, यह सिद्ध हुआ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ ××× अवेदानां च सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं[1] ॥ ४३ ॥

सुगममेदं ।

अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं[2] ॥ ४४ ॥

चोदओ भणदि– कसाओ णाम जीवगुणो, ण तस्स विणासो अत्थि, णाण-दंसणाणमिव । विणासे वा जीवस्स विणासेण होदव्वं, णाण-दंसणविणासेणेव । तदो ण अकसायत्तं[3] घडदे इदि ? होदु णाण-दंसणाणं विणासम्हि जीवविणासो, तेसिं तल्लक्खणत्तादो । ण कसाओ जीवस्स लक्खणं, कम्मजणिदस्स तल्लक्खणत्तविरोहा । ण कसायाणं कम्मजणिदत्तमसिद्धं, कसायवड्ढीए जीवलक्खणणाणहाणिअण्णहाणुववत्तीदो तस्स कम्मजणिदत्तसिद्धीदो । ण च गुणो गुणंतरविरोही, अण्णत्थ तहाणुवलंभा । सेसं सुगमं ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ४४ ॥

शंका— यहां शंकाकार कहता है कि कषाय नाम जीवके गुणका है । इसलिए उसका विनाश नहीं हो सकता, जिस प्रकार कि ज्ञान और दर्शन, इन दोनों जीवके गुणोंका विनाश नहीं होता है । यदि जीवके गुणोंका विनाश माना जाय, तो ज्ञान और दर्शनके विनाशके समान जीवका भी विनाश हो जाना चाहिए । इसलिए सूत्रमें कही गई अकषायता घटित नहीं होती है ?

समाधान—ज्ञान और दर्शनके विनाश होनेपर जीवका विनाश भले ही हो जावे, क्योंकि, वे जीवके लक्षण हैं । किन्तु कषाय तो जीवका लक्षण नहीं है, क्योंकि, कर्मजनित कषायको जीवका लक्षण माननेमें विरोध आता है । और न कषायोंका कर्मसे उत्पन्न होना असिद्ध है, क्योंकि, कषायोंकी वृद्धि होनेपर जीवके लक्षणभूत ज्ञानकी हानि अन्यथा बन नहीं सकती है । इसलिए कषायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है । तथा गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि, अन्यत्र वैसा देखा नहीं जाता ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ कषायानुवादेन क्रोधमानमायालोभकषायाणां ×× सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ ××× अकषायाणां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८. ३ प्रतिषु 'तदो णुकसायत्तं' इति पाठः ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ ४५ ॥

कधं मिच्छादिट्ठिणाणस्स अण्णाणत्तं ? णाणकज्जाकरणादो । किं णाणकज्जं ? णादत्थसद्दहणं । ण तं मिच्छादिट्ठिम्हि अत्थि । तदो णाणमेव अण्णाणं, अण्णहा जीवविणासप्पसंगा । अवगयदवधम्मणाइसु मिच्छादिट्ठिम्हि सद्दहणमुवलंभए चे ण, अत्तागमपयत्थसद्दहणविरहियस्स दवधम्मणाइसु जहट्ठसद्दहणविरोहा । ण च एस ववहारो लोगे अप्पसिद्धो, पुत्तकज्जमकुणंते पुत्ते वि लोगे अपुत्तववहारदंसणादो । तिसु अण्णाणेसु णिरुद्धेसु सम्मामिच्छादिट्ठिभावो किण्ण परूविदो ? ण, तस्स सद्दहणासद्दहणेहि

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओघके समान हैं ॥ ४५ ॥

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानको अज्ञानपना कैसे कहा ?

समाधान—क्योंकि, उनका ज्ञान ज्ञानका कार्य नहीं करता है ।

शंका—ज्ञानका कार्य क्या है ?

समाधान—जाने हुए पदार्थका श्रद्धान करना ज्ञानका कार्य है ।

इस प्रकारका ज्ञानकार्य मिथ्यादृष्टि जीवमें पाया नहीं जाता है । इसलिए उनके ज्ञानको ही अज्ञान कहा है । (यहांपर अज्ञानका अर्थ ज्ञानका अभाव नहीं लेना चाहिए) अन्यथा (ज्ञानरूप जीवके लक्षणका विनाश होनेसे लक्ष्यरूप) जीवके विनाशका प्रसंग प्राप्त होगा ।

शंका—दयाधर्मसे रहित जातियोंमें उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टि जीवमें तो श्रद्धान पाया जाता है (फिर उसके ज्ञानको अज्ञान क्यों माना जाय) ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आप्त, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके दयाधर्म आदिमें यथार्थ श्रद्धानके होनेका विरोध है (अतएव उनका ज्ञान अज्ञान ही है) । ज्ञानका कार्य नहीं करने पर ज्ञानमें अज्ञानका व्यवहार लोकमें अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, पुत्रकार्यको नहीं करनेवाले पुत्रमें भी लोकके भीतर अपुत्र कहनेका व्यवहार देखा जाता है ।

शंका—तीनों अज्ञानोंको निरुद्ध अर्थात् आश्रय कर उनकी भावप्ररूपणा करते हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका भाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धान, इन दोनोंसे एक साथ अनुविद्ध

---

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभंगज्ञानिनां ×× सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

दोहिं मि अक्कमेण अणुविद्धस्स संजदासंजदो व्व पत्तजच्चंतरस्स णाणेसु अण्णाणेसु वा अत्थित्तविरोहा । सेसं सुगमं ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं[1] ॥ ४६ ॥

सुगममेदं, ओघादो भावं पडि भेदाभावा ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था ओघं ॥ ४७ ॥

एदं पि सुगमं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ ४८ ॥

कुदो ? खइयभावं पडि भेदाभावा । सजोगो त्ति को भावो ? अणादिपारिणामिओ भावो । णोवसमिओ, मोहणीए अणुवसंते वि जोगुवलंभा । ण खइओ, अणप्पसरूवस्स कम्माणं खएणुप्पत्तिविरोहा । ण घादिकम्मोदयजणिओ, णट्ठे वि घादिकम्मोदए केव-

---

होनेके कारण संयतासंयतके समान भिन्नजातीयताको प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वका पांचों ज्ञानोंमें, अथवा तीनों अज्ञानोंमें अस्तित्व होनेका विरोध है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ज्ञानमार्गणामें ओघसे भावकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली भाव ओघके समान है ॥ ४८ ॥

क्योंकि, क्षायिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

शंका—' संयोग ' यह कौनसा भाव है ?

समाधान—' सयोग ' यह अनादि पारिणामिक भाव है । इसका कारण यह है कि यह योग न तो औपशमिक भाव है, क्योंकि, मोहनीयकर्मके उपशम नहीं होने पर भी योग पाया जाता है । न वह क्षायिक भाव है, क्योंकि, आत्मस्वरूपसे रहित योगकी कर्मोंके क्षयसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । योग घातिकर्मोदय-जनित भी नहीं है,

---

१ ××× मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

लिम्हि जोगुवलंभा। णो अघादिकम्मोदयजणिदो वि, संते वि अघादिकम्मोदए अजोगिम्हि जोगाणुवलंभा। ण सरीरणामकम्मोदयजणिदो वि, पोग्गलविवाइयाणं जीवपरिफद्दणहेउत्त-विरोहा। कम्मइयसरीरं ण पोग्गलविवाई, तदो पोग्गलाणं वण्ण-रस-गंध-फास-संठाणा-गमणादीणमणुवलंभा[1]। तदुप्पाइदो जोगो होदु चे ण, कम्मइयसरीरं पि पोग्गलविवाई चेव, सव्वकम्माणमासयत्तादो। कम्मइओदयविणट्ठसमए चेव जोगविणासदंसणादो कम्मइयसरीरजणिदो जोगो चे ण, अघाइकम्मोदयविणासाणंतरं विणस्संतभवियत्तस्स पारिणामियस्स ओदइयत्तप्पसंगा। तदो सिद्धं जोगस्स पारिणामियत्तं। अथवा ओदइओ जोगो, सरीरणामकम्मोदयविणासाणंतरं जोगविणासुवलंभा। ण च भवियत्तेण विउवचारो, कम्मसंबंधविरोहिणो तस्स कम्मजणिदत्तविरोहा। सेसं सुगमं।

एवं णाणमग्गणा समत्ता।

क्योंकि, घातिकर्मोदयके नष्ट होने पर भी सयोगिकेवलीमें योगका सद्भाव पाया जाता है। न योग अघातिकर्मोदय-जनित भी है, क्योंकि, अघातिकर्मोदयके रहने पर भी अयोगिकेवलीमें योग नहीं पाया जाता। योग शरीरनामकर्मोदय-जनित भी नहीं है, क्योंकि, पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके जीव-परिस्पंदनका कारण होनेमें विरोध है।

शंका—कार्मणशरीर पुद्गलविपाकी नहीं है, क्योंकि, उससे पुद्गलोंके वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और संस्थान आदिका आगमन आदि नहीं पाया जाता है। इसलिए योगको कार्मणशरीरसे उत्पन्न होनेवाला मान लेना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सर्व कर्मोंका आश्रय होनेसे कार्मणशरीर भी पुद्गल-विपाकी ही है। इसका कारण यह है कि वह सर्व कर्मोंका आश्रय या आधार है।

शंका—कार्मणशरीरके उदय विनष्ट होनेके समयमें ही योगका विनाश देखा जाता है। इसलिए योग कार्मणशरीर-जनित है, ऐसा मानना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि ऐसा माना जाय तो अघातिकर्मोदयके विनाश होनेके अनन्तर ही विनष्ट होनेवाले पारिणामिक भव्यत्वभावके भी औदयिकपनेका प्रसंग प्राप्त होगा।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे योगके पारिणामिकपना सिद्ध हुआ। अथवा, 'योग' यह औदयिकभाव है, क्योंकि, शरीरनामकर्मके उदयका विनाश होनेके पश्चात् ही योगका विनाश पाया जाता है। और, ऐसा माननेपर भव्यत्वभावके साथ व्यभिचार भी नहीं आता है, क्योंकि, कर्मसम्बन्धके विरोधी पारिणामिकभावकी कर्मसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ निरुपभोगमन्त्यम्। त. सू. २, ४४। अन्ते भवमन्त्यम्। किं तत्? कार्मणम्। इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपभोगः। तदभावान्निरुपभोगम्। स. सि. २, ४४.

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ४९ ॥

सुगममेदं ।

सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ५० ॥

एदं पि सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ ५१ ॥

कुदो ? खओवसमियं भावं पडि विसेसाभावा । पमत्तापमत्तसंजदेसु अण्णे वि भावा संति, एत्थ ते किण्ण परूविदा ? ण, तेसिं पमत्तापमत्तसंजमत्ताभावा । पमत्तापमत्तसंजदाणं भावेसु पुच्छिदेसु ण हि सम्मत्तादिभावाणं परूवणा णाओववण्णो त्ति[2] ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओघं ॥ ५२ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये भाव ओघके समान हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक भावके प्रति दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

शंका— प्रमत्त और अप्रमत्त संयत जीवोंमें अन्य भाव भी होते हैं, यहांपर वे क्यों नहीं कहे ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वे भाव प्रमत्त और अप्रमत्त संयम होनेके कारण नहीं हैं । दूसरी बात यह है कि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंके भाव पूछनेपर सम्यक्त्व आदि भावोंकी प्ररूपणा करना न्याय-संगत नहीं है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और क्षपक भाव ओघके समान हैं ॥ ५२ ॥

---

१ संयमानुवादेन सर्वेषां संयतानां ××× सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु ' णाओववण्णो त्ति ' इति पाठः ।

उवसामगाणमुवसमिओ भावो, खवगाणं खइओ भावो त्ति उत्तं होदि ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ ५३ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा ओघं[1] ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं[2] ॥ ५५ ॥

सुगममेदं, पुव्वं परूविदत्तादो ।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[3] ॥ ५६ ॥

उपशामकोंके औपशमिक भाव और क्षपकोंके क्षायिक भाव होता है, यह अर्थ सूत्रद्वारा कहा गया है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत भाव ओघके समान है ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५६ ॥

---

१ ×× संयतासंयतानां ×× सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ ××× असंयतानां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? मिच्छादिट्ठिप्पहुडि खीणकसायपज्जंतसव्वगुणट्ठाणाणं चक्खु-अचक्खु-दंसणविरहियाणमणुवलंभा ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ५७ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ५८ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु चदुट्ठाणी ओघं[1] ॥ ५९ ॥

चदुण्हं ठाणाणं समाहारो चदुट्ठाणी । केण समाहारो ? एगलेस्साए । सेसं सुगमं ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्त-संजदा त्ति ओघं ॥ ६० ॥

एदं सुगमं ।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यंत कोई गुणस्थान चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनवाले जीवोंसे रहित नहीं पाया जाता है ।

अवधिदर्शनी जीवोंके भाव अवधिज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५७ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके भाव केवलज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५८ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वालोंमें आदिके चार गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ५९ ॥

चार स्थानोंके समाहारको चतुःस्थानी कहते हैं ।

शंका—चारों गुणस्थानोंका समाहार किस अपेक्षासे है ?

समाधान—एक लेश्याकी अपेक्षासे है, अर्थात् आदिके चारों गुणस्थानोंमें एकसी लेश्या पाई जाती है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ लेश्यानुवादेन षड्लेश्यानामलेश्यानां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ६१ ॥

सुगममेदं ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ६२ ॥

कुदो ? एत्थतणगुणट्ठाणाणं ओघगुणट्ठाणेहिंतो भवियत्तं पडि भेदाभावा ।

अभवसिद्धिय त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो[2] ॥ ६३ ॥

कुदो ? कम्माणमुदएण उवसमेण खएण खओवसमेण वा अभवियत्ताणुप्पत्तीदो । भवियत्तस्स वि पारिणामिओ चेय भावो, कम्माणमुदय-उवसम-खय-खओवसमेहि भवियत्ताणुप्पत्तीदो । गुणट्ठाणस्स भावमभणिय मग्गणट्ठाणभावं परूवेंतस्स कोभिप्पाओ ?

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, भव्यमार्गणासम्बन्धी गुणस्थानोंका ओघ गुणस्थानोंसे भव्यत्व नामक पारिणामिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ६३ ॥

क्योंकि, कर्मोंके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे अभव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता है । इसी प्रकार भव्यत्व भी पारिणामिक भाव ही है, क्योंकि, कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे भव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता ।

शंका — यहांपर गुणस्थानके भावको न कह कर मार्गणास्थानसम्बन्धी भावका प्ररूपण करते हुए आचार्यका क्या अभिप्राय है ?

---

१ भव्यानुवादेन भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ अभव्यानां पारिणामिको भावः । स. सि. १, ८.

गुणट्ठाणभावो अउत्तो वि णाणिज्जओ। अभवियत्तं पुण उवदेसमवेक्खदे, पुव्वमपरूविदसरूवत्तादो। तेण मग्गणाभावो उत्तो त्ति।

एवं भवियमग्गणा समत्ता।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ६४ ॥

सुगममेदं।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खइओ भावो[1] ॥ ६५ ॥

कुदो? दंसणमोहणीयस्स णिम्मूलक्खएणुप्पण्णसम्मत्तादो।

खइयं सम्मत्तं[2] ॥ ६६ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु सम्मत्तं खइयं चेव होदि त्ति अणुत्तसिद्धीदो णेदं सुत्तमाढवेदव्वं? ण एस दोसो। कुदो? ण ताव खइयसम्मादिट्ठी सण्णा खइयस्स सम्मत्तस्स

समाधान—गुणस्थानसम्बन्धी भाव तो विना कहे भी जाना जाता है। किन्तु अभव्यत्व (कौनसा भाव है यह) उपदेशकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि, उसके स्वरूपका पहले प्ररूपण नहीं किया गया है। इसलिए यहांपर (गुणस्थानका भाव न कह कर) मार्गणासम्बन्धी भाव कहा है।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है? क्षायिक भाव है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके निर्मूल क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

उक्त जीवोंके क्षायिक सम्यक्त्व होता है ॥ ६६ ॥

शंका—क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है, यह बात अनुक्तसिद्ध है, इसलिए इस सूत्रका आरम्भ नहीं करना चाहिए?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि यह संज्ञा क्षायिक-

---

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भावः। स. सि. १, ८.

२ क्षायिकं सम्यक्त्वम्। स. सि. १, ८.

अत्थित्तं गमयदि, तवण-भक्खरादिणामस्स अणणुअट्ठस्स वि उवलंभा। ण च अण्णं किंचि खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तम्हि चिण्हमत्थि। तदो खइयसम्मादिट्ठिस्स खइयं चेव सम्मत्तं होदि त्ति जाणाविदं। अवरं च ण सव्वे सिस्सा उप्पण्णा चेव, किंतु अउप्पण्णा वि अत्थि। तेहि खइयसम्मादिट्ठीणं किमुवसमसम्मत्तं, किं खइयसम्मत्तं, किं वेदगसम्मत्तं होदि त्ति पुच्छिदे एदस्स सुत्तस्स अवयारो जादो, खइयसम्मादिट्ठीणं खइयं चेव सम्मत्तं होदि, ण सेसदोसम्मत्ताणि त्ति जाणावणट्ठं अपुव्वकरणक्खवयाणं खइयभावाणं खइय-चरित्तस्सेव दंसणमोहखवयाणं पि खइयभावाणं तस्संबंधेण वेदयसम्मत्तोदए संते वि खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तप्पसंगे तप्पडिसेहट्ठं वा।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[1] ॥ ६७ ॥

सुगममेदं।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[2] ॥ ६८ ॥

सम्यक्त्वके अस्तित्वका ज्ञान नहीं कराती है। इसका कारण यह है लोकमें तपन, भास्कर आदि अनन्वर्थ (अर्थशून्य या रूढ) नाम भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई चिन्ह क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका है नहीं। इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है, यह बात इस सूत्रसे ज्ञापित की गई है। दूसरी बात यह भी है कि सभी शिष्य व्युत्पन्न नहीं होते, किन्तु कुछ अव्युत्पन्न भी होते हैं। उनके द्वारा क्षायिक-सम्यग्दृष्टियोंके क्या उपशमसम्यक्त्व है, किंवा क्षायिकसम्यक्त्व है, किंवा वेदकसम्यक्त्व होता है, ऐसा पूछने पर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक ही सम्यक्त्व होता है, शेष दो सम्यक्त्व नहीं होते हैं, इस बातके जतलानेके लिए, अथवा क्षायिकभाववाले अपूर्व-करण गुणस्थानवर्ती क्षपकोंके क्षायिक चारित्रके समान क्षायिकभाववाले भी जीवोंके दर्शनमोहनीयका क्षपण करते हुए उसके सम्बन्धसे वेदकसम्यक्त्वप्रकृतिके उदय रहने पर भी क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका प्रसंग प्राप्त होनेपर उसका प्रतिषेध करनेके लिए इस सूत्रका अवतार हुआ है।

किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ६८ ॥

---

१ असंयतत्वमौदयिकेन भावेन। स. सि. १, ८.

२ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः। स. सि. १, ८.

कुदो ? चारित्तावरणकम्मोदए संते वि जीवसहावचारित्तेगदेसस्स संजमासंजम-पमत्त-अप्पमत्तसंजमस्स आविब्भावस्सुवलंभा ।

खइयं सम्मत्तं[1] ॥ ६९ ॥

सुगममेदं ।

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो[2] ॥ ७० ॥

मोहणीयस्सुवसमेणुप्पण्णचरित्तत्तादो, मोहोवसमणहेदुचारित्तसमण्णिदत्तादो य ।

खइयं सम्मत्तं[3] ॥ ७१ ॥

पारद्धदंसणमोहणीयक्खवणो कदकरणिज्जो वा उवसमसेढिं ण चढदि त्ति जाणावणट्ठमेदं सुत्तं भणिदं । सेसं सुगमं ।

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो[4] ॥ ७२ ॥

क्योंकि, चारित्रावरणकर्मके उदय होने पर भी जीवके स्वभावभूत चारित्रके एक देशरूप संयमासंयम, प्रमत्तसंयम और अप्रमत्तसंयमका (उक्त जीवोंके क्रमशः) आविर्भाव पाया जाता है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ७० ॥

क्योंकि, उपशान्तकषायके मोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ चारित्र पाया जानेसे और शेष तीन उपशामकोंके मोहोपशमके कारणभूत चारित्रसे समन्वित होनेसे औपशमिकभाव पाया जाता है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥७१॥

दर्शनमोहनीयकर्मके क्षपणका प्रारम्भ करनेवाला जीव, अथवा कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव, उपशमश्रेणीपर नहीं चढ़ता है, इस वातका ज्ञान करानेके लिए यह सूत्र कहा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों गुणस्थानोंके क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ७२ ॥

---

१ क्षायिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

२ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः । स. सि. १, ८.

३ क्षायिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

४ शेषाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? मोहणीयस्स खवणहेदुअपुव्वसण्णिदचारित्तसमण्णिदत्तादो मोहक्खएणुप्पण्णचारित्तादो घादिक्खएणुप्पण्णणवकेवललद्धीहिंतो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ७३ ॥

सुगममेदं ।

वेदयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[1] ॥ ७४ ॥

सुगममेदं ।

खओवसमियं सम्मत्तं[2] ॥ ७५ ॥

ओघम्मि असंजदसम्मादिट्ठिस्स तिण्णि भावा सामण्णेण परूविदा, एदं सम्मत्तमोवसमियं खइयं खओवसमियं वेत्ति ण परूविदं। संपहि सम्मत्तमग्गणाए एदं सम्मत्तमोवसमियं खइयं खओवसमियं वेत्ति एदेहि सुत्तेहि जाणाविदं । सेसं सुगमं ।

क्योंकि, अपूर्वकरण आदि तीन क्षपकोंका मोहनीयकर्मके क्षपणके कारणभूत अपूर्वसंज्ञावाले चारित्रसे समन्वित होनेके कारण, क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थके मोहक्षयसे उत्पन्न हुआ चारित्र होनेके कारण, तथा सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके घातिया कर्मोंका क्षय हो जानेसे उत्पन्न नव केवललब्धियोंकी अपेक्षा क्षायिक भाव पाया जाता है।

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है ॥ ७५ ॥

ओघप्ररूपणामें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके सामान्यसे तीन भाव कहे हैं; किन्तु उनका यह सम्यग्दर्शन औपशमिक है, या क्षायिक है, किंवा क्षायोपशमिक है, यह प्ररूपण नहीं किया है। अब सम्यक्त्वमार्गणामें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका यह सम्यग्दर्शन औपशमिकसम्यक्त्वियोंके औपशमिक होता है, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक होता है और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक होता है, यह बात इन सूत्रोंसे सूचित की गई है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

---

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायोपशमिको भावः । स. सि. १, ८.

२ क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[1] ॥ ७६ ॥

अवगयत्थमेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[2] ॥ ७७ ॥

णादट्ठमेयं ।

खओवसमियं सम्मत्तं[3] ॥ ७८ ॥

कुदो ? दंसणमोहोदए संते वि जीवगुणीभूदसद्दहणस्स उप्पत्तीए उवलंभा ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ भावो[4] ॥ ७९ ॥

कुदो ? दंसणमोहुवसमेणुप्पण्णसम्मत्तादो ।

उवसामियं सम्मत्तं[5] ॥ ८० ॥

किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ७६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जाना हुआ है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिकभाव है ॥ ७७ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयके (अंगभूत सम्यक्त्वप्रकृतिके) उदय रहने पर भी जीवके गुणस्वरूप श्रद्धानकी उत्पत्ति पाई जाती है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंका सम्यक्त्व दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८० ॥

---

१ असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन । स. सि. १, ८.

२ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः । स. सि. १, ८,

३ क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

४ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भावः । स. सि. १, ८.

५ औपशमिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[1] ॥ ८१ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[2] ॥ ८२ ॥

सुगममेदं ।

उवसमियं सम्मत्तं[3] ॥ ८३ ॥

एदं पि सुगमं ।

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो, उवसमिओ भावो[4] ॥ ८४ ॥

उवसमियं सम्मत्तं[5] ॥ ८५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[6] ॥ ८६ ॥

किन्तु उपशमसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ८१ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके उपशमसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौनसा भाव है? औपशमिक भाव है ॥ ८४ ॥

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ८६ ॥

---

१ असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन । स. सि. १, ८.

२ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः । स. सि. १, ८.

३ औपशमिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

४ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः । स. सि. १, ८.

५ औपशमिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

६ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भावः । स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ८७ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं[2] ॥ ८८ ॥

तिण्णि वि सुत्ताणि अवगयत्थाणि ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[3] ॥ ८९ ॥

सुगममेदं ।

असण्णि त्ति को भावो, ओदइओ भावो[4] ॥ ९० ॥

कुदो ? णोइंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण असण्णित्तुप्पत्तीदो । असण्णि-गुणट्ठाणभावो किण्ण परूविदो ? ण, उवदेसमंतरेण तदवगमादो[5] ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ८७ ॥

मिथ्यादृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ८८ ॥

इन तीनों ही सूत्रोंका अर्थ ज्ञात है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतराग-छद्मस्थ तक भाव ओघके समान हैं ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ ९० ॥

क्योंकि, नोइन्द्रियावरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे असंज्ञित्व भाव उत्पन्न होता है ।

शंका—यहांपर असंज्ञी जीवोंके गुणस्थानसम्बन्धी भावको क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपदेशके विना ही उसका ज्ञान हो जाता है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिको भावः । स. सि. १, ८.

२ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भावः । स. सि. १, ८.

३ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ असंज्ञिनामौदयिको भावः । स. सि. १, ८.

५ तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ९१ ॥

सुगममेदं ।

अणाहाराणं कम्मइयभंगो[2] ॥ ९२ ॥

एदं पि सुगमं । कम्मइयादो विसेसपदुप्पायणट्ठं उत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ॥ ९३ ॥

सुगममेदं ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता)

एवं भावाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं[3] ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक भाव ओघके समान हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीवोंके भाव कार्मणकाययोगियोंके समान हैं ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कार्मणकाययोगियोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

किन्तु विशेषता यह है कि कार्मणकाययोगी अयोगिकेवली यह कौनसा भाव है? क्षायिक भाव है ॥ ९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार भावानुगमनामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

---

१ आहारानुवादेन आहारकाणां ×× सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ ×× अनाहारकाणां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ भावः परिसमाप्तः । स. सि. १, ८.

अप्पाबहुगाणुगमो



सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

अप्पाबहुगाणुगमो

केवलणाणुज्जोइयलोयालोए जिणे णमंसित्ता ।
अप्पवहुआणिओअं जहोवएसं परूवेमो ॥

अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[1] ॥१॥

तत्थ णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावभेएण अप्पाबहुअं चउव्विहं। अप्पाबहुअसद्दो णामप्पाबहुअं। एदम्हादो एदस्स बहुत्तमप्पत्तं वा एदमिदि एयत्तज्झारोवेण ट्ठविदं ठवणप्पाबहुगं। दव्वप्पाबहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण। अप्पाबहुअपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो

केवलज्ञानके द्वारा लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाले श्री जिनेन्द्र देवोंको नमस्कार करके जिस प्रकारसे उपदेश प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारका प्ररूपण करते हैं ॥

अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना द्रव्य और भावके भेदसे अल्पबहुत्व चार प्रकारका है। उनमेंसे अल्पबहुत्व शब्द नामअल्पबहुत्व है। यह इससे बहुत है, अथवा यह इससे अल्प है, इस प्रकार एकत्वके अध्यारोपसे स्थापना करना स्थापनाअल्पबहुत्व है। द्रव्यअल्पबहुत्व आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। जो अल्पबहुत्व-विषयक प्राभृतको जाननेवाला है, परंतु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व

१ अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते । तत् द्विविधं सामान्येन विशेषेण च । स. सि. १, ८.

आगमदव्वप्पाबहुअं । णोआगमदव्वप्पाबहुअं तिविहं जाणुअसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेदा । तत्थ जाणुअसरीरं भविय-वट्टमाण-समुज्झादमिदि तिविहमवि अवगयत्थं । भवियं भविस्सकाले अप्पाबहुअपाहुडजाणओ । तव्वदिरित्तअप्पाबहुअं तिविहं सचित्तमचित्तं मिस्समिदि । जीवदव्वप्पाबहुअं सचित्तं । सेसदव्वप्पाबहुअमचित्तं । दोण्हं पि अप्पाबहुअं मिस्सं । भावप्पाबहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पाबहुअपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावप्पाबहुअं । णाण-दंसणाणुभाग-जोगादिविसयं णोआगमभावप्पाबहुअं ।

एदेसु अप्पाबहुएसु केण पयदं ? सचित्तदव्वप्पाबहुएण पयदं । किमप्पाबहुअं ? संखाधम्मो, एदम्हादो एदं तिगुणं चदुगुणमिदि बुद्धिगेज्झो । कस्सप्पाबहुअं ? जीवदव्वस्स, धम्मिवदिरित्तसंखाधम्माणुवलंभा । केणप्पाबहुअं ? पारिणामिएण भावेण ।

....

कहते हैं । नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । उनमेंसे भावी, वर्तमान और अतीत, इन तीनों ही प्रकारके ज्ञायकशरीरका अर्थ जाना जा चुका है । जो भविष्यकालमें अल्पबहुत्व-प्राभृतका जाननेवाला होगा, उसे भावी नोआगमद्रव्य अल्पबहुत्वनिक्षेप कहते हैं । तद्व्यतिरिक्त अल्पबहुत्व तीन प्रकारका है- सचित्त, अचित्त और मिश्र । जीवद्रव्य-विषयक अल्पबहुत्व सचित्त है, शेष द्रव्यविषयक अल्पबहुत्व अचित्त है, और इन दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र है । आगम और नोआगमके भेदसे भाव-अल्पबहुत्व दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-प्राभृतका जाननेवाला है और वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त है उसे आगमभाव अल्पबहुत्व कहते हैं । आत्माके ज्ञान और दर्शनको, तथा पुद्गलकर्मोंके अनुभाग और योगादिको विषय करनेवाला नोआगमभाव अल्पबहुत्व है ।

शंका—इन अल्पबहुत्वोंमेंसे प्रकृतमें किससे प्रयोजन है ?

समाधान—प्रकृतमें सचित्त द्रव्यके अल्पबहुत्वसे प्रयोजन है ।

(अब निर्देश, स्वामित्वादि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे अल्पबहुत्वका निर्णय किया जाता है ।)

शंका—अल्पबहुत्व क्या है ?

समाधान—यह उससे तिगुणा है, अथवा चतुर्गुणा है, इस प्रकार बुद्धिके द्वारा ग्रहण करने योग्य संख्याके धर्मको अल्पबहुत्व कहते हैं ।

शंका—अल्पबहुत्व किसके होता है, अर्थात् अल्पबहुत्वका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीवद्रव्यके अल्पबहुत्व होता है, अर्थात् जीवद्रव्य उसका स्वामी है, क्योंकि, धर्मीको छोड़कर संख्याधर्म पृथक् नहीं पाया जाता ।

शंका—अल्पबहुत्व किससे होता है, अर्थात् उसका साधन क्या है ?

समाधान—अल्पबहुत्व पारिणामिक भावसे होता है ।

कत्थप्पाबहुअं ? जीवदव्वे । केवचिरमप्पाबहुअं ? अणादि-अपज्जवसिदं । कुदो ? सव्वेसिं गुणट्ठाणाणमेदेणेव पमाणेण सव्वकालमवट्ठाणादो । कइविहमप्पाबहुअं ? मग्गणभेयभिण्ण-गुणट्ठाणमेत्तं ।

अप्पं च बहुअं च अप्पाबहुआणि । तेसिमणुगमो अप्पाबहुआणुगमो । तेण अप्पाबहुआणुगमेण णिद्देसो दुविहो होदि ओघो आदेसो त्ति । संगहिदवयणकलावो दव्वट्ठियणिबंधणो ओघो णाम । असंगहिदवयणकलाओ पुव्विल्लत्थावयवणिबंधो पज्जवट्ठियणिबंधणो आदेसो णाम ।

ओघेण तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[2] ॥ २ ॥

तिसु अद्धासु त्ति वयणं चत्तारि अद्धाओ पडिसेहट्ठं । उवसमा त्ति वयणं खवयादिपडिसेहफलं । पवेसणेणेत्ति वयणं संचयपडिसेहफलं । तुल्ला त्ति वयणेण विसरिसत्तपडिसेहो कदो । आदिमेसु तिसु गुणट्ठाणेसु उवसामया पवेसणेण तुल्ला सरिसा । कुदो ?

शंका—अल्पबहुत्व किसमें होता है, अर्थात् उसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—जीवद्रव्यमें, अर्थात् जीवद्रव्य अल्पबहुत्वका अधिकरण है ।

शंका—अल्पबहुत्व कितने समय तक होता है ?

समाधान—अल्पबहुत्व अनादि और अनन्त है, क्योंकि, सभी गुणस्थानोंका इसी प्रमाणसे सर्वकाल अवस्थान रहता है ।

शंका—अल्पबहुत्व कितने प्रकारका है ?

समाधान—मार्गणाओंके भेदसे गुणस्थानोंके जितने भेद होते हैं, उतने प्रकारका अल्पबहुत्व होता है ।

अल्प और बहुत्वको अर्थात् हीनता और अधिकताको अल्पबहुत्व कहते हैं । उनका अनुगम अल्पबहुत्वानुगम है । उससे अर्थात् अल्पबहुत्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत है, और जो द्रव्यार्थिकनय-निमित्तक है, वह ओघनिर्देश है । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत नहीं है, जो पूर्वोक्त अर्थावयव अर्थात् ओघानुगममें बतलाये गये भेदोंके आश्रित है और जो पर्यायार्थिकनय-निमित्तक है वह आदेशनिर्देश है ।

ओघनिर्देशसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा अन्य सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं ॥ २ ॥

'तीनों गुणस्थानोंमें' यह वचन चार उपशामक गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए दिया है । 'उपशामक' यह वचन क्षपकादिके प्रतिषेधके लिए दिया है । 'प्रवेशकी अपेक्षा' इस वचनका फल संचयका प्रतिषेध है । 'तुल्य' इस वचनसे विसदृशताका प्रतिषेध किया है । श्रेणीसम्बन्धी आदिके तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी

१ प्रतिषु 'पुव्विल्लद्धा' इति पाठः । मप्रतौ तु स्वीकृतपाठः ।

२ सामान्येन तावत् त्रय उपशमकाः सर्वतः स्तोकाःस्वगुणस्थानकालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः । स. सि. १, ८.

एआदिचउवण्णमेत्तजीवाणं पवेसं पडि पडिसेहाभावा । ण च[1] सव्वद्धं तिसु उवसामगेसु पविसंतजीवेहि सरिसत्तणियमो, संभवं पडुच्च सरिसत्तउत्तीदो । एदेसिं संचओ सरिसो असरिसो त्ति वा किण्ण परूविदो? ण एस दोसो, पवेससारिच्छेण तेसिं संचयसारिच्छस्स वि अवगमादो । पविस्समाणजीवाणं विसरिसत्ते संते संचयस्स विसरिसत्तं, अण्णहा[2] दिट्ठविरोहादो । अपुव्वादिअद्धाणं थोव-बहुत्तादो विसरिसत्तं संचयस्स किण्ण होदि त्ति पुच्छिदे ण होदि, तिण्हमुवसामगाणमद्धाहिंतो उक्कस्सपवेसंतरस्स बहुत्तुवदेसादो । तम्हा तिण्हं संचओ वि सरिसो चेय । थोवा उवरि उच्चमाणगुणट्ठाणाण संखं पेक्खिय थोवा त्ति भणिदा ।

अपेक्षा तुल्य अर्थात् सदृश होते हैं, क्योंकि, एकसे लेकर चौपन मात्र जीवोंके प्रवेशके प्रति कोई प्रतिषेध नहीं है। किन्तु सर्वकाल तीनों उपशामकोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा सदृशताका नियम नहीं है, क्योंकि, संभावनाकी अपेक्षा सदृशताका कथन किया गया है।

शंका—इन तीनों उपशामकोंका संचय सदृश होता है, या असदृश होता है, इस बातका प्ररूपण क्यों नहीं किया?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, प्रवेशकी सदृशतासे उनके संचयकी सदृशताका भी ज्ञान हो जाता है। प्रविश्यमान जीवोंकी विसदृशता होने पर ही संचयकी विसदृशता होती है; यदि ऐसा न माना जाय तो प्रत्यक्षसे विरोध आता है।

शंका—अपूर्वकरण आदिके कालोंमें परस्पर अल्पबहुत्व होनेसे संचयके विसदृशता क्यों नहीं हो जाती है?

समाधान—ऐसी आशंकापर आचार्य उत्तर देते हैं कि अपूर्वकरण आदिके कालके हीनाधिक होनेसे संचयके विसदृशता नहीं होती है, क्योंकि, तीनों उपशामकोंके कालोंसे उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है ऐसा उपदेश पाया जाता है। इसलिए तीनोंका संचय भी सदृश ही होता है।

विशेषार्थ—यहां पर शंकाकारने यह शंका उठाई है कि जब अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, अर्थात् अपूर्वकरणका जितना काल है, उससे संख्यातगुणा हीन अनिवृत्तिकरणका काल है और उससे संख्यातगुणा हीन सूक्ष्मसाम्परायका काल है, तब इन गुणस्थानोंमें संचित होनेवाली जीवराशिका प्रमाण भी हीनाधिक ही होना चाहिए, सदृश नहीं होना चाहिए? इसके समाधानमें यह कहा गया है कि तीनों उपशामकोंके कालोंसे उत्कृष्ट प्रवेशान्तरके बहुत होनेका उपदेश पाया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, तथापि वह प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त या असंख्यात समयप्रमाण है। किन्तु इन गुणस्थानोंमें प्रवेश कर संचित होनेवाले जीव संख्यात अर्थात् उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन

१ प्रतिषु 'पडिसेहाभावाणं च' इति पाठः। २ प्रतिषु 'णण्णहा' इति पाठः।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेय[1] ॥ ३ ॥

पुधसुत्तारंभो किमट्ठो? उवसंतकसायस्स कसाउवसामगाणं च पच्चासत्तीए अभावस्स संदंसणफलो। जेसिं पच्चासत्ती अत्थि तेसिमेगजोगो, इदरेसिं भिण्णजोगो होदि त्ति एदेण जाणाविदं।

खवा संखेज्जगुणा[2] ॥ ४ ॥

कुदो? उवसामगगुणट्ठाणमुक्कस्सेण पविस्समाणचउवण्णजीवेहिंतो खवगेगगुण-

---

सौ चार (३०४) और क्षपकश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सौ आठ (६०८) ही होते हैं। यदि सर्वजघन्य प्रमाणकी भी अपेक्षासे एक समयमें एक ही जीवका प्रवेश माना जाय, तो भी प्रत्येक गुणस्थानके प्रवेशकालके समय संख्यात अर्थात् उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन सौ चार और क्षपकश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सौ आठ ही होंगे। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि उपशम या क्षपकश्रेणीमें निरन्तर प्रवेश करनेका सर्वोत्कृष्ट काल आठ समय ही है। इससे ऊपर जितना भी प्रवेशकाल है, वह सब सान्तर ही है। इससे यह अर्थ निकलता है कि अपूर्वकरणादि गुणस्थानोंमें प्रवेशान्तर अर्थात् जीवोंके प्रवेश नहीं करनेका काल असंख्यात समयप्रमाण है। चूंकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानसे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है इसलिए उसके प्रवेशान्तरका उत्कृष्ट काल भी संख्यातगुणा ही होगा। इसी प्रकार चूंकि अनिवृत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है, अतः उसके प्रवेशान्तरका काल भी संख्यातगुणा ही होगा। इसका यही निष्कर्ष निकलता है कि तीनों उपशामकोंके कालोंसे तीनोंके उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है, अर्थात् प्रवेश करनेके समय सदृश हैं, अतएव उनका संचय भी सदृश ही होता है।

उपर्युक्त जीव आगे कही जानेवाली गुणस्थानोंकी संख्याको 'देखकर अल्प हैं' ऐसा कहा है।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३ ॥

शंका—पृथक् सूत्रका प्रारम्भ किस लिये किया है?

समाधान—उपशान्तकषायका और कषायके उपशम करनेवाले उपशामकोंकी परस्पर प्रत्यासत्तिका अभाव दिखाना इसका फल है। जिनकी प्रत्यासत्ति पाई जाती है उनका ही एक योग, अर्थात् एक समास हो सकता है और दूसरोंका भिन्न योग होता है, यह बात इस सूत्रसे सूचित की गई है।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ ४ ॥

क्योंकि, उपशामकके गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चौपन जीवोंकी

---

१ उपशान्तकषायास्तावन्त एव। स. सि. १, ८.

२ त्रयः क्षपकाः संख्येयगुणाः। स. सि. १, ८.

मुक्कस्सेण पविस्समाणअट्ठुत्तरसदजीवाणं दुगुणत्तुवलंभा, पंचूण-चदुरुत्तरतिसदमेत्तेगुव-सामगगुणट्ठाणुक्कस्ससंचयादो वि खवगेगगुणट्ठाणुक्कस्ससंचयस्स दुरूऊणछस्सद-मेत्तस्स दुगुणत्तदंसणादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव[1] ॥ ५ ॥

पुधसुत्तारंभस्स कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । सेसं सुगमं ।

सजोगकेवली अजोगकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव[2] ॥ ६ ॥

घाइयघादिकम्माणं छदुमत्थेहि पच्चासत्तीए अभावादो पुधसुत्तारंभो जादो । पवेसणेण तेत्तिया चेवेत्ति उत्ते पवेस-संचएहि अट्ठुत्तरसददुरूऊणछस्सदमेत्ता कमेण होंति त्ति घेत्तव्वं । दो वि तुल्ला त्ति उत्ते दो वि अण्णोण्णेण सरिसा त्ति भणिदं होदि । अजोगिकेवलिसंचओ पुव्विल्लगुणट्ठाणसंचएहि सरिसो जधा, तधा सजोगिकेवलि-संचयस्स वि सरिसत्ती । विसरिसत्तपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एकसौ आठ जीवोंके दुगुणता पाई जाती है । तथा संचयकी अपेक्षा उपशामकके एक गुणस्थानमें उत्कृष्टरूपसे पांच कम तीनसौ चार अर्थात् दो सौ निन्यानवे (२९९) संचयसे भी क्षपकके एक गुणस्थानको दो कम छह सौ (५९८) रूप संचयके दुगुणता देखी जाती है ।

क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५ ॥

पृथक् सूत्र बनानेका कारण पहलेके समान कहना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण हैं ॥ ६ ॥

घाति-कर्मोंका घात करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीकी छद्मस्थ जीवोंके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे पृथक् सूत्र बनाया गया है । प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, ऐसा कहनेपर प्रवेशसे एक सौ आठ (१०८) और संचयसें दो कम छह सौ अर्थात् पांच सौ अट्ठानवे (५९८) क्रमसे होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । दोनों ही तुल्य हैं; ऐसा कहनेसे दोनों ही परस्पर समान हैं, ऐसा अर्थ सूचित होता है । जिस प्रकार अयोगिकेवलीका संचय पूर्व गुणस्थानोंके संचयके सदृश होता है, उसी प्रकार सयोगिकेवलीके संचयके भी सदृशताकी प्राप्ति होती है, अतएव उनके संचयकी विसदृशताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

---

१ क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थास्तावन्त एव । स. सि. १, ८.

२ सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन तुल्यसंख्याः । स. सि. १, ८.

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा[1] ॥ ७ ॥

कुदो ? दुरूवूणछस्सदमेत्तजीवेहिंतो अट्ठलक्ख-अट्ठाणउदिसहस्स-दुरहियपंचसद-मेत्तजीवाणं संखेज्जगुणत्तुवलंभा। हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिं छेत्तूण गुणयारो उप्पादेदव्वो।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा[2] ॥ ८ ॥

खवगुवसामगअप्पमत्तसंजदपडिसेहो किमट्ठं कीरदे ? ण, अप्पमत्तसामण्णेण तेसिं पि गहणप्पसंगा। सजोगिरासिणा वेकोडि-छण्णउदिलक्ख-णवणउइसहस्स-तिउत्तर-सदमेत्तअप्पमत्तरासिम्हि भागे हिदे जं लद्धं सो गुणगारो होदि।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[3] ॥ ९ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि। कुदो णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो।

सयोगिकेवली कालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ७ ॥

क्योंकि, दो कम छह सौ, अर्थात् पांच सौ अट्ठानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ लाख, अट्ठानवे हजार पांच सौ दो संख्याप्रमाण जीवोंके संख्यातगुणितता पाई जाती है। यहां पर अधस्तनराशिसे उपरिम राशिको छेदकर (भाग देकर) गुणकार उत्पन्न करना चाहिए।

सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-गुणित हैं ॥ ८ ॥

शंका—यहांपर क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किस लिए किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'अप्रमत्त' इस सामान्य पदसे उनके भी ग्रहणका प्रसंग आता है, इसलिए क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किया गया है। सयोगिकेवलीकी राशिसे दो करोड़ छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन संख्या-प्रमाण अप्रमत्तसंयतोंकी राशिमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, वह यहां पर गुणकार होता है।

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ९ ॥

गुणकार क्या है ? दो संख्या गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य-परम्पराके द्वारा आये हुये उपदेशसे जाना जाता है।

१ सयोगकेवलिनः स्वकालेन समुदिताः संख्येयगुणाः। (८९८५०२)। स. सि. १, ८.

२ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः (२९६९९१०३)। स. सि. १, ८.

३ प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः (५९३९८२०६)। स. सि. १, ८.

पुव्वुत्तअप्पमत्तरासिणा पंचकोडि-तिण्णउइलक्ख-अट्ठाणउइसहस्स-छब्भहियदोसदमेत्तम्हि पमत्तरासिम्हि भागे हिदे जं भागलद्धं सो गुणगारो ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[1] ॥ १० ॥

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तत्तादो । माणुसखेत्तब्भंतरे चेय संजदासंजदा होंति, णो बहिद्धा; भोगभूमिम्हि संजमासंजमभावविरोहा । ण च माणुसखेत्तब्भंतरे असंखेज्जाणं संजदासंजदाणमत्थि संभवो, तेत्तियमेत्ताणमेत्थावट्ठाणविरोहा । तदो संखेज्जगुणेहि संजदासंजदेहि होदव्वमिदि ? ण, सयंपहपव्वदपरभागे असंखेज्जजोयणवित्थडे कम्मभूमिपडिभाए तिरिक्खाणमसंखेज्जाणं संजमासंजमगुणसहिदाणमुवलंभा । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । को पडिभागो ? अंतोमुहुत्तगुणिदपमत्तसंजदरासी पडिभागो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[3] ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त अप्रमत्तराशिसे पांच करोड़ तिरानवे लाख, अट्ठानवे हजार, दो सौ छह संख्याप्रमाण प्रमत्तसंयतराशिमें भाग देनेपर जो भाग लब्ध आवे, वह यहांपर गुणकार है ।

प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ १० ॥

क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका—संयतासंयत मनुष्यक्षेत्रके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि, भोगभूमिमें संयमासंयमके उत्पन्न होनेका विरोध है । तथा मनुष्यक्षेत्रके भीतर असंख्यात संयतासंयतोंका पाया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि, उतने संयतासंयतोंका यहां मनुष्यक्षेत्रके भीतर अवस्थान माननेमें विरोध आता है । इसलिए प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजन विस्तृत एवं कर्मभूमिके प्रतिभागरूप स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें संयमासंयम गुणसहित असंख्यात तिर्यंच पाये जाते हैं ।

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? अन्तर्मुहूर्तसे प्रमत्तसंयतराशिको गुणित करनेपर जो लब्ध आवे, वह प्रतिभाग है ।

संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११ ॥

---

१ संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु '-मेत्ता-' इति पाठः ।

३ सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

कुदो ? तिविहसम्मत्तट्ठिदसंजदासंजदेहिंतो एगुवसमसम्मत्तादो सासणगुणं पडिवज्जिय छसु आवलियासु संचिदजीवाणमसंखेज्जगुणत्तुवदेसादो। तं पि कधं णव्वदे ? एगसमयम्हि संजमासंजमं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो एक्कसमयम्हि चेव सासणगुणं पडिवज्जमाणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तदंसणादो। तं पि[1] कुदो ? अणंतसंसारविच्छेयहेउसंजमासंजमलंभस्स अइदुल्लभत्तादो। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिम्हि भागे हिदे गुणगारो आगच्छदि, उवरिमरासिअवहारकालेण हेट्ठिमरासिअवहारकाले भागे हिदे गुणगारो होदि, उवरिमरासिअवहारकालगुणिदहेट्ठिमरासिणा पलिदोवमे भागे हिदे गुणगारो होदि। एवं तीहि पयारेहि गुणयारो समाणभज्जमाणरासीसु सव्वत्थ साहेदव्वो। णवरि हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिम्हि भागे हिदे गुणगारो आगच्छदि त्ति एदं समाणासमाणभज्जमाणरासीणं साहारणं, दोसु वि एदस्स पउत्तीए बाहाणुवलंभा।

क्योंकि, तीन प्रकारके सम्यक्त्वके साथ स्थित संयतासंयतोंकी अपेक्षा एक उपशमसम्यक्त्वसे सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलियोंसे संचित जीव असंख्यातगुणित हैं, ऐसा उपदेश पाया जाता है।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—एक समयमें संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे एक समयमें ही सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित देखे जाते हैं।

शंका—इसका भी कारण क्या है ?

समाधान—क्योंकि, अनन्त संसारके विच्छेदका कारणभूत संयमासंयमका पाना अतिदुर्लभ है।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। अधस्तनराशिसे उपरिमराशिमें भाग देनेपर गुणकारका प्रमाण आता है। अथवा, उपरिमराशिके अवहारकालसे अधस्तनराशिके अवहारकालमें भाग देनेपर गुणकार होता है। अथवा, उपरिमराशिके अवहारकालसे अधस्तनराशिको गुणित करके जो लब्ध आवे उसका पल्योपममें भाग देनेपर गुणकार आता है। ऐसे इन तीन प्रकारोंसे समान भज्यमान राशियोंमें सर्वत्र गुणकार साधित कर लेना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि अधस्तनराशिका उपरिमराशिमें भाग देनेपर गुणकार आता है, यह नियम समान और असमान, दोनों भज्यमान राशियोंमें साधारण है, क्योंकि, उक्त दोनों राशियोंमें भी इस नियमकी प्रवृत्ति होनेमें बाधा नहीं पाई जाती है।

१ प्रतिषु 'तं हि' इति पाठः।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[1] ॥ १२ ॥

एदस्सत्थो उच्चदे– सम्मामिच्छादिट्ठिअद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ता, सासणसम्मादिट्ठि-अद्धा वि छावलियमेत्ता। किंतु सासणसम्मादिट्ठिअद्धादो सम्मामिच्छाइट्ठिअद्धा संखेज्ज-गुणा। संखेज्जगुणद्धाए उवक्कमणकालो वि सासणद्धावक्कमणकालादो संखेज्जगुणो उवक्कमणविरोहा विरहकालाणमुहयत्थ साधम्मादो। तेण दोगुणट्ठाणाणि पडिवज्जमाण-रासी जदि वि सरिसो, तो वि सासणसम्मादिट्ठीहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा होंति। किंतु सासणगुणमुवसमसम्मादिट्ठिणो चेय पडिवज्जंति, सम्मामिच्छत्तगुणं पुण वेदगुवसमसम्मादिट्ठिणो अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिणो य पडिवज्जंति। तेण सासणं पडिवज्जमाणरासीदो[2] सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासी संखेज्जगुणो। तदो संखेज्ज-गुणायादो संखेज्जगुणउवक्कमणकालादो च सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्ज-गुणा, उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो वेदगसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा, 'कारणाणुसारिणा कज्जेण होदव्वमिदि' णायादो। सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा किण्ण होंति त्ति उत्ते ण होंति, अणेयणिग्गमादो। जदि तेहि पडिवज्जमाणगुणट्ठाणमेक्कं[3] चेव होदि,

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है और सासादनसम्यग्दृष्टिका काल भी छह आवलीप्रमाण है, किन्तु फिर भी सासादन-सम्यग्दृष्टिके कालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल संख्यातगुणा है। संख्यातगुणित कालका उपक्रमणकाल भी सासादनके कालके उपक्रमणकालसे संख्यातगुणा है। अन्यथा उपक्रमण-कालमें विरोध आजायगा, क्योंकि, विरहकाल दोनों जगह समान है। इसलिए इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाली राशि यद्यपि समान है तो भी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं। किन्तु सासादन गुणस्थानको उपशमसम्यग्दृष्टि ही प्राप्त होते हैं, परन्तु सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीव भी प्राप्त होते हैं। इसलिये सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली राशि संख्यातगुणी है। अतः संख्यातगुणी आय होनेसे और संख्यातगुणा उपक्रमणकाल होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं। उपशम-सम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, 'कारणके अनुसार कार्य होता है' ऐसा न्याय है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित क्यों नहीं होते हैं, ऐसा पूछने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं होते हैं, क्योंकि, निर्गमके अर्थात् जानेके मार्ग अनेक हैं। यदि वेदकसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा प्राप्त किया

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'पडिमाणरासीदो' इति पाठः।

३ प्रतिषु 'मेत्तं' इति पाठः।

तो एस ण्णाओ वोत्तुं[1] जुत्तो। किंतु वेदगसम्मादिट्ठिणो मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं च पडिवज्जंति, सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणेहिंतो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणवेदगसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा, तेण पुव्वुत्तं ण घडदे इदि। ण चासंखेज्जगुणरासिवओ अण्णरासिमवेक्खियं होदि, तस्स अप्पणो आयाणुसरणसहावत्तादो। एदमेवं चेव होदि त्ति कधं णव्वदे? सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा त्ति सुत्तण्णहाणुववत्तीदो णव्वदे।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[2] ॥ १३ ॥

को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। सम्मामिच्छादिट्ठिरासी अंतोमुहुत्तसंचिदो, असंजदसम्मादिट्ठिरासी पुण वेसागरोवमसंचिदो। सम्मामिच्छादिट्ठिअद्धादो वेसागरोवमकालो पलिदोवमासंखेज्जदिभागगुणो। सम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालादो वि असंजदसम्मादिट्ठिउवक्कमणकालो[3] पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागगुणो, उवक्कमणकालस्स अद्धाणुसारित्तदंसणादो। तेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणगारेण होदव्वमिदि? ण, असंजदसम्मादिट्ठिरासिस्स असंखेज्जपलिदोवमप्पमाणप्पसंगा। तं

जानेवाला गुणस्थान एक ही हो, तो यह न्याय कहने योग्य है। किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं; इसलिए पूर्वोक्त कथन घटित नहीं होता है। दूसरी बात यह है कि असंख्यातगुणी राशिका व्यय अन्य राशिकी अपेक्षासे नहीं होता है, क्योंकि, वह अपने आयके अनुसार व्ययशील स्वभाववाला होता है।

शंका—यह इसी प्रकार होता है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, यह सूत्र अन्यथा बन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३ ॥

गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि राशि अन्तर्मुहूर्त-संचित है और असंयतसम्यग्दृष्टि राशि दो सागरोपम-संचित है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे दो सागरोपमकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग गुणितप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उपक्रमणकालसे भी असंयतसम्यग्दृष्टिका उपक्रमणकाल पल्योपमके संख्यातवें भागगुणित है, क्योंकि, उपक्रमणकाल गुणस्थानकालके अनुसार देखा जाता है। इसलिए पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार होना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, गुणकारको पल्योपमके असंख्यातवें भाग मानने पर असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको असंख्यात पल्योपमप्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा।

१ प्रतिपु 'जोत्तुं' इति पाठः। २ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। स. सि. १, ८.
३ म २ प्रतौ '-दो वि असंजदसम्मादिट्ठि-उवक्कमणकालो' इति पाठो नास्ति।

जधा– ' एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति[1] ' दव्वाणिओगद्दारसुत्तादो णव्वदि जधा पलिदोवममंतोमुहुत्तेण खंडिदेयखंडमेत्ता सम्मामिच्छादिट्ठिणो होंति त्ति । पुणो एदं रासिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदे असंखेज्जपलिदोवममेत्तो[2] असंजदसम्मादिट्ठिरासी होदि । ण चेदं, एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहा । कधं पुण आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणगारस्स सिद्धी ? उच्चदे– सम्मामिच्छादिट्ठिअद्धादो तप्पाओग्गअसंखेज्जगुणद्धाए संचिदो असंजदसम्मादिट्ठिरासी घेत्तव्वो, एदिस्से अद्धाए सम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालादो असंखेज्जगुण-उवक्कमणकालुवलंभा । एत्थ संचिद-असंजदसम्मादिट्ठिरासीए वि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तो होदि । अधवा दोण्हं उवक्कमणकाला जदि वि सरिसा होंति त्ति तो वि सम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो असंजदसम्मादिट्ठी आवलियाए संखेज्जभागगुणा । कुदो ? सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासीदो सम्मत्तं पडिवज्जमाणरासिस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा[3] ॥ १४ ॥

उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– इन सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है, इस द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रसे जाना जाता है कि पल्योपमको अन्तर्मुहूर्तसे खंडित करने पर एक खंडप्रमाण सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं । पुनः इस राशिको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर असंख्यात पल्योपमप्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिराशि होती है । परंतु यह ठीक नहीं है, क्योंकि, ' इन गुणस्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है ' इस सूत्रके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है ।

शंका—फिर आवलीके असंख्यातवें भागरूप गुणकारकी सिद्धि कैसे होती है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे उसके योग्य असंख्यातगुणित कालसे संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस कालका सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उपक्रमणकालसे असंख्यातगुणा उपक्रमणकाल पाया जाता है । यहां पर संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि भी आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र है । अथवा, दोनोंके उपक्रमणकाल यद्यपि सदृश होते हैं, तो भी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव आवलीके संख्यात भागगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असंख्यातवें भागगुणित है ।

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४ ॥

१ दव्वाणु. ६. (भा. ३ पृ. ६३.)

२ अ-कप्रत्योः ' -पलिदोवमेत्तो ' इति पाठः ।

३ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । स. सि. १, ८. प्रतिषु ' अणंतगुणो ' इति पाठः

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमाणंतियादो । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि । को पडिभागो ? असंजदसम्मादिट्ठी पडिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १५ ॥

संजदासंजदादिट्ठाणपडिसेहट्ठं असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणवयणं । उवरिमुच्चमाणरासि-अवेक्खं सव्वत्थोववयणं । सेससम्मादिट्ठिपडिसेहट्ठमुवसमसम्मादिट्ठिवयणं ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६ ॥

उवसमसम्मत्तादो खइयसम्मत्तमइदुल्लहं, दंसणमोहणीयक्खएण उक्कस्सेण छम्मास-मंतरिय उक्कस्सेण अट्ठुत्तरसदमेत्ताणं चेव उप्पज्जमाणत्तादो । खइयसम्मत्तादो उवसम-सम्मत्तमइसुलहं, सत्तरादिंदियाणि अंतरिय एगसमएण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तजीवेसु तदुप्पत्तिदंसणादो । तदो खइयसम्मादिट्ठीहिंतो उवसमसम्मादिट्ठीहिं असंखेज्ज-गुणेहि होदव्वमिदि ? सच्चमेदं, किंतु संचयकालमाहप्पेण उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो खइय-

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अनन्त होते हैं ।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

शंका—प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका प्रमाण प्रतिभाग है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५ ॥

संयतासंयत आदि गुणस्थानोंका निषेध करनेके लिये सूत्रमें 'असंयतसम्यग्दृष्टि-स्थान' यह वचन दिया है। आगे कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा 'सबसे कम' यह वचन दिया है। शेष सम्यग्दृष्टियोंका प्रतिषेध करनेके लिये 'उपशमसम्यग्दृष्टि' यह वचन दिया है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६ ॥

शंका—उपशमसम्यक्त्वसे क्षायिकसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है, क्योंकि, दर्शन-मोहनीयके क्षयद्वारा उत्कृष्ट छह मासके अंतरालसे अधिकसे अधिक एकसौ आठ जीवोंकी ही उत्पत्ति होती है। परंतु क्षायिकसम्यक्त्वसे उपशमसम्यक्त्व अतिसुलभ है, क्योंकि, सात रात-दिनके अंतरालसे एक समयमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित जीवोंमें उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु संचयकालके माहात्म्यसे उपशमसम्य-

सम्माइट्ठिणो असंखेज्जगुणा जादा। तं जहा– उवसमसम्मत्तद्धा उक्कस्सिया वि अंतोमुहुत्तमेत्ता चेय। खइयसम्मत्तद्धा पुण जहण्णिया अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सिया दोपुव्वकोडि-अब्भहियतेत्तीससागरोवममेत्ता। तत्थ मज्झिमकालो दिवड्ढपलिदोवममेत्तो। एत्थ अंतोमुहुत्तमंतरिय संखेज्जोवक्कमणसमएसु घेप्पमाणेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तोवक्कमणकालो लब्भइ। एदेण कालेण संचिदजीवा वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेत्ता होदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण समयं पडि उवक्कंत-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवेण संचिदउवसमसम्मादिट्ठीहिंतो असंखेज्जगुणा होंति। ण सेसवियप्पा संभवंति, ताणमसंखेज्जगुणसुत्तेण सह विरोहा।

एत्थ चोदओ भणदि– आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तंतरेण खइयसम्मादिट्ठीण सोहम्मे जइ संचओ कीरदि पवेसाणुसारिणिग्गमादो मणुसेस्सु असंखेज्जा खइयसम्मा-दिट्ठिणो पावेंति। अह संखेज्जावलियंतरेण ट्ठिदिसंचओ कीरदि, तो संखेज्जावलियाहि पलिदोवमे खंडिदे एयक्खंडमेत्ता खइयसम्मादिट्ठिणो पावेंति। ण च एवं, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारब्भुवगमादो। तदो दोहि वि पयारेहि दोसो चेय ढुक्कदि

ग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हो जाते हैं। वह इस प्रकार है– उपशम-सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है। परन्तु क्षायिकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण है। उसमें मध्यम काल डेढ़ पल्योपमप्रमाण है। यहां पर अन्तर्मुहूर्तकालको अन्तरित करके उपक्रमणके संख्यात समयोंके ग्रहण करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उप-क्रमणकाल प्राप्त होता है। इस उपक्रमणकालके द्वारा संचित हुए जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो करके भी आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालके द्वारा प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंसे संचित हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणित होते हैं। यहां शेष विकल्प संभव नहीं हैं, क्योंकि, उन विकल्पोंका असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें 'उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं' इस सूत्रके साथ विरोध आता है।

शंका—यहां पर शंकाकार कहता है कि आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अन्तरसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका सौधर्म स्वर्गमें यदि संचय किया जाता है तो प्रवेशके अनुसार निर्गम होनेसे अर्थात् आयके अनुसार व्यय होनेसे मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं। और यदि संख्यात आवलियोंके अन्तरालसे स्थितिका संचय करते हैं तो संख्यात आवलियोंसे पल्योपमके खंडित करने पर एक खंडमात्र क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्राप्त होते हैं। परंतु ऐसा है नहीं, क्योंकि, आवलिके असंख्यातवें भागमात्र भागहार स्वीकार किया गया है। इसलिए दोनों प्रकारोंसे भी दोष ही प्राप्त होता है?

त्ति ? ण एस दोसो, खइयसम्मादिट्ठीणं पमाणागमणट्ठं पलिदोवमस्स संखेज्जावलियमेत्त-भागहारस्स जुत्तीए उवलंभादो। तं जहा– अट्ठसमयब्भहियछम्मासब्भंतरे जदि संखेज्जुवक्कमणसमया लब्भंति, तो दिवड्ढपलिदोवमब्भंतरे किं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदिच्छाए ओवट्टिदाए उवक्कमणकालो लब्भदि। तम्मि संखेज्जजीवेहि गुणिदे संखेज्जावलियाहि ओवट्टिदपलिदोवममेत्ता खइयसम्मादिट्ठिणो लब्भंति। तेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो भागहारो त्ति ण घेत्तव्वो। उवक्कमणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागे संते एदं ण घडदि त्ति णासंकणिज्जं, मणुसेसु खइयसम्मादिट्ठीणं असंखेज्जाणमत्थित्तप्पसंगादो। एवं संते सासणादीणमसंखेज्जावलियाहि भागहारेण होदव्वं ? ण एस दोसो, इट्ठत्तादो। ण अण्णेसिमाइरियाणं वक्खाणेण विरुद्धं ति एदस्स वक्खाणस्स अभद्दत्तं, सुत्तेण सह अविरुद्धस्स अभद्दत्तविरोहादो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति सुत्तेण वि ण विरोहो, तस्स उवयारणिबंधणत्तादो।

....

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाण लानेके लिए पल्योपमका संख्यात आवलिमात्र भागहार युक्तिसे प्राप्त हो जाता है। जैसे– आठ समय अधिक छह मासके भीतर यदि संख्यात उपक्रमणके समय प्राप्त होते हैं, तो डेढ पल्योपमके भीतर कितने समय प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर प्रमाणराशिसे फलराशिको गुणित करके और इच्छाराशिसे भाजित कर देने पर उपक्रमणकाल प्राप्त होता है। उसे संख्यात जीवोंसे गुणित कर देने पर पल्योपममें संख्यात आवलियोंका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं। इसलिए यहां आवलीका असंख्यातवां भाग भागहार है, ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिए।

उपक्रमणकालका अन्तर आवलीका असंख्यातवां भाग होने पर उपर्युक्त व्याख्यान घटित नहीं होता है, ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि, ऐसा मानने पर मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अस्तित्वका प्रसंग आता है।

शंका—यदि ऐसा है तो सासादनसम्यग्दृष्टि आदिके असंख्यात आवलियां भागहार होना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, वह इष्ट ही है।

तथा, यह व्याख्यान अन्य आचार्योंके व्याख्यानसे विरुद्ध है, इसलिये इस-व्याख्यानके अभद्रता (अयुक्ति-संगतता) भी नहीं है, क्योंकि, इस व्याख्यानका सूत्रके साथ विरोध नहीं है, इसलिये उसके अभद्रताके माननेमें विरोध आता है। 'इन राशियोंके प्रमाणकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है' इस द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रके साथ भी उक्त व्याख्यानका विरोध नहीं आता है, क्योंकि, वह सूत्र उपचार-निमित्तक है।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पण्णखइयसम्मत्तादो खओवसमियवेदगसम्मत्तस्स सुट्ठु सुलहत्तुवलंभा। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कुदो ? ओघसोहम्म-असंजदसम्मादिट्ठिभागहारस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी॥ १८ ॥

कुदो ? अणुव्वयसहिदखइयसम्मादिट्ठीणमइदुल्लभत्तादो। ण च तिरिक्खेसु खइयसम्मत्तेण सह संजमासंजमो लब्भदि, तत्थ दंसणमोहणीयक्खवणाभावा। तं पि कुदो णव्वदे ? 'णियमा मणुसगदीए' इदि सुत्तादो[1]। जे वि पुव्वं बद्धतिरिक्खाउआ मणुसा तिरिक्खेसु खइयसम्मत्तेणुप्पज्जंति, तेसिं ण संजमासंजमो अत्थि, भोगभूमिं मोत्तूण अण्णत्थुप्पत्तीए असंभवादो। तेण खइयसम्मादिट्ठिणो संजदासंजदा संखेज्जा चेय,

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वका पाना अति सुलभ है।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, सामान्यसे सौधर्मस्वर्गके असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भागहार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, अणुव्रतसहित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका होना अत्यन्त दुर्लभ है। तथा तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम पाया नहीं जाता है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीव नियमसे मनुष्यगतिमें होते हैं' इस सूत्रसे जाना जाता है।

तथा जिन्होंने पहले तिर्यंचायुका बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्वके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि, भोगभूमिको छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है। इसलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, संयमासंयमके साथ क्षायिकसम्यक्त्व

१ दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु। णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥ १॥ कसायपाहुडे, खवणाहियारे. १.

मणुसपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थाभावा । अदो चेय भणिस्समाणासंखेज्जरासीहिंतो थोवा ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । को पडिभागो ? खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदमेत्तसंखेज्जरूवपडिभागो । कुदो ? असंखेज्जावलियाहि पलिदोवमे खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्ताणमुवसमसम्मत्तेण सह संजदासंजदाणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एसो उवसमसम्मादिट्ठिउक्कस्ससंचयादो वेदगसम्मादिट्ठिउक्कस्ससंचयस्स सांतरस्स[1] गुणगारो, अण्णहा पुण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो, उवसमसम्मादिट्ठिरासिस्स सांतरस्स कयाइ एगजीवस्स वि उवलंभा । वेदगसम्मादिट्ठिरासी पुण सव्वकालं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो चेय, णिरंतरस्स समाणायव्वयस्स अण्णरूवावत्तिविरोहा ।

पर्याप्त मनुष्योंको छोड़कर दूसरी गतिमें नहीं पाया जाता है । और इसीलिये संयतासंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि आगे कही जानेवाली असंख्यात राशियोंसे कम होते हैं ।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ १९ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंकी जितनी संख्या है तत्प्रमाण संख्यातरूप प्रतिभाग है, क्योंकि, असंख्यात आवलियोंसे पल्योपमके खंडित करने पर उनमेंसे एक खंड मात्र उपशमसम्यक्त्वके साथ संयतासंयत जीव पाये जाते हैं ।

संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट संचयसे वेदकसम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट सान्तर संचयका यह गुणकार है । अन्यथा पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार होता है, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टिराशि सान्तर है, इसलिए कदाचित् एक जीवकी भी उपलब्धि होती है । परंतु वेदकसम्यग्दृष्टिराशि सर्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही रहती है, क्योंकि, जिस राशिका आय और व्यय समान है और जो अन्तर-रहित है, उसको अन्यरूप माननेमें विरोध आता है ।

---

१ 'सांतरस्स' इति पाठः केवलं म. १ प्रतौ अस्ति, अन्यप्रतिषु नास्ति ।

पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २१ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तद्धासंचयादो, उवसमसम्मत्तेण सह पाएण संजमं पडिवज्जंताणमभावादो च।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २२ ॥

अंतोमुहुत्तेण संचिदउवसमसम्मादिट्ठीहिंतो देसूणपुव्वकोडीसंचिदखइयसम्मादिट्ठीणं संखेज्जगुणत्तं पडि विरोहाभावा। को गुणगारो ? संखेज्जा समया।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २३ ॥

कुदो ? खइयादो खओवसमियस्स सम्मत्तस्स पाएण संभवा। को गुणगारो ? संखेज्जा समया।

एवं तिसु वि अद्धासु ॥ २४ ॥

जधा पमत्तापमत्तसंजदाणं सम्मत्तप्पाबहुअं परूविदं, तहा तिसु उवसामगद्धासु परूवेदव्वं। तं जहा– सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी। खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २१ ॥

क्योंकि, एक तो उपशमसम्यग्दृष्टियोंके संचयका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है, और दूसरे उपशमसम्यक्त्वके साथ बहुलतासे संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२ ॥

अन्तर्मुहूर्तसे संचित होनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि कालसे संचित होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके संख्यातगुणित होनेमें कोई विरोध नहीं है। गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिकसम्यक्त्वका होना अधिकतासे सम्भव है। गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २४ ॥

जिस प्रकार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार आदिके तीन उपशामक गुणस्थानोंमें भी प्ररूपण करना चाहिए। वह इस प्रकार है– तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उनसे

कारणं, दव्वाहियत्तादो। वेदगसम्मादिट्ठी णत्थि, तेण सह उवसमसेडीआरोहणाभावा। उवसंतकसाएसु सम्मत्तप्पाबहुगं किण्ण परूविदं? ण एस दोसो, तिसु अद्धासु सम्मत्तप्पाबहुगे अवगदे तत्थ वि तदवगमादो। सुहं गहणट्ठं चदुसु उवसमाएसु त्ति[1] किण्ण परूविदं? ण, 'एगजोगणिद्दिट्ठाणमेगदेसो णाणुवट्टदि' त्ति णायादो उवरि चदुण्हमणुउत्तिप्पसंगा[2]। होदु चे ण, पडिजोगीणं चदुण्हमुवसामगाणमभावा।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २५ ॥

कुदो? थोवायुपदेसादो[3] संकलिदसंचयस्स[4] वि थोवत्तस्स णायसिद्धत्तादो।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका यहां द्रव्यप्रमाण अधिक पाया जाता है। उपशमश्रेणीमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि, वेदकसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीके आरोहणका अभाव है।

शंका—उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीवोंमें सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व ज्ञात हो जाने पर उपशान्तकषाय गुणस्थानमें भी उसका ज्ञान हो जाता है।

शंका—सुख अर्थात् सुगमतापूर्वक ज्ञान होनेके लिए 'चारों उपशामक गुणस्थानोंमें' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिनका निर्देश एक समासके द्वारा किया जाता है उनके एक देशकी अनुवृत्ति नहीं होती है' इस न्यायके अनुसार आगे कहे जानेवाले सूत्रोंमें चारों गुणस्थानोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग प्राप्त होगा।

शंका—यदि आगे चारों उपशामकोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग आता है, तो आने दो, क्या दोष है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों उपशामकोंके प्रतियोगियोंका अभाव है। अर्थात् जिस प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंके भीतर उपशामक और उनके प्रतियोगी क्षपक पाये जाते हैं, उसी प्रकार चौथे उपशामक अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशामकोंके प्रतियोगी क्षपक नहीं पाये जाते हैं।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५ ॥

क्योंकि, अल्प आयका उपदेश होनेसे संचित होनेवाली राशिके स्तोकपना अर्थात् कम होना न्यायसिद्ध है।

१ प्रतिषु 'उवसामए सुचे' इति पाठः। २ प्रतिषु '-मणउत्तिप्पसंगा' इति पाठः।
३ प्रतिषु 'थोवए पदेसादो' इति पाठः। ४ प्रतिषु 'संगलिदसंचयस्स' इति पाठः।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २९ ॥

कुदो ? संखेज्जगुणायादो संचउवलंभा । उवसम-खवगाणमेदमप्पाबहुगं पुव्वं परूविदमिदि एत्थ ण परूविदव्वं ? ण, पुव्वमुवसामग-खवगपवेसगाणमप्पाबहुगकथणादो। तदो चेव संचयप्पाबहुगसिद्धीए होदीदि चे सच्चं होदि, जुत्तीदो । जुत्तिवादे अणिउणसत्ताणुग्गहट्ठमेदमप्पाबहुअं पुणो वि परूविदं । खवगसेडीए सम्मत्तप्पाबहुअं किण्ण परूविदं ? ण, तेसिं खइयसम्मत्तं मोत्तूण अण्णसम्मत्ताभावा । तं कुदो णव्वदे ? खवगेसु उवसम-वेदगसम्मादिट्ठिदव्वादिपरूवयसुत्ताणुवलंभा । उवसमा खवा त्ति सद्दा उवसम-सम्मत्त-खइयसम्मत्ताणं वाचया ण होंति त्ति भणंताणमभिप्पाएण खइयसम्मत्तस्स

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंसे तीनों गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २९ ॥

क्योंकि, संख्यातगुणित आयसे क्षपकोंका संचय पाया जाता है ।

शंका—उपशामक और क्षपकोंका यह अल्पबहुत्व पहले कह आये हैं, इसलिये यहां नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले उपशामक और क्षपक जीवोंके प्रवेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा है ।

शंका—उसीसे संचयके अल्पबहुत्वकी सिद्धि हो जायगी (फिर उसे पृथक् क्यों कहा) ?

समाधान—यह सत्य है कि युक्तिसे अल्पबहुत्वकी सिद्धि हो सकती है । किन्तु जो शिष्य युक्तिवादमें निपुण नहीं हैं, उनके अनुग्रहके लिये यह अल्पबहुत्व पुनः भी कहा है ।

शंका—क्षपकश्रेणीमें सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षपकश्रेणीवालोंके क्षायिकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, क्षपकश्रेणीवाले जीवोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्रव्य अर्थात् संख्या और आदि पदसे क्षेत्र, स्पर्शन आदिके प्ररूपक सूत्र नहीं पाये जाते हैं । उपशामक और क्षपक, ये दोनों शब्द क्रमशः उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्वके वाचक नहीं हैं, ऐसा कथन करनेवाले आचार्योंके अभिप्रायसे

---

१ प्रतिषु ' अणिऊणसंताणुग्गहट्ठ- ' इति पाठः ।

अप्पाबहुवपरूवयाणि, पुव्वमपरूविदखवगुवसामगसंचयस्स अप्पाबहुवपरूवयाणि वा दो वि सुत्ताणि त्ति घेत्तव्वं ।

एवं ओघपरूवणा समत्ता ।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी[1] ॥ २७ ॥

आदेसवयणं ओघपडिसेहफलं । सेसमग्गणादिपडिसेहट्ठं गदियाणुवादवयणं । सेसगदिपडिसेहणट्ठो णिरयगदिणिद्देसो । सेसगुणट्ठाणपडिसेहट्ठो सासणणिद्देसो । उवरि उच्चमाणगुणट्ठाणदव्वेहिंतो सासणा दव्वपमाणेण थोवा अप्पा इदि उत्तं होदि ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[2] ॥ २८ ॥

कुदो ? सासणुवक्कमणकालादो सम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालस्स संखेज्जगुणस्स उवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जसमया । हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिम्हि भागे

ये दोनों सूत्र क्षायिकसम्यक्त्वके अल्पबहुत्वके प्ररूपक हैं, तथा पहले नहीं प्ररूपण किये गये क्षपक और उपशामकसम्बन्धी संचयके अल्पबहुत्वके प्ररूपक हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७ ॥

सूत्रमें 'आदेश' यह वचन ओघका प्रतिषेध करनेके लिए है । शेष मार्गणा आदिके प्रतिषेध करनेके लिए 'गतिमार्गणाके अनुवादसे' यह वचन कहा है । शेष गतियोंके प्रतिषेधके लिए 'नरकगति' इस पदका निर्देश किया । शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधार्थ 'सासादन' इस पदका निर्देश किया । ऊपर कहे जानेवाले शेष गुणस्थानोंके द्रव्यप्रमाणोंकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणसे स्तोक अर्थात् अल्प होते हैं, यह अर्थ कहा गया है ।

नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २८ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल संख्यातगुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । अधस्तनराशिका उपरिमराशियोंमें भाग देने पर गुणकारका प्रमाण आता है । अधस्तन-

---

१ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । स. सि. १, ८.

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

हिदे गुणगारो आगच्छदि । को हेट्ठिमरासी ? जो थोवो । जो पुण बहु सो उवरिमरासी । एदमत्थपदं जहावसरं सव्वत्थ वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] ॥ २९ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालादो असंजदसम्मादिट्ठिउवक्कमणकालस्स असंखेज्जगुणस्स संभवुवलंभा, सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो सम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिमोवट्टिय गुणगारो साहेयव्वो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा[2] ॥ ३० ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेडीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो । तासिं सेढीणं विक्खंभसूची अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि अंगुलवग्गमूलाणि विदियवग्गमूलस्स असंखेज्जभागमेत्ताणि । तं जधा– असंजदसम्मादिट्ठीहि सूचिअंगुलविदियवग्गमूलं गुणेदूण तेण सूचिअंगुले भागे हिदे लद्धमंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । असंखेज्जाणि अंगुलवग्गमूलाणि गुणगारविक्खंभसूची होदि त्ति कधं णव्वदे ? उच्चदे– असंजदसम्मादिट्ठीहि

राशि कौनसी है ? जो अल्प होती है, वह अधस्तनराशि है, और जो बहुत होती है, वह उपरिमराशि है । यह अर्थपद यथावसर सर्वत्र कहना चाहिए ।

नारकियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥२९॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालसे असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा पाया जाता है । अथवा, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । अधस्तनराशिसे उपरिमराशिको अपवर्तित करके गुणकार सिद्ध कर लेना चाहिए ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३०॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात जगश्रेणियां गुणकार है, जो जगश्रेणियां जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । उन जगश्रेणियोंकी विष्कंभसूची अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । जिसका प्रमाण अंगुलके द्वितीय वर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात प्रथम वर्गमूल है, वह इस प्रकार है– असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलको गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे सूच्यंगुलमें भाग देने पर अंगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है ।

शंका—अंगुलके असंख्यात वर्गमूल गुणकार-विष्कंभसूची है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलके

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.   २ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

सूचिअंगुलविदियवग्गमूले भागे हिदे लद्धम्मि जत्तियाणि रूवाणि तत्तियाणि अंगुलपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? दव्वविक्खंभसूची घणंगुलविदियवग्गमूलमेत्ता, असंजदसम्मादिट्ठीहि तम्हि घणंगुलविदियवग्गमूले ओवट्टिदे असंखेज्जाणि सूचिअंगुलपढमवग्गमूलाणि होंति त्ति तंत-जुत्तिसिद्धीदो । तत्थ जत्तियाणि रूवाणि तेत्तियमेत्ता सेढीओ गुणगारो होदि ।

असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३१ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तमेत्तुवसमसम्मत्तद्धाए उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण संचिदत्तादो उच्चमाणसव्वसम्मादिट्ठिरासीहिंतो उवसमसम्मादिट्ठी थोवा होंति ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥

कुदो ? सहावदो चेव उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो असंखेज्जगुणसरूवेण खइयसम्माइट्ठीणमवट्ठाणादो. संखेज्जपलिदोवमब्भंतरे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण संचिदत्तादो असंखेज्जगुणा त्ति वुत्तं होदि । एत्थतणखइयसम्मादिट्ठीणं भागहारो असंखेज्जावलियाओ । कुदो ? ओघासंजदसम्मादिट्ठीहिंतो असंखेज्ज-

भाजित करने पर लब्धमें जितना प्रमाण आवे, उतने सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूल गुणकार-रूप होते हैं, क्योंकि, द्रव्यविष्कंभसूची घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र है। इसलिए असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे उस घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलके अपवर्तित कर देनेपर सूच्यंगुलके असंख्यात प्रथम वर्गमूल होते हैं, यह प्रकार आगम और युक्तिसे सिद्ध है। अतएव यहांपर जितनी संख्या है, तन्मात्र जगश्रेणियां यहांपर गुणकार है।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तमात्र उपशमसम्यक्त्वके कालमें आवलीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण उपक्रमणकालके द्वारा संचित होनेके कारण आगे कहे जानेवाले सर्व प्रकारके सम्यग्दृष्टियोंकी राशियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव थोड़े होते हैं।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२ ॥

क्योंकि, स्वभावसे ही उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका असंख्यातगुणितरूपसे अवस्थान है, जिसका तात्पर्य यह है कि संख्यात पल्योपमके भीतर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणित हैं। यहां नारकियोंमें जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि हैं उनके प्रमाणके लानेके लिए भागहारका प्रमाण असंख्यात आवलियां हैं, क्योंकि, ओघ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणित हीन ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि

गुणहीणओघखइयसम्मादिट्ठीणं असंखेज्जदिभागमेत्तादो। ण वासपुधत्तंतरसुत्तेण सह विरोहो, सोहम्मीसाणकप्पं मोत्तूण अण्णत्थ ट्ठिदखइयसम्मादिट्ठीणं वासपुधत्तस्स विउलत्त-वाइणो[1] गहणादो। तं तहा घेप्पदि त्ति कुदो णव्वदे? ओघुवसमसम्मादिट्ठीहिंतो ओघखइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा त्ति अप्पाबहुअसुत्तादो।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३३ ॥

कुदो? खइयसम्मत्तादो खओवसमियस्स वेदगसम्मत्तस्स सुलहत्तुवलंभा। को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कधमेदं णव्वदे? आइरियपरंपरागदुवदेसादो।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ३४ ॥

जहा सामण्णणेरइयाणमप्पाबहुअं परूविदं, तहा पढमपुढवीणेरइयाणमप्पाबहुअं परूवेदव्वं, ओघणेरइयअप्पाबहुआलावादो पढमपुढवीणेरइयाणमप्पाबहुआलावस्स भेदाभावा।

जीव असंख्यातवें भाग ही होते हैं। इस कथनका वर्षपृथक्त्व अन्तर बतानेवाले सूत्रके साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सौधर्म और ऐशानकल्पको छोड़कर अन्यत्र स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कहे गये वर्षपृथक्त्वके 'पृथक्त्व' शब्दको वैपुल्य-वाची ग्रहण किया गया है।

शंका—यहां पर पृथक्त्वका अर्थ वैपुल्यवाची ग्रहण किया गया है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—'ओघ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं' इस अल्पबहुत्वके प्रतिपादक सूत्रसे जाना जाता है।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्ति सुलभ है। गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—आचार्य-परम्परासे आये हुए उपदेशके द्वारा जाना जाता है।

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंका अल्पबहुत्व है ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार सामान्य नारकियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकियोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिए, क्योंकि, सामान्य नारकियोंके अल्पबहुत्वके कथनसे पहली पृथिवीके नारकियोंके अल्पबहुत्वके कथनमें कोई भेद नहीं है। किन्तु

---

१ पुहुत्तसद्दो बहुत्तवाई। क. प. चूर्णि.

पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो, सो जाणिय वत्तव्वो।

बिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ ३५ ॥

बिदियादिछण्हं पुढवीणं सासणसम्मादिट्ठिणो बुद्धीए पुध पुध ट्ठविय सव्वत्थोवा त्ति उत्तं। कुदो ? छण्हमप्पाबहुआणमेयत्तविरोहादो। सव्वेहिंतो थोवा सव्वत्थोवा। आदि-अंतेसु णेरइएसु णिद्दिट्ठेसु सेसमज्झिमणेरइया सव्वे णिद्दिट्ठा चये, जावसद्दुच्चारणण्णहाणुववत्तीदो। जावसद्देण सत्तमपुढवीणेरइयाण[1] मज्जादत्ताए ठविदाए[2], बिदियपुढवीणेरइयाणमादित्तमावादिदं। आदी अंता च मज्झेण विणा ण होंति त्ति चदुण्हं पुढवीणेरइयाणं मज्झिमत्तं पि जावसद्देणेव परूविदं। तदो पुध पुध पुढवीणमुच्चारणा ण कदा।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥

बिदियपुढवीआदिसत्तमपुढवीपज्जंतसासणाणमुवरि पुध पुध छपुढवीसम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा, सासणसम्मादिट्ठिउवक्कमणकालादो सम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमण-

पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करने पर कुछ विशेषता है, सो जानकर कहना चाहिए। (देखो भाग ३, पृ. १६२ इत्यादि।)

नारकियोंमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३५ ॥

दूसरीको आदि लेकर छहों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंको बुद्धिके द्वारा पृथक् पृथक् स्थापित करके प्रत्येक सबसे कम हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है, क्योंकि, छहों अल्पबहुत्वोंको एक माननेमें विरोध आता है। सबसे थोड़ोंको सर्वस्तोक कहते हैं। आदिम और अन्तिम नारकियोंके निर्देश कर देने पर शेष मध्यम सभी नारकियोंका निर्देश हो ही जाता है, अन्यथा यावत् शब्दका उच्चारण नहीं बन सकता है। यावत् शब्दके द्वारा सातवीं पृथिवीके नारकियोंके मर्यादारूपसे स्थापित किये जानेपर दूसरी पृथिवीके नारकियोंके आदिपना अपने आप आ जाता है। आदि और अन्त मध्यके विना नहीं होते हैं, इसलिए चार पृथिवियोंके नारकियोंके मध्यमपना भी यावत् शब्दके द्वारा ही प्ररूपित कर दिया गया। इसी कारण पृथक् पृथक् रूपसे पृथिवियोंका नामनिर्देशपूर्वक उच्चारण नहीं किया गया है।

नारकियोंमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ऊपर पृथक् पृथक् छह पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल युक्तिसे संख्यात-

१ आ-कप्रत्योः 'णेरइया' इति पाठः। २ प्रतिषु 'ठविदा' इति पाठः।

कालस्स जुत्तीए संखेज्जगुणत्तुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥

कुदो ? छप्पुढविसम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालेहिंतो छप्पुढविअसंजदसम्मादिट्ठिउवक्कमणकालाणमसंखेज्जगुणत्तदंसणादो, एगसमएण सम्मामिच्छत्तमुवक्कमंतजीवेहिंतो एगसमएण वेदयसम्मत्तमुवक्कमंतजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वदे ? 'एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति' सुत्तादो । असंखेज्जावलियाहि अंतोमुहुत्तत्तं किण्ण विरुज्झदि त्ति उत्ते ण, ओघअसंजदसम्मादिट्ठिअवहारकालं मोत्तूण सेसगुणपडिवण्णाणमवहारकालस्स कज्जे कारणोवयारेण अंतोमुहुत्तसिद्धीदो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३८ ॥

छण्हं पुढवीणमसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो सेडीबारस-दसम-अट्ठम-छट्ठ-तइय-बिदियवग्ग-

---

गुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७ ॥

क्योंकि, छह पृथिवियोंसम्बन्धी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालोंसे छह पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा देखा जाता है । अथवा, एक समयके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा एक समयके द्वारा वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—' इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है, ' इस द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—अन्तर्मुहूर्तका अर्थ असंख्यात आवलियां लेनेसे उसका अन्तर्मुहूर्तपना विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओघअसंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अवहारकालको छोड़कर शेष गुणस्थान-प्रतिपन्न जीवोंके अवहारकालका कार्यमें कारणका उपचार कर लेनेसे अन्तर्मुहूर्तपना सिद्ध हो जाता है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८ ॥

द्वितीयादि छहों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे जगश्रेणीके बारहवें, दशवें,

मूलोवट्टिदसेडीमेत्तछप्पुढविमिच्छादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा होंति। को गुणगारो? सेडीए असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि सेडीपढमवग्गमूलाणि। को पडिभागो? असंखेज्जाणि सेडीबारसम-दसम-अट्ठम-छट्ठ-तदिय-विदियवग्गमूलाणि। कुदो? असंजदसम्मादिट्ठिरासिणा गुणिदत्तादो।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३९ ॥

सव्वेहि उच्चमाणट्ठाणेहिंतो त्थोवा त्ति सव्वत्थोवा। कुदो? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालेण संचिदत्तादो।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४० ॥

एत्थ पुव्वं व तीहि पयारेहि सेचियसरूवेहि गुणयारो परूवेदव्वो। एत्थ खइयसम्मादिट्ठिणो ण परूविदा, हेट्ठिमछप्पुढवीसु तेसिमुववादाभावा, मणुसगइं मुच्चा अण्णत्थ दंसणमोहणीयखवणाभावादो च।

आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे वर्गमूलसे भाजित जगश्रेणीप्रमाण छह पृथिवियोंके मिथ्यादृष्टि नारकी असंख्यातगुणित होते हैं। गुणकार क्या है? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है? जगश्रेणीके बारहवें, दशवें, आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे असंख्यात वर्गमूलप्रमाण प्रतिभाग है, क्योंकि, ये सब असंयतसम्यग्दृष्टिराशिसे गुणित हैं।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३९ ॥

आगे कहे जानेवाले स्थानोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि थोड़े होते हैं, इसलिये वे सर्वस्तोक कहलाते हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालसे उनका संचय होता है।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४० ॥

यहां पर पहलेके समान सेचिकस्वरूप अर्थात् मापके विशेष भेदस्वरूप तीनों प्रकारोंसे गुणकारका प्ररूपण करना चाहिए (देखो पृ. २४९)। यहां क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका प्ररूपण नहीं किया है, क्योंकि, नीचेकी छह पृथिवियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, और मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नहीं होती है।

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियपज्जत्त-तिरिक्ख-पंचिंदियजोणिणीसु सव्वत्थोवा संजदासंजदा[1] ॥ ४१ ॥

पयदचउव्विहतिरिक्खेसु जे देसव्वइणो ते तेसिं चेव सेसगुणट्ठाणजीवेहिंतो थोवा त्ति चदुण्हमप्पाबहुआणं मूलपदमेदेण परूविदं। किमट्ठं देसव्वइणो थोवा ? संजमासंजमुवलंभस्स सुदुल्लहत्तादो।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[2] ॥ ४२ ॥

चउव्विहतिरिक्खाणं जे सासणसम्मादिट्ठिणो ते सग-सगसंजदासंजदेहिंतो असंखेज्जगुणा, संजमासंजमुवलंभादो सासणगुणलंभस्स सुलहत्तुवलंभा। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। तं कधं णव्वदे ? अंतोमुहुत्तसुत्तादो, आइरियपरंपरागदुवदेसादो वा।

सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा ॥ ४३ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यंच जीवोंमें संयतासंयत सबसे कम हैं ॥ ४१ ॥

प्रकृत चारों प्रकारोंके तिर्यंचोंमें जो तिर्यंच देशव्रती हैं, वे अपने ही शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंसे थोड़े हैं, इस प्रकार इससे चारों प्रकारके तिर्यंचोंके अल्पबहुत्वका मूलपद प्ररूपण किया गया है।

शंका—देशव्रती अल्प क्यों होते हैं ?

समाधान—क्योंकि, संयमासंयमकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४२ ॥

चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें जो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं, वे अपने अपने संयतासंयतोंसे असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, संयमासंयम-प्राप्तिकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति सुलभ है। गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अवहारकालके प्रतिपादक सूत्रसे और आचार्य-परम्परासे आये हुए उपदेशसे यह जाना जाता है।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ४३ ॥

---

१ तिर्यग्गतौ तिरश्चां सर्वतः स्तोकाः संयतासंयताः। स. सि. १, ८.

२ इतरेषां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

चउव्विहतिरिक्खसासणसम्मादिट्ठीहिंतो सग-सगसम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा। कुदो ? सासणुवक्कमणकालादो सम्मामिच्छादिट्ठीणमुवक्कमणकालस्स तंत-जुत्तीए संखेज्जगुणत्तुवलंभा। को गुणगारो ? संखेज्जसमया।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥

चउव्विहतिरिक्खसम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव असंजदसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा। कुदो ? सम्मामिच्छत्तमुवक्कमंतजीवेहिंतो सम्मत्तमुवक्कमंतजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। तं कुदो णव्वदे ? 'पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेणेत्ति' सुत्तादो, आइरियपरंपरागदुवदेसादो वा।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥४५॥

चदुण्हं तिरिक्खाणमसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा असंखेज्जगुणा य। विप्पडिसिद्धमिदं। जदि अणंतगुणा, कधमसंखेज्जगुणत्तं ? अह

चारों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंमेंसे अपने अपने सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंच संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल आगम और युक्तिसे संख्यातगुणा पाया जाता है। गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४४ ॥

चारों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंसे उनके ही असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं। गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'इन जीवराशियोंके प्रमाणद्वारा अन्तर्मुहूर्त कालसे पल्योपम अपहृत होता है' इस द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रसे और आचार्य-परम्परासे आये हुए उपदेशसे जाना जाता है।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४५ ॥

चारों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंसे उनके ही मिथ्यादृष्टि तिर्यंच अनन्तगुणित हैं और असंख्यातगुणित भी हैं।

शंका—यह बात तो विप्रतिषिद्ध अर्थात् परस्पर-विरोधी है। यदि अनन्तगुणित हैं, तो वहां असंख्यातगुणत्व नहीं बन सकता है; और यदि असंख्यातगुणित हैं, तो

असंखेज्जगुणा, कधमणंतगुणत्तं; दोण्हमक्कमेण एयत्थ पउत्तिविरोहा ? एत्थ परिहारो उच्चदे- 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो 'तिरिक्खमिच्छादिट्ठी केवडिया, अणंता, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठी असंखेज्जा' इदि सुत्तादो वा एवं संबंधो कीरदे- तिरिक्खमिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा त्ति, अण्णहा दोण्हमुच्चारणाए विहलत्तप्पसंगा । को गुणगारो ? तिरिक्खमिच्छादिट्ठीणमभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि गुणगारो । को पडिभागो ? तिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठिरासी पडिभागो । सेसतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठीणं गुणगारो पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ असंखेज्जसेडीपढमवग्गमूलमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमेत्तपदरंगुलाणि वा पडिभागो । अधवा सग-सगदव्वाणमसंखेज्जदिभागो (गुणगारो) । को पडिभागो ? सग-सगअसंजदसम्मादिट्ठी पडिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ४६ ॥

अनन्तगुणत्व कैसे बन सकता है, क्योंकि, दोनोंकी एक साथ एक अर्थमें प्रवृत्ति होनेका विरोध है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार करते हैं- 'उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायसे, अथवा 'मिथ्यादृष्टि सामान्य तिर्यंच कितने हैं ? अनन्त हैं, शेष तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच असंख्यात हैं' इस सूत्रसे इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए- मिथ्यादृष्टि सामान्यतिर्यंच अनन्तगुणित हैं और शेष तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच असंख्यातगुणित हैं । यदि ऐसा न माना जायगा, तो दोनों पदोंकी उच्चारणाके विफलताका प्रसंग प्राप्त होगा ।

यहांपर गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचराशि प्रतिभाग है । शेष तीन प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है, जो जगश्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमित असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है । अथवा, पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित प्रतरांगुल प्रतिभाग है । अथवा, अपने अपने द्रव्यका असंख्यातवां भाग गुणकार है। प्रतिभाग क्या है ? अपने अपने असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रमाण प्रतिभाग है ।

तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ४६ ॥

तं जहा– चउव्विहेसु तिरिक्खेसु भणिस्समाणसव्वसम्माइट्ठिदव्वादो उवसमसम्माइट्ठी थोवा, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालब्भंतरे संचिदत्तादो।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥

कुदो? असंखेज्जवस्साउगेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण संचिदत्तादो, अणाइणिहणसरूवेण उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो खइयसम्मादिट्ठीणं आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणत्तेण अवट्ठाणादो वा। आवलियाए असंखेज्जदिभागो गुणगारो त्ति कधं णव्वदे? आइरियपरंपरागदुवदेसादो।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥

कुदो? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पण्णखइयसम्मत्ताणं सम्मत्तुप्पत्तीदो पुव्वमेव बद्धतिरिक्खाउआणं पउरं संभवाभावा। ण य लोए सारदव्वाणं दुल्लहत्तमप्पसिद्धं, अस्स-हत्थि-पत्थरादिसु साराणं लोए दुल्लहत्तुवलंभा।

....

वह इस प्रकार है– चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें आगे कहे जानेवाले सर्व सम्यग्दृष्टियोंके द्रव्यप्रमाणसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालके भीतर उनका संचय होता है।

तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके द्वारा संचित होनेसे, अथवा अनादिनिधनस्वरूपसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका आवलीके असंख्यातवें भाग गुणितप्रमाणसे अवस्थान पाया जाता है।

शंका—यहां आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—आचार्य-परम्परासे आए हुए उपदेशसे जाना जाता है।

तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४८ ॥

क्योंकि, जिन्होंने सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे पूर्व ही तिर्यंच आयुका बंध कर लिया है, ऐसे दर्शनमोहनीयके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है। और, लोकमें सार पदार्थोंकी दुर्लभता अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, अश्व, हस्ती और पाषाणादिकोंमें सार पदार्थोंकी सर्वत्र दुर्लभता पाई जाती है।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्माइट्ठी ॥ ४९ ॥

कुदो ? देसव्वयाणुविद्धुवसमसम्मत्तस्स दुल्लहत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एदम्हादो गुणगारादो णव्वदे समयं पडि तदुवचयादो असंखेज्जगुणत्तेणुवचिदा त्ति असंखेज्जगुणत्तं । एत्थ खइयसम्माइट्ठीणमप्पाबहुअं किण्ण परूविदं ? ण, तिरिक्खेसु असंखेज्जवस्साउएसु चेय खइयसम्मादिट्ठीणमुववादुवलंभा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्तप्पाबहुअविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ५१ ॥

सुगममेदं ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५२ ॥

तिर्यंचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥४९॥

क्योंकि, देशव्रतसहित उपशमसम्यक्त्वका होना दुर्लभ है ।

तिर्यंचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ५० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इस गुणकारसे यह जाना जाता है कि प्रतिसमय उनका उपचय होनेसे वे असंख्यातगुणित संचित हो जाते हैं, इसलिए उनके प्रमाणके असंख्यातगुणितता बन जाती है ।

शंका—यहां संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियां तिर्यंचोंमें ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद पाया जाता है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें सम्यक्त्वके अल्पबहुत्वसम्बन्धी विशेषके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ५२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ खइयसम्मादिट्ठीणमप्पाबहुअं णत्थि, सव्वित्थीसु सम्मादिट्ठीणमुववादाभावा, मणुसगइवदिरित्तण्णगईसु दंसणमोहणीयक्खवणाभावाच्च ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ ५३ ॥

तिसु वि मणुसेसु तिण्णि वि उवसामया पवेसणेण अण्णोण्णमवेक्खिय तुल्ला सरिसा, चउवण्णमेत्तत्तादो । ते च्चेय थोवा, उवरिमगुणट्ठाणजीवावेक्खाए ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ ५४ ॥

कुदो ? हेट्ठिमगुणट्ठाणे पडिवण्णजीवाणं चेय उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थपज्जाएण परिणामुवलंभा । संचयस्स अप्पाबहुअं किण्ण परूविदं ? ण, पवेसप्पाबहुएण चेय तदवगमादो । जदो संचओ णाम पवेसाहीणो[2], तदो पवेसप्पावहुएण सरिसो संचयप्पाबहुओ त्ति पुध ण उत्तो ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहां पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, सर्व प्रकारकी स्त्रियोंमें सम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, तथा मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका भी अभाव है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ५३ ॥

सूत्रोक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीनों ही उपशामक जीव प्रवेशसे परस्परकी अपेक्षा तुल्य अर्थात् सदृश हैं, क्योंकि, एक समयमें अधिकसे अधिक चौपन जीवोंका प्रवेश पाया जाता है । तथा, ये जीव ही उपरिम गुणस्थानोंके जीवोंकी अपेक्षा अल्प हैं ।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव प्रवेशसे पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, अधस्तन गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका ही उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थरूप पर्यायसे परिणमण पाया जाता है ।

शंका—यहां उपशामकोंके संचयका अल्पबहुत्व क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्वसे ही उसका ज्ञान हो जाता है । चूंकि, संचय प्रवेशके आधीन होता है, इसलिए प्रवेशके अल्पबहुत्वसे संचयका अल्पबहुत्व सदृश है, अतएव उसे पृथक् नहीं बतलाया ।

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्याणामुपशमकादिप्रमत्तसंयतान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १-८.

२ अ प्रतौ 'पवेसहीणो' आ-कप्रत्योः 'पवेसाहिणो' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥

कुदो ? अट्ठुत्तरसदमेत्तत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ५६ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेय ॥ ५७ ॥

कुदो ? खीणकसायपज्जाएण परिणदाणं चेय उत्तरगुणट्ठाणुवक्कमुवलंभा ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ५८ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु ओघसजोगिरासिं ठविय हेट्ठिमरासिणा ओवट्टिय गुणगारो उप्पादेदव्वो । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जसजोगिजीवे ट्ठविय अट्ठुत्तरसदं मुच्चा तप्पाओग्गसंखेज्जखीणकसाएहि ओवट्टिय गुणगारो उप्पादेदव्वो ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ५५ ॥

क्योंकि, क्षपकसम्बन्धी एक गुणस्थानमें एक साथ प्रवेश करनेवाले जीवोंका प्रमाण एक सौ आठ है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों भी प्रवेशसे तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, क्षीणकषायरूप पर्यायसे परिणत जीवोंका ही आगेके गुणस्थानोंमें उपक्रमण (गमन) पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ५८ ॥

सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमेंसे ओघ सयोगिकेवलीराशिको स्थापित करके और उसे अधस्तनराशिसे भाजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात सयोगिकेवली जीवोंको स्थापित करके एक सौ आठ संख्याको छोड़कर उनके योग्य संख्यात क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थोंके प्रमाणसे भाजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणं ओघम्हि उत्त-अप्पमत्तरासी चेव होदि । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जमेत्तो होदि । सेसं सुगमं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

एदं पि सुगमं ।

संजदासंजदा[1] संखेज्जगुणा[2] ॥ ६१ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु संजदासंजदा संखेज्जकोडिमेत्ता । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्ता त्ति घेत्तव्वा, वट्टमाणकाले एत्तिया त्ति उवदेसाभावा । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा[3] ॥ ६२ ॥

कुदो ? तत्तो संखेज्जगुणकोडिमेत्तत्तादो । मणुसिणीसु तदो संखेज्जगुणा, तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवलीसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ५९ ॥

ओघप्ररूपणामें कही हुई अप्रमत्तसंयतोंकी राशि ही मनुष्य-सामान्य और मनुष्यपर्याप्तक अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण है । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात भागमात्र राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६१ ॥

मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोंमें संयतासंयत जीव संख्यात कोटिप्रमाण होते हैं । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात रूपमात्र होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वे इतने ही होते हैं, इस प्रकारका वर्तमान कालमें उपदेश नहीं पाया जाता । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, वे संयतासंयतोंके प्रमाणसे संख्यातगुणित कोटिमात्र होते हैं । मनुष्यनियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण उनके योग्य संख्यात रूपमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ प्रतिषु 'संजदा' इति पाठः । २ ततः संख्येयगुणाः संयतासंयताः । स. सि. १, ८.
३ सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणा । स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[1] ॥ ६३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा[2] ॥ ६४ ॥

कुदो ? सत्तकोडिसयमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[3] ॥ ६५ ॥

असंखेज्ज-संखेज्जगुणाणमेगत्थ संभवाभावा एवं संबंधो कीरदे– मणुसमिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेडीए असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणी मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा, संखेज्जरूवपरिमाणत्तादो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ६६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रमाण सात सौ कोटिमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६५ ॥

असंख्यातगुणित और संख्यातगुणित जीवोंका एक अर्थमें होना संभव नहीं है, इसलिए इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए– असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्योंसे मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्य असंख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग है । तथा मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यनी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात रूपमात्र ही पाया जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ६६ ॥

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६८ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ ६९ ॥

खीणदंसणमोहणीयाणं देससंजमे वट्टंताणं बहूणमभावा । खीणदंसणमोहणीया पाएण असंजदा होदूण अच्छंति । ते संजमं पडिवज्जंता पाएण महव्वयाइं चेव पडिवज्जंति, ण देसव्वयाइं ति उत्तं होदि ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७० ॥

खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदेहिंतो उवसमसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणं बहूणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७१ ॥

कुदो ? बहुवायत्तादो, संचयकालस्स बहुत्तादो वा, उवसमसम्मत्तं पेक्खिय वेदगसम्मत्तस्स सुलहत्तादो वा ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६८ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ६९ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय करनेवाले और देशसंयममें वर्तमान बहुत जीवोंका अभाव है । दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाले मनुष्य प्रायः असंयमी होकर रहते हैं । वे संयमको प्राप्त होते हुए प्रायः महाव्रतोंको ही धारण करते हैं, अणुव्रतोंको नहीं; यह अर्थ कहा गया है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत मनुष्य बहुत पाये जाते हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी आय अधिक है, अथवा संचयकाल बहुत है, अथवा उपशमसम्यक्त्वको देखते हुए अर्थात् उसकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वका पाना सुलभ है ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥७२॥

कुदो ? थोवकालसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

बहुकालसंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७४ ॥

खइयसम्मत्तेण संजमं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो वेदगसम्मत्तेण संजमं पडिवज्जमाणजीवाणं बहुत्तुवलंभा । मणुसिणीगयविसेसपदुप्पायणट्ठं उवरिमसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ ७५ ॥

कुदो ? अप्पसत्थवेदोदएण दंसणमोहणीयं खवेंतजीवाणं बहूणमणुवलंभा[1] ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ७२ ॥

क्योंकि, इनका संचयकाल अल्प है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७३ ॥

क्योंकि, इनका संचयकाल बहुत है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७४ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अधिकता पाई जाती है । अब मनुष्यनियोंमें होनेवाली विशेषताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

केवल विशेषता यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ७५ ॥

क्योंकि, अप्रशस्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयको क्षपण करनेवाले जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७६ ॥

---

१ प्रतिषु 'बहूणमुवलंभा' इति पाठः ।

अप्पसत्थवेदोदएण[1] दंसणमोहणीयं खवेंतजीवेहिंतो अप्पसत्थवेदोदएण चेव दंसणमोहणीयं उवसमेंतजीवाणं मणुसेसु संखेज्जगुणाणमुवलंभा।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥

सुगममेदं।

एवं तिसु अद्धासु ॥ ७८ ॥

एदस्सत्थो– मणुस-मणुसपज्जत्तएसु णिरुद्धेसु तिसु अद्धासु उवसमसम्मादिट्ठी थोवा, थोवकारणत्तादो। खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, बहुकारणादो। मणुसिणीसु पुण खइयसम्मादिट्ठी थोवा, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा। एत्थ पुव्वुत्तमेव कारणं। उवसामग-खवगाणं संचयस्स अप्पाबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ७९ ॥

थोवपवेसादो।

क्योंकि, अप्रशस्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीवोंसे अप्रशस्त वेदके उदयके साथ ही दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीव मनुष्योंमें संख्यातगुणित पाये जाते हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

इसी प्रकार तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ७८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोंसे निरुद्ध अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प होते हैं, क्योंकि, उनके अल्प होनेका कारण पाया जाता है। उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनके बहुत होनेका कारण पाया जाता है। किन्तु मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, और उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं। यहां संख्यातगुणित होनेका कारण पूर्वोक्त ही है (देखो सूत्र नं. ७५)।

उपशामक और क्षपकोंके संचयका अल्पबहुत्व प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, इनका प्रवेश अल्प होता है।

---

१ प्रतिषु 'अप्पमत्तवेदोदएण' इति पाठः।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ८० ॥

बहुप्पवेसादो ।

देवगदीए देवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी[२] ॥ ८१ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुबोज्झाणि, बहुसो परूविदत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥

को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जपदरंगुलाणि वा पडिभागो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ८५ ॥

सुबोज्झमिदं सुत्तं ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ८० ॥

क्योंकि, इनका प्रवेश बहुत होता है ।

देवगतिमें देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ८२ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ८३ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुबोध्य अर्थात् सरलतासे समझने योग्य हैं, क्योंकि, इनका बहुत वार प्ररूपण किया जा चुका है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८४ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणियां कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अथवा असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुबोध्य है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८६ ॥

---

२ देवगतौ देवानां नारकवत् । स. सि. १, ८.

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुबोज्झं ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो ॥ ८८ ॥

एदेसिमिदि एत्थज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा संबंधाभावा । खइयसम्मादिट्ठीणमभावं पडि साधम्मुवलंभा सत्तमाए पुढवीए भंगो एदेसिं होदि । अत्थदो पुण विसेसो अत्थि, तं भणिस्सामो– सव्वत्थोवा भवणवासियसासणसम्माइट्ठी । सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । मिच्छाइट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? घणंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? असंजदसम्मादिट्ठिरासी पडिभागो ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुबोध्य (सुगम) है ।

देवोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देवोंमें भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव और देवियां, तथा सौधर्म-ईशानकल्पवासिनी देवियां, इनका अल्पबहुत्व सातवीं पृथिवीके अल्पबहुत्वके समान है ॥ ८८ ॥

इस सूत्रमें 'इनका' इस पदका अध्याहार करना चाहिए, अन्यथा प्रकृतमें इसका सम्बन्ध नहीं बनता है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अभावकी अपेक्षा समानता पाई जानेसे इन सूत्रोक्त देव-देवियोंका सातवीं पृथिवीके समान अल्पबहुत्व है । किन्तु अर्थकी अपेक्षा कुछ विशेषता है, उसे कहते हैं– भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । उनसे भवनवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं । उनसे भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । उनसे भवनवासी मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणियां कितनी हैं ? घनांगुलके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र हैं । प्रतिभाग क्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि प्रतिभाग है ।

सव्वत्थोवा वाणवेंतरसासणसम्मादिट्ठी । सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जपदरंगुलाणि वा पडिभागो । एवं जोदिसियाणं पि वत्तव्वं । सग-सगइत्थिवेदाणं सग-सगोघभंगो । सेसं सुगमं ।

सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा देवगइ-भंगो ॥ ८९ ॥

जहा देवोघम्हि अप्पाबहुअं उत्तं, तथा एदेसिमप्पाबहुगं वत्तव्वं । तं जहा- सव्वत्थोवा सग-सगकप्पत्था सासणा । सग-सगकप्पसम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा । सग-सगकप्पअसंजदसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा । सग-सगमिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । एत्थ गुणगारो जाणिय वत्तव्वो, एगसरूवत्ताभावा । अणंतरउत्तकप्पेसु असंजदसम्मा-

....

वानव्यन्तर सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं । उनसे वानव्यन्तर सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं । उनसे वान-व्यन्तर असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असं-ख्यातवां भाग गुणकार है । वानव्यन्तर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंसे वानव्यन्तर मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणियां कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अथवा असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है ।

इसी प्रकार ज्योतिष्क देवोंके अल्पबहुत्वको भी कहना चाहिए । भवनवासी आदि निकायोंमें अपने अपने स्त्रीवेदियोंका अल्पबहुत्व अपने अपने ओघ-अल्पबहुत्वके समान है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सौधर्म-ईशान कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तक कल्पवासी देवोंमें अल्प-बहुत्व देवगति सामान्यके अल्पबहुत्वके समान हैं ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार सामान्य देवोंमें अल्पबहुत्वका कथन किया है, उसी प्रकार इनके अल्पबहुत्वको कहना चाहिए । वह इस प्रकार है- अपने अपने कल्पमें रहनेवाले सासा-दनसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं । इनसे अपने अपने कल्पके सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं । इनसे अपने अपने कल्पके असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । इनसे अपने अपने कल्पके मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । यहांपर गुणकार जानकर कहना चाहिए, क्योंकि, इन देवोंमें गुणकारकी एकरूपताका अभाव है । अभी इन पीछे

दिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी । खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । वेदगसमादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? सव्वत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो त्ति । सेसं सुगमं ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ ९० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९१ ॥

एदं पि सुगमं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वदे ? दव्वाणिओगद्दारसुत्तादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९३ ॥

कहे गये कल्पोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं। इनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं। इनसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं। गुणकार क्या है ? सर्वत्र आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रैवेयक विमानों तक विमानवासी देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त विमानोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त विमानोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—द्रव्यानुयोगद्वारसूत्रसे जाना जाता है कि उक्त कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि देवोंका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है।

उक्त विमानोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९३ ॥

कुदो ? मणुसेहिंतो आणदादिसु उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठी पेक्खिय तत्थुप्पज्जमाणसम्मादिट्ठीणं संखेज्जगुणत्तादो। देवलोए सम्मत्तमिच्छत्ताणि पडिवज्जमाणजीवाणं किण्ण पहाणत्तं ? ण, तेसिं मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो। को गुणगारो ? संखेज्जसमया।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ९४ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तकालसंचिदत्तादो।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९५ ॥

कुदो ? संखेज्जसागरोवमकालेण संचिदत्तादो। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। संचयकालपडिभागेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो किण्ण उच्चदे ? ण, एगसमएण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं उवसमसम्मत्तं पडिवज्जमाणाणमुवलंभा।

क्योंकि, मनुष्योंसे आनत आदि विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टियोंकी अपेक्षा वहांपर उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं।

शंका—देवलोकमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी प्रधानता क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मूलराशिके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं।

उक्त विमानोंमें सम्यग्दृष्टियोंका गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रैवेयक तक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, वे केवल अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा संचित होते हैं।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ९५ ॥

क्योंकि, वे संख्यात सागरोपम कालके द्वारा संचित होते हैं। गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—संचयकालरूप प्रतिभाग होनेकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक समयके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होते हुए पाये जाते हैं।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९६ ॥

कुदो ? तत्थुप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठीहिंतो संखेज्जगुणवेदगसम्मादिट्ठीणं तत्थुप्पत्तिदंसणादो ।

अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ९७ ॥

कुदो ? उवसमसेडीचडणोयरणकिरियावावदुवसमसम्मत्तसहिदसंखेज्जसंजदाणमेत्थुप्पण्णाणमंतोमुहुत्तसंचिदाणमुवलंभा ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९८ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? संखेज्जुवसमसम्मादिट्ठिजीवा पडिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९९ ॥

कुदो ? खइयसम्मत्तेणुप्पज्जमाणसंजदेहिंतो वेदगसम्मत्तेणुप्पज्जमाणसंजदाणं संखेज्ज-

....

उक्त विमानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९६ ॥

क्योंकि, उन आनतादि कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी वहां उत्पत्ति देखी जाती है ।

नव अनुदिशोंको आदि लेकर अपराजित नामक अनुत्तरविमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९७ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीपर आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए, अर्थात् चढ़ते और उतरते हुए मरकर उपशमसम्यक्त्वसहित यहां उत्पन्न हुए, और अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा संचित हुए संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टि संयत पाये जाते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ९८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रतिभाग है ।

उक्त विमानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९९ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वके साथ मरण कर यहां उत्पन्न होनेवाले संयतोंकी

गुणत्तादो। तं पि कधं णव्वदे ? कारणाणुसारिकज्जदंसणादो मणुसेसु खइयसम्मादिट्ठी संजदा थोवा, वेदगसम्मादिट्ठी संजदा संखेज्जगुणा; तेण तेहिंतो देवेसुप्पज्जमाणसंजदा वि तप्पडिभागिया चेवेत्ति घेत्तव्वं। एत्थ सम्मत्तप्पाबहुअं चेव, सेसगुणट्ठाणाभावा। कधमेदं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १०० ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १०१ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १०२ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि। सव्वट्ठसिद्धिम्हि तेत्तीसाउट्ठिदिम्हि असंखेज्जजीवरासी किण्ण होदि ? ण, तत्थ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तंतरम्हि

....

अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वके साथ मरण कर यहां उत्पन्न होनेवाले संयत संख्यातगुणित होते हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, 'कारणके अनुसार कार्य देखा जाता है,' इस न्यायके अनुसार मनुष्योंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयत अल्प होते हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि संयत संख्यातगुणित होते हैं। इसलिए उनसे देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयत भी तत्प्रतिभागी ही होते हैं, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इन कल्पोंमें यही सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है, क्योंकि, वहां शेष गुणस्थानोंका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रसे ही जाना जाता है कि अनुदिश आदि विमानोंमें केवल एक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान होता है, शेष गुणस्थान नहीं होते हैं।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ १०० ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०१ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०२ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं।

शंका—तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले सर्वार्थसिद्धिविमानमें असंख्यात जीवराशि क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका अन्तर है, इसलिए वहां असंख्यात जीवराशिका होना असम्भव है।

तदसंभवा। जदि एवं, तो आणदादिदेवेसु वासपुधत्तंतरेसु संखेज्जावलिओवट्टिदपलिदोवममेत्ता जीवा किण्ण होंति? ण, तत्थतणमिच्छादिट्ठिआदीणमवहारकालस्स असंखेज्जावलियत्तं फिट्टिदूण संखेज्जावलियमेत्तअवहारकालप्पसंगा। होदु चे ण, 'आणद-पाणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण। अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेणोत्ति' एदेण दव्वसुत्तेण जुत्तीए सिद्धअसंखेज्जावलियभागहारगब्भेण सह विरोहा।

एवं गदिमग्गणा समत्ता।

शंका—यदि ऐसा है तो वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे युक्त आनतादि कल्पवासी देवोंमें संख्यात आवलियोंसे भाजित पल्योपमप्रमाण जीव क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर वहांके मिथ्यादृष्टि आदिकोंके अवहारकालके असंख्यात आवलीपना न रहकर संख्यात आवलीमात्र अवहारकाल प्राप्त होनेका प्रसंग आ जायगा।

शंका—यदि मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंके अवहारकाल संख्यात आवलीप्रमाण प्राप्त होते हैं, तो होने दो?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर 'आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नवग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने है? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है। नव अनुदिशोंसे लेकर अपराजितनामक अनुत्तर विमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है'। इस प्रकार युक्तिसे सिद्ध असंख्यात आवलीप्रमाण भागहार जिनके गर्भमें है, ऐसे इन द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

दव्वाणु. ७१-७२. (भा. ३, पृ. २८१-२८२.)

इंदियाणुवादेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु ओघं । णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] ॥ १०३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे– सेसिंदिएसु एगगुणट्ठाणेसु अप्पाबहुअस्साभाव-पदुप्पायणमुहेण पंचिंदियप्पाबहुअपदुप्पायणट्ठं पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तगहणं कदं । जधा ओघम्मि अप्पाबहुअं कदं, तधा एत्थ वि अणूणाहियमप्पाबहुअं कायव्वं । णवरि एत्थ असंजदसम्मादिट्ठीहिंतो मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा त्ति अभणिदूण असंखेज्जगुणा त्ति वत्तव्वं, अणंताणं पंचिंदियाणमभावा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि । अथवा पंचिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्तमिच्छादिट्ठीणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? सग-सगअसंजदसम्मादिट्ठिरासी ।

....

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है । केवल विशेषता यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– शेष इन्द्रियवाले अर्थात् पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंसे अतिरिक्त जीवोंमें एक गुणस्थान होता है, इसलिए उनमें अल्पबहुत्वके अभावके प्रतिपादनद्वारा पंचेन्द्रियोंके अल्पबहुत्वके प्रतिपादन करनेके लिए सूत्रमें पंचे-न्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है । जिस प्रकार ओघमें अल्पबहुत्वका कथन किया है, उसी प्रकार यहां भी हीनता और अधिकतासे रहित अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि यहांपर असंयतसम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंसे मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय अनन्तगुणित हैं, ऐसा न कहकर असंख्यातगुणित हैं, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, अनन्त पंचेन्द्रिय जीवोंका अभाव है । पंचेन्द्रिय असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, यहां गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणियां कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है । अथवा, पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक मिथ्यादृष्टियोंका असंख्यातवां भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? अपनी अपनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि प्रतिभाग है ।

....

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियेषु गुणस्थानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभावः । इन्द्रियं प्रत्युच्यते-पंचेन्द्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तरं बहवः । पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत् । अयं तु विशेषः-मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

सत्थाण-सव्वपरत्थाणअप्पाबहुआणि एत्थ किण्ण परूविदाणि? ण, परत्थाणादो चेव तेसिं दोण्हमवगमा।

एवं इंदियमग्गणा सम्मत्ता।

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु ओघं। णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] ॥ १०४ ॥

एदस्सत्थो– एगगुणट्ठाण-सेसकाएसु अप्पाबहुअं णत्थि त्ति जाणावणट्ठं तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तगहणं कदं। एदेसु दोसु वि अप्पाबहुअं जधा ओघम्मि कदं, तधा कादव्वं, विसेसाभावा। णवरि सग-सगअसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो मिच्छादिट्ठीणं अणंतगुणत्ते पत्ते तप्पडिसेहट्ठमसंखेज्जगुणा त्ति उत्तं, तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ताणमाणंतियाभावादो। को गुणगारो? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदि-

---

शंका—स्वस्थान-अल्पबहुत्व और सर्वपरस्थान-अल्पबहुत्व यहांपर क्यों नहीं कहे?

समाधान—नहीं, क्योंकि, परस्थान-अल्पबहुत्वसे ही उन दोनों प्रकारके अल्पबहुत्वोंका ज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है। केवल विशेषता यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १०४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– एकमात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवाले शेष स्थावरकायिक और त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है, यह ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है। जिस प्रकार ओघप्ररूपणामें अल्पबहुत्व कह आए हैं, उसी प्रकार त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तक, इन दोनोंमें भी अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए, क्योंकि, ओघ-अल्पबहुत्वसे इनके अल्पबहुत्वमें कोई विशेषता नहीं है। केवल अपने अपने असंयत-सम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे मिथ्यादृष्टियोंके प्रमाणके अनन्तगुणत्व प्राप्त होनेपर उसके प्रतिषेध करनेके लिए असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, ऐसा कहा है, क्योंकि, त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण अनन्त नहीं है। गुणकार क्या है? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असं-

---

१ कायानुवादेन स्थावरकायेषु गुणस्थानभेदाभावादल्पबहुत्वाभावः। कायं प्रत्युच्यते। सर्वतस्तेजस्कायिका अल्पाः। ततो बहवः पृथिवीकायिकाः। ततोऽप्कायिकाः। ततो वातकायिकाः। सर्वतोऽनन्तगुणा वनस्पतयः। त्रसकायिकानां पंचेन्द्रियवत्। स. सि. १, ८.

भागमेत्ताओ। को पडिभागो? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि। सेसं सुगमं।

एवं कायमग्गणा समत्ता।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु तीसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥१०५॥

एदेहि उत्तसव्वजोगेहि सह उवसमसेढिं चढंताणं उक्कस्सेण चउवण्णत्तमत्थि त्ति तुल्लत्तं परूविदं। उवरिमगुणट्ठाणजीवेहिंतो ऊणा त्ति थोवा त्ति परूविदा। एदेसिं बारसण्हमप्पाबहुआणं तिसु अद्धासु ट्ठिदउवसमगा मूलपदं जादा।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १०६ ॥

सुगममेदं।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १०७ ॥

अट्ठुत्तरसदपरिमाणत्तादो।

ख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं। प्रतिभाग क्या है? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण हैं। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य और अल्प हैं ॥ १०५ ॥

इन सूत्रोक्त सर्व योगोंके साथ उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाले उपशामक जीवोंकी संख्या उत्कर्षसे चौपन होती है, इसलिए उनकी तुल्यता कही है। तथा उपरिम अर्थात् क्षपकश्रेणीसम्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवोंसे कम होते हैं, इसलिए उन्हें अल्प कहा है। इस प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी, इन बारह अल्पबहुत्वोंका प्रमाण लानेके लिए अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानोंमें स्थित उपशामक मूलपद अर्थात् अल्पबहुत्वके आधार हुए।

उक्त बारह योगवाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त बारह योगवाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, क्षपकोंकी संख्याका प्रमाण एक सौ आठ है।

---

१ योगानुवादेन वाङ्मानसयोगिनां पंचेन्द्रियवत्। काययोगिनां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १०८ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ १०९ ॥

एदं पि सुगमं । जेसु जोगेसु सजोगिगुणट्ठाणं संभवदि, तेसिं चेवेदमप्पाबहुअं घेत्तव्वं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ११० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । जहा ओघम्हि संखेज्जसमयसाहणं कदं, तहा एत्थ वि कायव्वं ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १११ ॥

एत्थ वि जहा ओघम्हि गुणगारो साहिदो तहा साहेदव्वो । णवरि अप्पिदजोग-जीवरासिपमाणं णादूण अप्पाबहुअं कायव्वं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥

उक्त बारह योगवाले क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली जीव प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । किन्तु उपर्युक्त बारह योगोंमेंसे जिन योगोंमें सयोगि-केवली गुणस्थान सम्भव है, उन योगोंका ही यह अल्पबहुत्व ग्रहण करना चाहिए ।

सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ११० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । जिस प्रकार ओघमें संख्यात समयरूप गुणकारका साधन किया है, उसी प्रकार यहांपर भी करना चाहिए ।

सयोगिकेवलीसे उपर्युक्त बारह योगवाले अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १११ ॥

जिस प्रकारसे ओघमें गुणकार सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहांपर भी सिद्ध करना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि विवक्षित योगवाली जीवराशिके प्रमाणको जानकर अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

उक्त बारह योगवाले अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११२ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ११५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ वि कारणं णिहालिय वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । जोगद्धाणं समासं कादूण तेण सामण्णरासिमोवट्टिय अप्पिदजोगद्धाए गुणिदे इच्छिद-इच्छिदरासीओ होंति । अणेण पयारेण सव्वत्थ दव्वपमाणमुप्पाइय अप्पाबहुअं वत्तव्वं ।

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त बारह योगवाले प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११३ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उक्त बारह योगवाले संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसका कारण जानकर कहना चाहिए (देखो इसी भागका पृ. २४९) ।

उक्त बारह योगवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहां पर भी इसका कारण स्मरण कर कहना चाहिए (देखो इसी भागका पृ. २५०) ।

उक्त बारह योगवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । योगसम्बन्धी कालोंका समास (योग) करके उससे सामान्यराशिको भाजित कर पुनः विवक्षित योगके कालसे गुणा करनेपर इच्छित इच्छित योगवाले जीवोंकी राशियां हो जाती हैं । इस प्रकारसे सर्वत्र द्रव्यप्रमाणको उत्पन्न करके उनका अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ ११७ ॥

एत्थ एवं संबंधो कायव्वो । तं जहा– पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिअसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव जोगाणं मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि । कायजोगि-ओरालियकायजोगिअसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव जोगाणं मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धेहिं वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि त्ति ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ ११८ ॥

एदेसिं गुणट्ठाणाणं जधा ओघम्हि सम्मत्तप्पाबहुअं उत्तं, तधा एत्थ वि अणूणाहियं वत्तव्वं ।

....

उक्त बारह योगवाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे (पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी) मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, और (काययोगी तथा औदारिककाययोगी) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ११७ ॥

यहांपर इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए । जैसे– पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या हैं ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणियां कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है । काययोगी और औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उक्त बारह योगवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ११८ ॥

इन सूत्रोक्त चारों गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात् तत्प्रमाण ही अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ ११९ ॥

सुगममेदं ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १२० ॥

एदं पि सुगमं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥

अप्पिदजोगउवसामगेहिंतो अप्पिदजोगाणं खवा संखेज्जगुणा । एत्थ पक्खेव-संखेवेण मूलरासिमोवट्टिय अप्पिदपक्खेवेण गुणिय इच्छिदरासिपमाणमुप्पाएदव्वं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥१२२॥

कवाडे चडणोयरणकिरियावावदचालीसजीवमवलंबादो थोवा जादा ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥

कुदो ? देव-णेरइय-मणुस्सेहिंतो आगंतूण तिरिक्खमणुसेसुप्पण्णाणं असंजद-सम्मादिट्ठीणमोरालियमिस्सम्हि सजोगिकेवलीहिंतो संखेज्जगुणाणमुवलंभा ।

इसी प्रकार उक्त बारह योगवाले जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त बारह योगवाले जीवोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त बारह योगवाले उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२१ ॥

विवक्षित योगवाले उपशामकोंसे विवक्षित योगवाले क्षपक जीव संख्यातगुणित होते हैं । यहांपर प्रक्षेप-संक्षेपके द्वारा मूलजीवराशिको भाजित करके विवक्षित प्रक्षेप-राशिसे गुणा कर इच्छित राशिका प्रमाण उत्पन्न कर लेना चाहिए (देखो द्रव्यप्र. भाग ३ पृ. ४८-४९) ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, कपाटसमुद्घातके समय आरोहण और अवतरणक्रियामें संलग्न चालीस जीवोंके अवलम्बनसे औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हो जाते हैं ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२३ ॥

क्योंकि, देव, नारकी और मनुष्योंसे आकर तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगमें सयोगिकेवली जिनोंसे संख्यात-गुणित पाये जाते हैं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १२४ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १२६ ॥

दंसणमोहणीयखएणुप्पण्णसद्दहणाणं जीवाणमइदुल्लभत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

खओवसमियसम्मत्ताणं जीवाणं बहूणमुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिभंगो ॥ १२८ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १२४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त-गुणित हैं ॥ १२५ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२६ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए श्रद्धानवाले जीवोंका होना अतिदुर्लभ है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १२७ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववाले जीव बहुत पाये जाते हैं । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें (संभव गुणस्थानवर्ती जीवोंका) अल्पबहुत्व देवगतिके समान है ॥ १२८ ॥

जधा देवगदिम्हि अप्पाबहुअं उत्तं, तधा वेउव्वियकायजोगीसु वत्तव्वं। तं जधा— सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी। सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा। असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा। मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा। असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी। खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा। वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥१२९॥

कारणं पुव्वं व वत्तव्वं।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एत्थ कारणं संभालिय वत्तव्वं।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि।

जिस प्रकार देवगतिमें जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार वैक्रियिककाययोगियोंमें कहना चाहिए। जैसे— वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं। उनसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। उनसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें वैक्रियिककाययोगी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२९ ॥

इसका कारण पूर्वके समान कहना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। यहांपर कारण संभालकर कहना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३१ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण है। वे जगश्रेणियां भी जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं। प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १३२ ॥

कुदो ? उवसमसम्मत्तेण सह उवसमसेढिम्हि मदजीवाणमइथोवत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३३ ॥

उवसामगेहिंतो संखेज्जगुणअसंजदसम्मादिट्ठिआदिगुणट्ठाणेहिंतो संचयसंभवादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३४ ॥

तिरिक्खेहिंतो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवेदगसम्मादिट्ठिजीवाणं देवेसु उववादसंभवादो । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १३५ ॥

सुगममेदं ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १३२ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें मरे हुए जीवोंका प्रमाण अत्यन्त अल्प होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३३ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीमें मरे हुए उपशामकोंसे संख्यातगुणित असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका संचय सम्भव है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३४ ॥

क्योंकि, तिर्यंचोंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका देवोंमें उत्पन्न होना संभव है । गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

एदं पि सुगमं। उवसमसम्मादिट्ठीणमेत्थ संभवाभावा तेसिमप्पाबहुगं ण कहिदं। किमट्ठं उवसमसम्मत्तेण आहाररिद्धी ण उप्पज्जदि ? उवसमसम्मत्तकालम्हि अइदहरम्हि तदुप्पत्तीए संभवाभावा। ण उवसमसेडिम्हि उवसमसम्मत्तेण आहाररिद्धीओ लब्भइ, तत्थ पमादाभावा। ण च तत्तो ओइण्णाण आहाररिद्धी उवलब्भइ, जत्तियमेत्तेण कालेण आहाररिद्धी उप्पज्जइ, उवसमसम्मत्तस्स तत्तियमेत्तकालमवट्ठाणाभावा।

कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ १३७ ॥

कुदो ? पदर-लोगपूरणेसु उक्कस्सेण सट्ठिमेत्तसजोगिकेवलीणमुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है। इन दोनों योगोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका होना सम्भव नहीं है, इसलिए उनका अल्पबहुत्व नहीं कहा है।

शंका—उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारकऋद्धि क्यों नहीं उत्पन्न होती है ?

समाधान—क्योंकि, अत्यन्त अल्प उपशमसम्यक्त्वके कालमें आहारकऋद्धिका उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। न उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें आहारकऋद्धि पाई जाती है, क्योंकि, वहांपर प्रमादका अभाव है। न उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवोंके भी उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारकऋद्धि पाई जाती है, क्योंकि, जितने कालके द्वारा आहारकऋद्धि उत्पन्न होती है, उपशमसम्यक्त्वका उतने काल तक अवस्थान नहीं रहता है।

कार्मणकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ १३७ ॥

क्योंकि, प्रतर और लोकपूरणसमुद्धातमें अधिकसे अधिक केवल साठ सयोगिकेवली जिन पाये जाते हैं।

कार्मणकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं णादूण वत्तव्वं ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १४० ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १४१ ॥

कुदो ? उवसमसेडिम्हि उवसमसम्मत्तेण मदसंजदाणं संखेज्जत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखइयसम्मादिट्ठीहिंतो असंखेज्जजीवा विग्गहं किण्ण करेंति त्ति उत्ते उच्चदे– ण ताव देवा खइयसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जा अक्कमेण मरंति, मणुसेसु असंखेज्जखइयसम्मादिट्ठिप्पसंगा । ण च मणुसेसु असंखेज्जा मरंति,

---

कार्मणकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहांपर इसका कारण जानकर कहना चाहिए । (देखो इसी भागका पृ. २५१ और तृतीय भागका पृ. ४११)

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४० ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १४१ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीमें उपशमसम्यक्त्वके साथ मरे हुए संयतोंका प्रमाण संख्यात ही होता है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४२ ॥

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यात जीव विग्रह क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—ऐसी आशंकापर आचार्य कहते हैं कि न तो असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव एक साथ मरते हैं, अन्यथा मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके होनेका प्रसंग आ जायगा । न मनुष्योंमें ही असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरते हैं,

तत्थासंखेज्जाणं सम्मादिट्ठीणमभावा । ण तिरिक्खा असंखेज्जा मारणंतियं करेंति, तत्थ आयाणुसारिवयत्तादो । तेण विग्गहगदीए खइयसम्मादिट्ठिणो संखेज्जा चेव होंति । होंता वि उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो संखेज्जगुणा, उवसमसम्मादिट्ठिकारणादो खइयसम्मादिट्ठिकारणस्स संखेज्जगुणत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । को पडिभागो ? खइयसम्मादिट्ठिरासिगुणिदअसंखेज्जावलियाओ ।

एवं जोगमग्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ १४४ ॥

क्योंकि, उनमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अभाव है । न असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यंच ही मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, क्योंकि, उनमें आयके अनुसार व्यय होता है । इसलिए विग्रहगतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । तथा संख्यात होते हुए भी वे उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंके (आयके) कारणसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके (आयका) कारण संख्यातगुणा है ।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें पाये जानेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीव तो केवल उपशमश्रेणीसे मरकर ही आते हैं, किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीके अतिरिक्त असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंसे मरकर भी कार्मणकाययोगमें पाये जाते हैं । अतः उनका संख्यातगुणित पाया जाना स्वतः सिद्ध है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४३ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिसे गुणित असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों ही गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १४४ ॥

---

१ वेदानुवादेन स्त्री-पुंवेदानां पंचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

दसपरिमाणत्तादो[1]।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १४५ ॥

वीसपरिमाणत्तादो[1]।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १४६ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १४७ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १४८ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। को पडिभागो ? संखेज्जरूवगुणिदअसंखेज्जावलियाओ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। किं कारणं ? असुहसासणगुणस्स

क्योंकि, स्त्रीवेदी उपशामक जीवोंका प्रमाण दस है।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४५ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण वीस है।

स्त्रीवेदियोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४६ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

स्त्रीवेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४७ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है।

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? संख्यात रूपोंसे गुणित असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है।

स्त्रीवेदियोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—इसका कारण क्या है ?

समाधान—क्योंकि, अशुभ सासादनगुणस्थानका पाना सुलभ है।

---

१ गो. जी. ६३०. वीसित्थीगाउ. प्रवच. द्वा. ५३.

सुलहत्तादो ।

सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । किं कारणं ? सासणायादो संखेज्जगुणाय-संभवादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । किं कारणं? सम्मामिच्छादिट्ठि-आयं पेक्खिदूण असंखेज्जगुणायत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५२ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १५३ ॥

स्त्रीवेदियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । इसका कारण यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी आयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्यातगुणित आय सम्भव है, अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें जितने जीव आते हैं, उनसे संख्यातगुणित जीव तीसरे गुणस्थानमें आते हैं ।

स्त्रीवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसका कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी आयको देखते हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी असंख्यातगुणी आय होती है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥१५२॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५३ ॥

संखेज्जरूवमेत्तत्तादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५४ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जावलियपडिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १५६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं दोसु अद्धासु ॥ १५९ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें संख्यात रूपमात्र ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५८ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदियोंका अल्पबहुत्व है ॥ १५९ ॥

सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, इच्चेदेण साधम्मादो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १६० ॥

एदं सुत्तं पुणरुत्तं किण्ण होदि ? ण, एत्थ पवेसएहि अहियाराभावा । संचएण एत्थ अहियारो, ण सो पुव्वं परूविदो । तदो ण पुणरुत्तत्तमिदि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १६२ ॥

चउवण्णपमाणत्तादो[1] ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥

अट्ठुत्तरसदमेत्तत्तादो[2] ।

क्योंकि, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, और उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणित होते हैं, इस प्रकार ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १६० ॥

शंका—यह सूत्र पुनरुक्त क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर प्रवेशकी अपेक्षा इस सूत्रका अधिकार नहीं है, किन्तु संचयकी अपेक्षा यहांपर अधिकार है और वह संचय पहले प्ररूपण नहीं किया गया है । इसलिये यहांपर कहे गये सूत्रके पुनरुक्तता नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १६२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

पुरुषवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६३ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

१ गो. जी. ६२९. २ गो. जी. ६२९. पुरिसाण अट्ठसयं एगसमयओ सिज्झे । प्रवच. द्वा. ५३.

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १६४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६६ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १६८ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । सेसं सुगमं ।

पुरुषवेदियोंमें दोनों गुणस्थानोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ १६४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

पुरुषवेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

पुरुषवेदियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६६ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

पुरुषवेदियोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पुरुषवेदियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १७० ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ १७१ ॥

एदेसिं जधा ओघम्हि सम्मत्तप्पाबहुअं उत्तं तधा वत्तव्वं ।

एवं[1] दोसु अद्धासु ॥ १७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी, खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा; इच्चेदेहि साधम्मादो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १७३ ॥

पुरुषवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

पुरुषवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १७० ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है ।

पुरुषवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ १७१ ॥

इन गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर कहना चाहिए ।

इसी प्रकार पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ १७२ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणित हैं, इस प्रकार ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

पुरुषवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १७३ ॥

---

१ प्रतिषु ' एदं ' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १७४ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

णउंसयवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ १७५ ॥

कुदो ? पंचपरिमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १७६ ॥

कुदो ? दसपरिमाणत्तादो[2] ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १७७ ॥

कुदो ? संचयरासिपडिग्गहादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १७८ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १७४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १७५ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण पांच है ।

नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव प्रवेशकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १७६ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण दस है ।

नपुंसकवेदियोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १७७ ॥

क्योंकि, उनकी संचयराशिको ग्रहण किया गया है ।

नपुंसकवेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १७८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

---

१ नपुंसकवेदानां ×× सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ गो. जी. ६३०. दस चेव नपुंसा तह । प्रवच. द्वा. ५३.

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १७९ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १८० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १८१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कारणं चिंतिय वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १८२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १८३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

नपुंसकवेदियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १७९ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

नपुंसकवेदियोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १८० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नपुंसकवेदियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १८१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । इसका कारण विचारकर कहना चाहिए (देखो भाग ३ पृ. ४१८ इत्यादि) ।

नपुंसकवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १८२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

नपुंसकवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १८३ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ १८४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे– सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी । खइय-सम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? पढमपुढवीखइयसम्मादिट्ठीणं पहाणत्तब्भुवगमादो । वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

संजदासंजदाणं-सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी । कुदो ? मणुसपज्जत्तणउंसयवेदे मोत्तूण तेसिमण्णत्थाभावा । उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पलिदो-वमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १८५ ॥

नपुंसकवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ १८४ ॥

इनमेंसे पहले असंयतसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका अल्पबहुत्व कहते हैं– नपुंसकवेदी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं । उनसे नपुंसकवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यहांपर प्रथम पृथिवीके क्षायिकसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंकी प्रधानता स्वीकार की गई है । नपुंसकवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे नपुंसकवेदी वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असं-ख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

संयतासंयत नपुंसकवेदी जीवोंका अल्पबहुत्व कहते हैं– नपुंसकवेदी संयता-संयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि, मनुष्य-पर्याप्तक नपुंसकवेदी जीवोंको छोड़कर उनका अन्यत्र अभाव है । नपुंसकवेदी संयतासंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । नपुंसकवेदी संयता-संयत उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

नपुंसकवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८५ ॥

कुदो ? अप्पसत्थवेदोदएण बहूणं दंसणमोहणीयखवगाणमभावा ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १८६ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १८७ ॥

सुगमाणि दो वि सुत्ताणि ।

एवं दोसु अद्धासु ॥ १८८ ॥

जधा पमत्तापमत्ताणं सम्मत्तप्पाबहुअं परूविदं, तधा दोसु अद्धासु सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा त्ति परूवेयव्वं ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १८९ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९० ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

क्योंकि, अप्रशस्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयके क्षपण करनेवाले बहुत जीवोंका अभाव है ।

नपुंसकवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १८६ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १८७ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इसी प्रकार नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ १८८ ॥

जिस प्रकारसे नपुंसकवेदी प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार अपूर्वकरण आदि दो गुणस्थानोंमें 'क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं' इस प्रकार प्ररूपण करना चाहिए ।

नपुंसकवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १८९ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १९० ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अवगदवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ १९१ ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९२ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९३ ॥

कुदो ? अट्ठुत्तरसदपमाणत्तादो[2] ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ १९५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं वेदमग्गणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९२ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अपगतवेदियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, इनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अपगतवेदियोंमें क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९४ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १९६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ ×× अवेदानां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.   २ गो. जी. ६२९.

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ १९७ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९८ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

णवरि विसेसा, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसाहिया ॥ १९९ ॥

दोउवसामयपवेसएहिंतो संखेज्जगुणे[2] दोगुणट्ठाणपवेसयक्खवए पेक्खिदूण कधं सुहुमसांपराइयउवसामया विसेसाहिया ? ण एस दोसो, लोभकसाएण खवएसु पविसंतजीवे पेक्खिदूण तेसिं सुहुमसांपराइयउवसामएसु पविसंताणं चउवण्णपरिमाणाणं

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १९८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

केवल विशेषता यह है कि लोभकषायी जीवोंमें क्षपकोंसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक हैं ॥ १९९ ॥

शंका—अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशामक गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवाले इन्हीं दो गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले क्षपकोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, लोभकषायके उदयसे क्षपकोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंको देखते हुए लोभकषायके उदयसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंमें प्रवेश करनेवाले और चौपन संख्यारूप परिमाणवाले उन लोभकषायी जीवोंके विशेष

---

१ कषायानुवादेन क्रोधमानमायाकषायाणां पुंवेदवत् । ××× लोभकषायाणां द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या संख्या । क्षपकाः संख्येयगुणाः । सूक्ष्मसाम्परायशुद्ध्युपशमकसंयताः विशेषाधिकाः । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु ' संखेज्जगुणो '-इति पाठः ।

विसेसाहियत्ताविरोहा । कुदो ? लोभकसाईसु त्ति विसेसणादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २०० ॥

उवसामगेहिंतो खवगाणं दुगुणत्तुवलंभा ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २०१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०२ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि । चदुकसायअप्पमत्तसंजदाणमेत्थ संदिट्ठी २ । ३ । ४ । ७ । पमत्तसंजदाणं संदिट्ठी ४ । ६ । ८ । १४ ।

अधिक होनेमें कोई विरोध नहीं है । विरोध न होनेका कारण यह है कि सूत्रमें 'लोभकषायी जीवोंमें' ऐसा विशेषणपद दिया गया है ।

लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंसे सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ २०० ॥

क्योंकि, उपशामकोंसे क्षपक जीवोंका प्रमाण दुगुणा पाया जाता है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २०१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २०२ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है । यहां चारों कषायवाले अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण या अल्पबहुत्व बतलानेवाली अंकसंदृष्टि इस प्रकार है– २ । ३ । ४ । ७ । तथा चारों कषायवाले प्रमत्तसंयतोंकी अंकसंदृष्टि ४ । ६ । ८ और १४ है ।

विशेषार्थ—यहां पर चतुःकषायी अप्रमत्त और प्रमत्त संयतोंके प्रमाणका ज्ञान करानेके लिये जो अंकसंदृष्टि बतलाई गई है, उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य-तिर्यंचोंमें मानकषायका काल सबसे कम है, उससे क्रोध, माया और लोभकषायका काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक होता है । (देखो भाग ३, पृ. ४२५) । तदनुसार यहां पर अप्रमत्तसंयत और प्रमत्तसंयतोंका अंकसंदृष्टि द्वारा प्रमाण बतलाया गया है कि मानकषायवाले अप्रमत्तसंयत सबसे कम हैं, जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (२) दो बतलाया गया है । इनसे क्रोधकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (३) तीन बतलाया गया है । इनसे मायाकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (४) चार बतलाया गया है । इनसे लोभकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (७) सात बतलाया गया है । चूंकि अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दुगुणा माना गया है, इसलिए यहां अंकसंदृष्टिमें भी उनका प्रमाण क्रमशः दूना ४, ६, ८ और १४ बतलाया गया है । यह अंकसंख्या काल्पनिक है, और उसका अभिप्राय स्थूल रूपसे चारों कषायोंका

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[1] ॥ २०३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २०४ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २०६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा[2] ॥ २०७ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

परस्पर आपेक्षिक प्रमाण बतलाना मात्र है। इसी हीनाधिकताके लिए देखो भाग ३, पृ. ४३४ आदि।

चारों कषायवाले जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥२०३॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

चारों कषायवाले जीवोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २०४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ २०५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २०६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं ॥ २०७ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा प्रमाण गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

---

१ प्रतिषु 'संजदासंजदासंखेज्जगुणा' इति पाठः ।

२ अयं तु विशेषः मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ २०८ ॥

एदेसिं जधा ओघम्हि सम्मत्तप्पाबहुअं उत्तं तधा वत्तव्वं, विसेसाभावादो ।

एवं दोसु अद्धासु ॥ २०९ ॥

जधा पमत्तापमत्ताणं सम्मत्तप्पाबहुअं परूविदं, तधा दोसु अद्धासु परूवेदव्वं । णवरि लोभकसायस्स एवं तिसु अद्धासु त्ति वत्तव्वं, जाव सुहुमसांपराइओ त्ति लोभकसायउवलंभा । एवं सुत्ते किण्ण परूविदं ? परूविदमेव पवेसप्पाबहुअसुत्तेण । तेणेव एसो अत्थो णव्वदि त्ति पुध ण परूविदो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २१० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २११ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

चारों कषायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २०८ ॥

इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर कहना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें चारों कषायवाले जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २०९ ॥

जिस प्रकारसे चारों कषायवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो गुणस्थानोंमें कहना चाहिए । किन्तु विशेषता यह है कि लोभकषायका इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक लोभकषायका सद्भाव पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो इसी प्रकारसे सूत्रमें क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा सूत्रमें उक्त बात प्ररूपित की ही गई है । और उसी प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा यह ऊपर कहा गया अर्थ जाना जाता है, इसलिए उसे यहांपर पृथक् नहीं कहा है ।

चारों कषायवाले उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २१० ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २११ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अकसाईसु सव्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ॥२१२॥

चउवण्णपरिमाणत्तादो[1] ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ॥ २१३ ॥

अट्ठुत्तरसदपरिमाणत्तादो[1] ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २१५ ॥

कुदो ? अणूणाधियओघरासित्तादो ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगण्णाणीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी[2] ॥ २१६ ॥

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ सबसे कम हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ संख्यातगुणित हैं ॥ २१३ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सौ आठ है ।

अकषायी जीवोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकषायी जीवोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥२१५॥

क्योंकि, उनका प्रमाण ओघराशिसे न कम है, न अधिक है ।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २१६ ॥

---

१ गो. जी. ६२९.

२ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानि-श्रुताज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । स. सि. १, ८.

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] ॥२१७॥

एत्थ एवं[2] संबंधो कीरदे– मदि-सुदअण्णाणिसासणेहिंतो मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा। को गुणगारो ? सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागो । विभंगणाणिसासणेहिंतो तेसिं चेव मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। को पडिभागो? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि त्ति । अण्णहा विप्पडिसेहत्तादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[3] ॥ २१८ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २१९ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र है ।

उक्त तीनों अज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं, मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २१७ ॥

यहांपर इस प्रकार सूत्रार्थ-सम्बन्ध करना चाहिए– मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं। गुणकार क्या है? सर्व जीवराशिका असंख्यातवां भाग गुणकार है। विभंगज्ञानी सासादन-सम्यग्दृष्टियोंसे उनके ही मिथ्यादृष्टि अर्थात् विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। गुणकार क्या है? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है। यदि इस प्रकार सूत्रका अर्थ न किया जायगा, तो परस्पर विरोध प्राप्त होगा ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २१८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २१९ ॥

---

१ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'एदं' इति पाठः ।

३ मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । स. सि. १, ८.

एदं पि सुगमं ।

खवा संखेज्जगुणा[1] ॥ २२० ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ २२१ ॥

सुगममेदं ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा[2] ॥ २२२ ॥

कुदो ? अणूणाहियओघरासित्तादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[3] ॥ २२३ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[4] ॥ २२४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंसे क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण ओघराशिसे न कम है, न अधिक है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २२४ ॥

---

१ चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

४ संयतासंयताः (अ-) संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] ॥ २२५ ॥

कुदो ? पहाणीकयदेवअसंजदसम्मादिट्ठिरासित्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुगमोघं ॥ २२६ ॥

जधा ओघम्हि एदेसिं सम्मत्तप्पाबहुअं परूविदं, तधा परूवेदव्वमिदि वुत्तं होदि ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ २२७ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २२८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २२९ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

क्योंकि, उनका परिमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २२५ ॥

क्योंकि, यहांपर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी राशि प्रधानतासे स्वीकार की गई है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २२६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी प्ररूपण करना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

इसी प्रकार मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २२७ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २२८ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२९ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टयः (अ-) संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ २३० ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २३१ ॥

खवा संखेज्जगुणा[2] ॥ २३२ ॥

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २३३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा[3] ॥ २३४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जरूवाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[4] ॥ २३५ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥२३६॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २३० ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३२ ॥

क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥२३५॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २३६ ॥

---

१ मनःपर्ययज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशामकाः । स. सि. १, ८. तेषां संख्या १० । गो. जी. ६३०.

२ चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८. तेषां संख्या २० । गो. जी. ६३०.

३ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

४ प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

उवसमसेडीदो ओदिण्णाणं[1] उवसमसेढिं चढमाणाणं वा उवसमसम्मत्तेण थोवाणं जीवाणमुवलंभा ।

खइयसम्माइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २३७ ॥

खइयसम्मत्तेण मणपज्जवणाणिमुणिवराणं बहूणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २३८ ॥

सुगममेदं ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ २३९ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २४० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४१ ॥

एदाणि तिण्णि सुत्ताणि सुगमाणि, बहुसो परूविदत्तादो ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २४२ ॥

....

क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले, अथवा उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले मनःपर्ययज्ञानी थोड़े जीव उपशमसम्यक्त्वके साथ पाये जाते हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३७ ॥

क्योंकि, उक्त गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ बहुतसे मनःपर्ययज्ञानी मुनिवर पाये जाते हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २३९ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २४० ॥

उपशामक जीवोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४१ ॥

ये तीनों सूत्र सुगम हैं, क्योंकि, वे बहुत वार प्ररूपण किये जा चुके हैं ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और तावन्मात्र ही हैं ॥ २४२ ॥

....

१ अ-कप्रत्योः 'ओहिणाणं' आप्रतौ 'ओधिणाणं' इति पाठः ।

तुल्ला तत्तिया सद्दा हेउ-हेउमंतभावेण जोजेयव्वा । तं कधं ? जेण तुल्ला, तेण तत्तिया त्ति । केत्तिया ते ? अट्ठुत्तरसयमेत्ता ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४३ ॥

पुव्वकोडिकालम्हि संचयं गदा सजोगिकेवलिणो एगसमयपवेसगेहिंतो संखेज्जगुणा, संखेज्जगुणेण कालेण मिलिदत्तादो ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ २४४ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४५ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४६ ॥

तुल्य और तावन्मात्र, ये दोनों शब्द हेतु-हेतुमद्भावसे सम्बन्धित करना चाहिए।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—चूंकि, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली परस्पर तुल्य हैं, इसलिए वे तावन्मात्र अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण हैं ।

शंका—वे कितने हैं ?

समाधान—वे एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥२४३॥[१]

पूर्वकोटीप्रमाण कालमें संचयको प्राप्त हुए सयोगिकेवली एक समयमें प्रवेश करनेवालोंकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, वे संख्यातगुणित कालसे संचित हुए हैं ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २४४ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

संयतोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥२४६॥

---

१ केवलज्ञानिषु अयोगकेवलिभ्यः सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि । किं कारणं ? जेण णाण-वेदादिसव्ववियप्पेसु उवसमसेडिं चडंतजीवेहिंतो खवगसेडिं चढंतजीवा दुगुणा त्ति आइरिओवदेसादो । एग-समएण तित्थयरा छ खवगसेडिं चडंति । दस पत्तेयबुद्धा चढंति, बोहियबुद्धा अट्ठुत्तर-सयमेत्ता, सग्गच्चुआ तत्तिया चेव । उक्कस्सोगाहणाए दोण्णि खवगसेडिं चडंति[1], जहण्णोगाहणाए चत्तारि, मज्झिमोगाहणाए अट्ठ । पुरिसवेदेण अट्ठुत्तरसयमेत्ता, णउंसय-वेदेण दस, इत्थिवेदेण वीसं । एदेसिमद्धमेत्ता उवसमसेढिं चढंति[2] त्ति घेत्तव्वं ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४७ ॥

केत्तिया ? अट्ठुत्तरसयमेत्ता । कुदो ? संजमसामण्णविवक्खादो ।

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शंका—क्षपकोंका गुणकार दो होनेका कारण क्या है ?

समाधान—चूंकि, ज्ञान, वेद आदि सर्व विकल्पोंमें उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव दुगुणे होते हैं, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है ।

एक समयमें एक साथ छह तीर्थंकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । दश प्रत्येकबुद्ध, एक सौ आठ बोधितबुद्ध और स्वर्गसे च्युत होकर आये हुए उतने ही जीव अर्थात् एक सौ आठ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । जघन्य अवगाहनावाले चार और ठीक मध्यम अवगाहनावाले आठ जीव एक साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । पुरुषवेदके उदयके साथ एक सौ आठ, नपुंसकवेदके उदयसे दश और स्त्रीवेदके उदयसे वीस जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । इन उपर्युक्त जीवोंके आधे प्रमाण जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

संयतोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४७ ॥

शंका—क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ कितने होते हैं ?

समाधान—एक सौ आठ होते हैं, क्योंकि, यहांपर संयम-सामान्यकी विवक्षा की गई है ।

१ दो चेवुक्कोसाए चउर जहन्नाए मज्झिमाए उ । अट्ठहियं सयं खलु सिज्झइ ओगाहणाइ तहा ॥ प्रवच द्वा. ५०, ४७५.

२ होंति खवा इगिसमये बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य । उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥ पत्तेयबुद्धतित्थयरत्थिणउंसयमणोहिणाणजुदा । दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥ जेट्ठावरबहुमज्झिमओगाहणगा दु चारि अट्ठेव । जुगवं हवंति खवगा उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥ गो. जी. ६२९-६३१.

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २४८ ॥

सुबोज्झमेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४९ ॥

कुदो ? एगसमयादो संचयकालसमूहस्स संखेज्जगुणत्तुवलंभा ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २५० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ ओघकारणं चिंतिय वत्तव्वं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २५१ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २५२ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५३ ॥

संयतोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४९ ॥

क्योंकि, एक समयकी अपेक्षा संचयकालका समूह संख्यातगुणा पाया जाता है ।

संयतोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहांपर राशिके ओघके समान होनेका कारण चिन्तवन कर कहना चाहिए । इसका कारण यह है कि दोनों स्थानोंपर संयम-सामान्य ही विवक्षित है (देखो सूत्र नं. ८) ।

संयतोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५३ ॥

कुदो ? पुव्वकोडिसंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५४ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ २५५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २५६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ २५८ ॥

खवा संखेज्जगुणा[2] ॥ २५९ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा[3] ॥ २६० ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५४ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति सुलभ है) ।

इसी प्रकार संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २५५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २५८ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५९ ॥

क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६० ॥

१ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसंख्या । स. सि. १, ८.

२ ततः संख्येयगुणौ क्षपकौ । स. सि. १, ८.

३ अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[1] **॥ २६१ ॥**

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥२६२॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६३ ॥

पुव्वकोडिसंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६४ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

एवं दोसु अद्धासु ॥ २६५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २६६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६१ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २६२ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६३ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६४ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति सुलभ है) ।

इसी प्रकार उक्त जीवोंका अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २६५ ॥

उक्त जीवोंमें उपशामक सबसे कम हैं ॥ २६६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ २६७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

---

१ प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

परिहारसुद्धिसंजदेसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा[1] ॥ २६८ ॥

सुगममेदं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[1] ॥ २६९ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥२७०॥

कुदो ? खइयसम्मत्तस्स पउरं संभवाभावा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २७१ ॥

कुदो ? खओवसमियसम्मत्तस्स पउरं संभवादो । एत्थ उवसमसम्मत्तं णत्थि, तीसं वासेण विणा परिहारसुद्धिसंजमस्स संभवाभावा । ण च तेत्तियकालमुवसमसम्मत्तस्सावट्ठाणमत्थि, जेण परिहारसुद्धिसंजमेण उवसमसम्मत्तस्सुवलद्धी होज्ज ? ण च परिहारसुद्धिसंजमछड्डंतस्स उवसमसेडीचडणट्ठं दंसणमोहणीयस्सुवसामणं पि संभवइ, जेणुवसमसेडिम्हि दोण्हं पि संजोगो होज्ज ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६९ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव है । यहां परिहारशुद्धिसंयतोंमें उपशमसम्यक्त्व नहीं होता है, क्योंकि, तीस वर्षके विना परिहारशुद्धिसंयमका होना संभव नहीं है । और न उतने काल तक उपशमसम्यक्त्वका अवस्थान रहता है, जिससें कि परिहारशुद्धिसंयमके साथ उपशमसम्यक्त्वकी उपलब्धि हो सके ? दूसरी वात यह है कि परिहारशुद्धिसंयमको नहीं छोड़नेवाले जीवके उपशमश्रेणीपर चढ़नेके लिए दर्शनमोहनीयकर्मका उपशमन होना भी संभव नहीं है, जिससे कि उपशमश्रेणीमें उपशमसम्यक्त्व और परिहारशुद्धिसंयम, इन दोनोंका भी संयोग हो सके ।

---

१ परिहारविशुद्धिसंयतेषु अप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमा थोवा[१] ॥ २७२ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा[१] ॥ २७३ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

जधाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो[२] ॥ २७४ ॥

जधा अकसाईणमप्पाबहुगं उत्तं तधा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं पि कादव्व-मिदि उत्तं होदि ।

संजदासंजदेसु अप्पाबहुअं णत्थि[३] ॥ २७५ ॥

एयपदत्तादो । एत्थ सम्मत्तप्पाबहुअं उच्चदे । तं जहा—

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७६ ॥

कुदो ? संखेज्जपमाणत्तादो ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक जीव अल्प हैं ॥ २७२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें अल्पबहुत्व अकषायी जीवोंके समान है ॥ २७४ ॥

जिस प्रकार अकषायी जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यथाख्यात-विहारशुद्धिसंयतोंका भी अल्पबहुत्व करना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

संयतासंयत जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, संयतासंयत जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है । यहांपर सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस इस प्रकार है—

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात ही है ।

---

१ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु उपशमकेभ्यः क्षपकाः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतेषु उपशान्तकषायेभ्यः क्षीणकषायाः संख्येयगुणाः । अयोगिकेवलिनस्तावन्त एव । सयोगिकेवलिनः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । स. सि. १, ८.

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २७७ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २७८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

असंजदेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी[1] ॥ २७९ ॥

कुदो ? छावलियसंचयादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[2] ॥ २८० ॥

कुदो ? संखेज्जावलियसंचयादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[3] ॥ २८१ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ २७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसका कारण जानकर कहना चाहिए । (देखो सूत्र नं. २०)।

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७९ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल छह आवलीमात्र है ।

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २८० ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल संख्यात आवलीप्रमाण है ।

असंयतोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है ।

---

१ असंयतेषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । स. सि. १, ८.

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा[1] ॥ २८२ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? साभावियादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥२८३॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८४ ॥

कुदो ? सागरोवमसंचयादो । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ २८२ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है।

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २८३ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है।

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८४ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल सागरोपम है। गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है।

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई।

---

१ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । स. सि. १, ८.

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[1] ॥ २८६ ॥

जधा ओघम्हि एदेसिमप्पाबहुगं परूविदं तधा एत्थ वि परूवेदव्वं, विसेसाभावा। विसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८७ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए[2] असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। कुदो ? साभावियादो।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो[3] ॥ २८८ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो[4] ॥ २८९ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २८६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानवर्ती जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी कहना चाहिए; क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है। अब चक्षुदर्शनी जीवोंमें सम्भव विशेषताके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि चक्षुदर्शनी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २८७ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण है। वे जगश्रेणियां भी जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं। इसका कारण क्या है ? ऐसा स्वभावसे है।

अवधिदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८८ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिनां मनोयोगिवत्। अचक्षुर्दर्शनिनां काययोगिवत्। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'सेडीओ खवगसेडी असंखेज्जदिभागो सेडीए' इति पाठः।

३ अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत्। स. सि. १, ८. ४ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत्। स. सि. १, ८.

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी[1] ॥ २९० ॥

सुगममेदं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २९१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २९३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २९४ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २९१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ २९३ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २९४ ॥

---

१ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यानां असंयतवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? मणुसकिण्ह-णीललेस्सियसंखेज्जखइयसम्मादिट्ठिपरिग्गहादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९५ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? णेरइएसु किण्हलेस्सिएसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तउवसमसम्मादिट्ठीणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

णवरि विसेसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २९७ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९८ ॥

कुदो ? पढमपुढविहिं संचिदखइयसम्मादिट्ठिग्गहणादो । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

क्योंकि, यहां पर कृष्ण और नीललेश्यावाले संख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका ग्रहण किया गया है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९५ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, कृष्णलेश्यावाले नारकियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका सद्भाव पाया जाता है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

केवल विशेपता यह है कि कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २९७ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९८ ॥

क्योंकि, यहां पर प्रथम पृथिवीमें संचित क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका ग्रहण किया गया है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा[1] ॥ ३०० ॥

कुदो ? संखेज्जपरिमाणत्तादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[2] ॥ ३०१ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[3] ॥ ३०२ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? सोहम्मीसाण-सणक्कुमार-माहिंदरासिपरिग्गहादो ।

कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३०० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण संख्यात है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ३०२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यहां पर सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पसम्बन्धी देवराशिको ग्रहण किया गया है ।

१ तेजःपद्मलेश्यानां सर्वतः स्तोका अप्रमत्ताः । स. सि. १, ८.

२ प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ एवमितरेषां पंचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३०४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुवोज्झं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०६ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ ३०७ ॥

जधा ओघम्हि अप्पाबहुअमेदेसिं उत्तं सम्मत्तं पडि, तधा एत्थ सम्मत्तप्पाबहुगं वत्तव्वमिदि वुत्तं होइ ।

....

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०६ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३०७ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

सुक्कलेस्सिएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ ३०८ ॥

सुगममेदं।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३०९ ॥

कुदो? चउवण्णपमाणत्तादो।

खवा संखेज्जगुणा[2] ॥ ३१० ॥

अट्ठुत्तरसदपरिमाणत्तादो।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३११ ॥

सुगममेदं।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा[3] ॥ ३१३ ॥

शुक्लेश्यावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३०८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शुक्लेश्यावालोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३०९ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है।

शुक्लेश्यावालोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सौ आठ है।

शुक्लेश्यावालोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३११ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शुक्लेश्यावालोंमें सयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३१२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

शुक्लेश्यावालोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३१३ ॥

---

१ शुक्लेश्यानां सर्वतः स्तोका उपशमकाः। स. सि. १, ८.

२ क्षपकाः संख्येयगुणाः। स. सि. १, ८.

३ सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः। स. सि. १, ८.

को गुणगारो ? ओघसिद्धो ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा[1] ॥ ३१४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[2] ॥ ३१५ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[3] ॥ ३१६ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[4] ॥ ३१७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[5] ॥ ३१८ ॥

गुणकार क्या है ? ओघमें बतलाया गया गुणकार ही यहांपर गुणकार है ।

शुक्लेश्यावालोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्लेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥३१५॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शुक्लेश्यावालोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३१६॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

शुक्लेश्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्लेश्यावालोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१८ ॥

---

१ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ संयतासंयताः (अ-) संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

४ सासादनसम्यग्दृष्टयः (अ-) संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

५ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] **॥ ३१९ ॥**

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा[2] **॥ ३२० ॥**

आरणच्चुदरासिस्स पहाणत्तपरियप्पणादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३२१ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२३ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२० ॥

क्योंकि, यहांपर आरण-अच्युतकल्पसम्बन्धी देवराशिकी प्रधानता विवक्षित है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३२१ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ३२३ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति सुलभ है) ।

---

१ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः (?) । स. सि. १, ८.

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुगमोघं ॥ ३२४ ॥

जधा एदेसिमोघम्हि सम्मत्तप्पाबहुगं वुत्तं, तहा वत्तव्वं ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ ३२५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३२६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३२७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं लेस्सामग्गणा[1] समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छाइट्ठी जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[2] ॥ ३२८ ॥

एत्थ ओघअप्पाबहुअं अणूणाहियं वत्तव्वं ।

शुक्ललेश्यावालोंमें संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२४ ॥

जिस प्रकार इन गुणस्थानोंका ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी कहना चाहिए ।

इसी प्रकार शुक्ललेश्यावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ३२५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३२६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुण-स्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

यहांपर ओघसम्बन्धी अल्पबहुत्व हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात् तत्प्रमाण ही कहना चाहिए ।

---

१ अ-आप्रत्योः ' लेस्समग्गणा ' इति पाठः ।

२ भव्यानुवादेन भव्यानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

अभवसिद्धिएसु अप्पाबहुअं णत्थि[1] ॥ ३२९ ॥

कुदो ? एगपदत्तादो ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु ओधिणाणिभंगो ॥ ३३० ॥

जधा ओधिणाणीणमप्पाबहुगं परूविदं, तधा एत्थ परूवेदव्वं । णवरि सजोगि-अजोगिपदाणि वि एत्थ अत्थि, सम्मत्तसामण्णे अहियारादो ।

खइयसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[2] ॥ ३३१ ॥

तप्पाओग्गसंखेज्जपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव[3] ॥ ३३२ ॥

सुगममेदं ।

अभव्यसिद्धोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३० ॥

जिस प्रकार ज्ञानमार्गणामें अवधिज्ञानियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी कहना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दो गुणस्थानपद यहांपर होते हैं, क्योंकि, यहांपर सम्यक्त्वसामान्यका अधिकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३३१ ॥

क्योंकि, उनका तत्प्रायोग्य संख्यात प्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ अभव्यानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । स. सि. १, ८.

२ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । स. सि. १, ८.

३ इतरेषां प्रमत्तान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३३३ ॥

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ ३३५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३३६ ॥

गुणगारो ओघसिद्धो, खइयसम्मत्तविरहिदसजोगीणमभावा ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३३७ ॥

को गुणगारो ? तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३८ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३३ ॥

क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३४ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३५ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३३६ ॥

यहांपर गुणकार ओघ-कथित है, क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वसे रहित सयोगिकेवली नहीं पाये जाते हैं।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३७ ॥

गुणकार क्या है ? अप्रमत्तसंयतोंके योग्य संख्यातरूप गुणकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा[1] ॥ ३३९ ॥

मणुसगदिं मोत्तूण अण्णत्थ खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणमभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[2] ॥ ३४० ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे खइयसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४१ ॥

एदस्स अहिप्पाओ– जेण खइयसम्मत्तस्स एदेसु गुणट्ठाणेसु भेदो णत्थि, तेण णत्थि सम्मत्तप्पाबहुगं, एयपयत्तादो । एसो अत्थो एदेण परूविदो होदि ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा[3] ॥ ३४२ ॥

कुदो ? तप्पाओग्गसंखेज्जपमाणत्तादो ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥३३९॥

क्योंकि, मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवोंका अभाव है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४० ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४१ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि इन असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चारों गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है, इसलिए उनमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, उन सबमें क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक पद ही विवक्षित है । यह अर्थ इस सूत्रके द्वारा प्ररूपित किया गया है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, उनका तत्प्रायोग्य संख्यातरूप प्रमाण है।

---

१ ततः संयतासंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोकाः अप्रमत्ताः । स. सि. १, ८.

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[1] ॥ ३४३ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[2] ॥ ३४४ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[3] ॥ ३४५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे वेदग-सम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४६ ॥

एत्थ भेदसद्दो अप्पाबहुअपज्जाओ घेत्तव्वो, सद्दाणमणेयत्थत्तादो । वेदगसम्मत्तस्स भेदो अप्पाबहुअं णत्थि त्ति उत्तं होदि ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-संयत गुणस्थानमें वेदकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४६ ॥

यहांपर भेद शब्द अल्पबहुत्वका पर्यायवाचक ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा यह अर्थ कहा गया है कि इन गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद अर्थात् अल्पबहुत्व नहीं है ।

---

१ प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ संयतासंयताः (अ-) संख्येयगुणाः स. सि. १, ८.

३ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ ३४७ ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३४८ ॥

अप्पमत्तसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणा[2] ॥ ३४९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[3] ॥ ३५० ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[4] ॥ ३५१ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[5] ॥ ३५२ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३४७ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३४८ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४९ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३५० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३५१ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३५२ ॥

---

१ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । स. सि. १, ८.

२ अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

४ संयतासंयताः (अ-) संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

५ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे उवसमसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३५३ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा(मिच्छादिट्ठि)-मिच्छादिट्ठीणं णत्थि अप्पाबहुअं[1] ॥ ३५४ ॥

कुदो ? एगपदत्तादो ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[2] ॥ ३५५ ॥

जधा ओघम्हि अप्पाबहुगं परूविदं तधा एत्थ परूवेदव्वं, सण्णित्तं पडि उहयत्थ भेदाभावा । विसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यक्त्वका अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५४ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके जीवोंके एक गुणस्थानरूप ही पद है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३५५ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहां पर भी प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि, संज्ञित्वकी अपेक्षा दोनों स्थानोंपर कोई भेद नहीं है । अब संज्ञियोंमें संभव विशेषके प्रतिपादनके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

---

१ शेषाणां नास्त्यल्पबहुत्वम्, विपक्षे एकैकगुणस्थानग्रहणात् । स. सि. १, ८.

२ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् । स. सि. १, ८.

णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३५६ ॥

ओघमिदि वुत्ते अणंतगुणत्तं[1] पत्तं, तण्णिरायरणट्ठं असंखेज्जगुणा इदि उत्तं। गुणगारो पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ[2] सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ।

असण्णीसु णत्थि अप्पाबहुअं[3] ॥ ३५७ ॥

कुदो? एगपदत्तादो।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता।

आहाराणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[4] ॥ ३५८ ॥

चउवण्णपमाणत्तादो।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३५९ ॥

सुगममेदं।

विशेषता यह है कि संज्ञियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३५६ ॥

उपर्युक्त सूत्रमें 'ओघ' इस पदके कह देने पर असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंके अनन्तगुणितता प्राप्त होती थी, उसके निराकरणके लिए इस सूत्रमें 'असंख्यातगुणित हैं' ऐसा पद कहा है। यहां पर गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं।

असंज्ञी जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५७ ॥

क्योंकि, उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३५८ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है।

आहारकोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३५९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ प्रतिषु 'अणंतरे गुणत्तं' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'असंखेज्जदि' इति पाठः।

३ असंज्ञिनां नास्त्यल्पबहुत्वम्। स. सि. १, ८.

४ आहारानुवादेन आहारकाणां काययोगिवत्। स. सि. १, ८.

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३६० ॥

अट्ठुत्तरसदपमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३६१ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३६२ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३६३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३६४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३६५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३६६ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६८ ॥

आहारकोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६० ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

आहारकोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकोंमें सयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६२ ॥

सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३६३ ॥

सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६४ ॥

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६५ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

आहारकोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६६ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

आहारकोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६९ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ ३७० ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ ३७१ ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ ३७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३७३ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३७४ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली[1] ॥ ३७५ ॥

कुदो ? सट्ठिपमाणत्तादो ।

अजोगिकेवली संखेज्जगुणा[2] ॥ ३७६ ॥

कुदो ? दुरूऊणछस्सदपमाणत्तादो ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७० ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

आहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७१ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७२ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३७३ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७४ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

अनाहारकोंमें सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ ३७५ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण साठ है ।

अनाहारकोंमें अयोगिकेवली जिन संख्यातगुणित हैं ॥ ३७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण दो कम छह सौ अर्थात् पांच सौ अट्ठानवे (५९८) है ।

---

१ अनाहारकाणां सर्वतः स्तोकाः सयोगकेवलिनः । स. सि. १, ८.

२ अयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] ॥ ३७७ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[2] ॥ ३७८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा[3] ॥ ३७९ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३८० ॥

कुदो ? संखेज्जजीवपमाणत्तादो ।

अनाहारकोंमें अयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७९ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित, सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३८० ॥

क्योंकि, अनाहारक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रमाण संख्यात है ।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । स. सि. १, ८.

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३८१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३८२ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमस्स पढमवग्गमूलाणि ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता ।)

एवमप्पाबहुगाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३८१ ॥

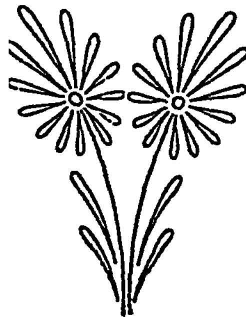
गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।



परिशिष्ट

अंतरपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।	१
२	ओघेण मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	४
३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	५
४	उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि।	६
५	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	७
६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	८
७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	९
८	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	११
९	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति अंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१३
१०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
११	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	१४
१२	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१७
१३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१८
१४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
१५	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	१९
१६	चदुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२०
१७	उक्कस्सेण छम्मासं।	२१
१८	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,
१९	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,
२०	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,
२१	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	२२

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	२२
२३	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	२३
२४	सासणसम्मादिट्ठि–सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	२४
२५	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	„
२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	२५
२७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	२६
२८	पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	२७
२९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	„
३०	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	„
३१	सासणसम्मादिट्ठि–सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	२९
३२	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९
३३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	„
३४	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	„
३५	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	३१
३६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	„
३७	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	३२
३८	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ।	३३
३९	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	३७
४०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३८
४१	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	„
४२	सासणसम्मादिट्ठि–सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३८
४३	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	३९
४४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	,,
४५	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ।	४०
४६	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	४१
४७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४२
४८	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ।	,,
४९	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	४३
५०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
५१	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	४४
५२	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	४५
५३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
५४	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ।	,,
५५	एदं गदिं पडुच्च अंतरं ।	४६
५६	गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
५७	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४७
५९	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	,,
६०	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४८
६१	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	,,
६३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ।	४९
६४	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	५०
६५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
६६	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	णिरंतरं ।	८८
१५७	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	,,
१५८	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	८९
१५९	चदुण्हं खवाणमोघं ।	,,
१६०	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१६१	सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	,,
१६२	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	९०
१६३	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
१६४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
१६५	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१६६	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	९१
१६७	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
१६८	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१६९	वेउव्वियकायजोगीसु चदुट्ठाणीणं मणजोगिभंगो ।	९१
१७०	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
१७१	उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं ।	९२
१७२	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१७३	सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो ।	,,
१७४	आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	९३
१७५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
१७६	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१७७	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो ।	,,
१७८	वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	९४
१७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१८०	उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२५५	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।	१२७
२५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं।	”
२५७	अजोगिकेवली ओघं।	”
२५८	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त-संजदप्पहुडि जाव उवसंत-कसायवीदरागछदुमत्था त्ति मणपज्जवणाणिभंगो।	१२८
२५९	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।	”
२६०	सजोगिकेवली ओघं।	”
२६१	सामाइय—छेदोवट्ठावणसुद्धि—संजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	”
२६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१२९
२६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	”
२६४	दोण्हमुवसामगाणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	”
२६५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	”
२६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१३०
२६७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	”
२६८	दोण्हं खवाणमोघं।	१३१
२६९	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्ता-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१३१
२७०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	”
२७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	”
२७२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सु-हुमसांपराइयउवसमाणमंतरं के-वचिरं कालादो होदि, णाणा-जीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं।	१३२
२७३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	”
२७४	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	”
२७५	खवाणमोघं।	”
२७६	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो।	”
२७७	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१३३
२७८	असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	”
२७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	”
२८०	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोव-माणि देसूणाणि।	१३४
२८१	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छा-दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमोघं।	”

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३०५	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	१४७
३०६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	१४८
३०७	उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	”
३०८	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्त-संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	”
३०९	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१४९
३१०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
३११	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	”
३१२	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	”
३१३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	”
३१४	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	१५०

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३१५	संजदासंजद-पमत्तसंजदाण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१५१
३१६	अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	”
३१७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
३१८	उक्कस्समंतोमुहुत्तं ।	”
३१९	तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१५२
३२०	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	”
३२१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
३२२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	”
३२३	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१५३
३२४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	”
३२५	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	”
३२६	चदुण्हं खवा ओघं ।	”
३२७	सजोगिकेवली ओघं ।	१५४
३२८	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	”

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३५५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	,,
३५६	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१६५
३५७	उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि।	,,
३५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
३५९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६६
३६०	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	,,
३६१	उक्कस्सेण चोद्दस रादिंदियाणि।	,,
३६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
३६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६७
३६४	पमत्त--अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	,,
३६५	उक्कस्सेण पण्णारस रादिंदियाणि।	,,
३६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
३६७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६८
३६८	तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	,,
३६९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	,,
३७०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६९
३७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	,,
३७२	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	,,
३७३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	,,
३७४	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,
३७५	सासणसम्मादिट्ठि—सम्मा--मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१७०
३७६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
३७७	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१७१
३७८	मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,
३७९	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं।	,,
३८०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति पुरिसवेदभंगो।	,,
३८१	चदुण्हं खवाणमोघं।	१७२
३८२	असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,

भावपरूवणासुत्ताणि।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	गेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।	२१५
२८	अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।	,,
२९	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२१६
३०	इंदियाणुवादेण पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	,,
३१	कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२१७
३२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२१८
३३	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि—सासणसम्मादिट्ठीणं ओघं।	,,
३४	असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।	,,
३५	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२१९
३६	सजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो।	२१९

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३७	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघभंगो।	,,
३८	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।	२२०
३९	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो।	,,
४०	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघं।	२२१
४१	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	,,
४२	अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।	२२२
४३	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं।	२२३
४४	अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं।	,,
४५	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२२४

अप्पाबहुगपरूवणासुत्ताणि।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०३	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३१४
२०४	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	,,
२०५	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	,,
२०६	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	,,
२०७	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	,,
२०८	असंजदसम्मादिट्ठि--संजदा--संजद--पमत्त--अप्पमत्तसंजद--ट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ।	३१५
२०९	एवं दोसु अद्धासु ।	,,
२१०	सव्वत्थोवा उवसमा ।	,,
२११	खवा संखेज्जगुणा ।	,,
२१२	अकसाईसु सव्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ।	३१६
२१३	खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ।	,,
२१४	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ।	,,
२१५	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा	,,
२१६	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि--विभंगणाणीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ।	,,
२१७	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	३१७
२१८	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३१७
२१९	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	,,
२२०	खवा संखेज्जगुणा ।	३१८
२२१	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ।	,,
२२२	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ।	,,
२२३	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	,,
२२४	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	,,
२२५	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	३१९
२२६	असंजदसम्मादिट्ठि--संजदा-संजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुगमोघं ।	,,
२२७	एवं तिसु अद्धासु ।	,,
२२८	सव्वत्थोवा उवसमा ।	,,
२२९	खवा संखेज्जगुणा ।	,,
२३०	मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३२०
२३१	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	,,
२३२	खवा संखेज्जगुणा ।	,,
२३३	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	,,
२३४	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ।	,,
२३५	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	संखेज्जगुणा ।	३४१
३३७	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ।	,,
३३८	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	,,
३३९	संजदासंजदा संखेज्जगुणा ।	३४२
३४०	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	,,
३४१	असंजदसम्मादिट्ठि--संजदा--संजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे खइयसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ।	,,
३४२	वेदगसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा ।	,,
३४३	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३४३
३४४	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	,,
३४५	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	,,
३४६	असंजदसम्मादिट्ठि--संजदा--संजद-पमत्त--अप्पमत्तसंजद--ट्ठाणे वेदगसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ।	,,
३४७	उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३४४
३४८	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	,,
३४९	अप्पमत्तसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणा ।	,,
३५०	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	,,
३५१	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	,,
३५२	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	३४४
३५३	असंजदसम्मादिट्ठि--संजदा--संजद-पमत्त--अप्पमत्तसंजद--ट्ठाणे उवसमसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ।	३४५
३५४	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-मिच्छादिट्ठीणं णत्थि अप्पाबहुअं ।	,,
३५५	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	,,
३५६	णवरि, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	३४६
३५७	असण्णीसु णत्थि अप्पाबहुअं ।	,,
३५८	आहाराणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	,,
३५९	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	,,
३६०	खवा संखेज्जगुणा ।	३४७
३६१	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	,,
३६२	सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ।	,,
३६३	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	,,
३६४	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३६५	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३४७
३६६	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	,,
३६७	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	,,
३६८	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
३६९	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३४८
३७०	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	,,
३७१	असंजदसम्मादिट्ठि--संजदा--संजद--पमत्त--अप्पमत्तसंजद--ट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं।	,,
३७२	एवं तिसु अद्धासु।	,,
३७३	सव्वत्थोवा उवसमा।	,,
३७४	खवा संखेज्जगुणा।	३४८
३७५	अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।	,,
३७६	अजोगिकेवली संखेज्जगुणा।	,,
३७७	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३४९
३७८	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	,,
३७९	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	,,
३८०	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	,,
३८१	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३५०
३८२	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	,,

२ अवतरण-गाथा-सूची

(भावप्ररूपणा)



क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
१	अप्पिदआदरभावो	१८६	
११	इगिवीस अट्ठ तह णव	१९२	
१२	एकोत्तरपदवृद्धो	१९३	
१०	एयं ठाणं तिण्णि विय-	१९२	
५	ओदइओ उवसमिओ	१८७	
४	खवए य खीणमोहे	१८६	षट्खंडा. वेदनाखंड. गो. जी. ६७.
६	गदि-लिंग-कसाया वि	१८९	
९	णाणण्णाणं च तहा	१९१	
२	णामिणि धम्मुवयारो	१८६	
१४	देसे खओवसमिए	१९४	
१३	मिच्छत्ते दस भंगा	,,	
८	लद्धीओ सम्मत्तं	१९१	
३	सम्मत्तुप्पत्तीय वि	१८६	षट्खंडा. वेदनाखंड, गो. जी. ६६.
७	सम्मत्तं चारित्तं दो	१९०	

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ	क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ
१	एगजोगणिद्दिट्ठाणमेगदेसो णाणुवट्टदि त्ति णायादो।	२५९	३	कारणाणुसारिणा कज्जेण होदव्वमिदि णायादो।	२५०
२	जहा उद्देसो तहा णिद्देसो।	४, ९, २५, २७, ७१, १९४, २७०	४	समुदाएसु पयट्टाणं तदेगदेसे वि पउत्तिदंसणादो।	१९९

---

४ ग्रन्थोल्लेख

१ चूलियासुत्त

१. तं कधं णव्वदे? 'पंचिंदिएसु उवसामेंतो गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु' त्ति चूलियासुत्तादो। ११८

२ दव्वाणिओगद्दार

१. एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति दव्वाणिओगद्दार-सुत्तादो णव्वदि। २५२

२. आणद-पाणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण। अणुदिसादि जाव अवराइदविमाण-वासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेणेत्ति एदेण दव्वसुत्तेण। २८७

३ पाहुडसुत्त (कषायप्राभृत)

१. चदुण्हं कसायाणमुक्कस्संतरस्स छम्मासमेत्तस्सेव सिद्धीदो। ण पाहुड-सुत्तेण वियहिचारो, तस्स भिण्णोवदेसत्तादो। ११२

२. तं पि कुदो णव्वदे? 'णियमा मणुसगदीए' इदि सुत्तादो। २५६

४ सूत्रपुस्तक

१. केसु वि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदस्संतरं छम्मासा। १०६

---

५ पारिभाषिक शब्दसूची

